हीरा-प्रवचन पीयूष

भाग-4

प्रवचनकार

आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्रजी म.सा.

प्रकाशक :

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

(संरक्षक : अ.भा. श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ)

हीरा प्रवचन-पीयूष

(भाग-4)

प्रवचनकार

आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्रजी म.सा.

प्रकाशक

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

(संरक्षक : अ. भा. श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ)

पुस्तक :

हीरा प्रवचन–पीयूष (भाग–4)

प्रवचनकार :

आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्रजी म.सा.

सम्पादक :

डॉ. धर्मचन्द जैन, जोधपुर

आशु लेखक :

श्री नौरतन मेहता, जोधपुर

प्रकाशक :

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

दुकान नं. 182 के ऊपर,

बापू बाजार, जयपुर–302003 (राजस्थान)

फोन : 0141 – 2575997, 2571163

फैक्स : 0141–2570753

Email : sgpmandal@yahoo.in

© सर्वाधिकार सुरक्षित

द्वितीय संस्करण : 2009

तृतीय संस्करण : 2012

चतुर्थ संस्करण : 2014

मुद्रित प्रतियाँ : 1100

मूल्य : **30.00/–** (तीस रुपये मात्र)

लेजर टाइपसैटिंग :

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

आवरण : **अनिल कुमार जैन**

मुद्रक :

अन्य प्राप्ति स्थल :

❖ **श्री स्थानकवासी जैन स्वाध्याय संघ**
घोड़ों का चौक, जोधपुर–342001
(राजस्थान)
फोन : 0291–2624891
मोबाइल : 09414267824

❖ **Shri Navratan ji Bhansali**
C/o. Mahesh Electricals,
14/5, B.V.K. Ayangar Road,
BANGALORE-560053
(Karnataka)
Ph. : 080-22265957
Mob. : 09844158943

❖ **Shri B. Budhmal ji Bohra**
C/o. Bohra Syndicate,
53, Erullapan Street,
Sowcarpet, **CHENNAI-79**
(Tamilnadu)
Ph. : 044-26425093
Mob. : 09444235065

❖ **श्रीमती विजयानन्दिनी जी मल्हारा**
''रत्नसागर'', कलेक्टर बंगला रोड़,
चर्च के सामने, 491–ए, प्लॉट नं. 4,
जलगाँव–425001 (महा.)
फोन : 0257–2223223

❖ **श्री दिनेश जी जैन**
1296, कटरा धुलिया, चाँदनी चौक,
दिल्ली–110006
फोन : 011–23919370
मो. 09953723403

प्रवचनानुक्रमणिका

क्र.सं.	प्रवचन	पृष्ठ संख्या
(1)	प्रवचनानुक्रमणिका	[illegible]
(2)	प्रकाशकीय	[illegible]
(3)	सम्पादकीय	[illegible]
1.	जीव पर हो जिनवाणी का प्रभाव	1-6
2.	आत्मा का मूल्य पहचानें	7-14
3.	बोध पाएँ और आचरें	15-20
4.	सम्यग्दर्शन	21-30
5.	तप : आत्मशोधन का साधन	31-41
6.	तप के प्रति श्रद्धा और प्रेम	42-50
7.	जीवन-निर्माण के तीन सूत्र	51-58
8.	शान्ति का मन्त्र : संयम	59-63
9.	दान	64-81
10.	हाथ को दीधो, ऐलो नहीं जावे	82-90
11.	शील से सुवासित हो नारी	91-99
12.	दान-शील-तप-भावना	100-104
13.	चातुर्मास का मंगल सन्देश	105-120
14.	मुक्ति पथ : क्षमा और अहिंसा	121-133
15.	श्रद्धा बिन सब सून	134-144

16. ज्ञान-प्राप्ति में बाधक कारण 145-152
17. ज्ञान-प्राप्ति के लिए हास्य का त्याग क्यों ? 153-163
18. अपने को सुधारिए, राष्ट्र सुधर जाएगा 164-168
19. क्यों करें रात्रि-भोजन का त्याग 169-180
20. संस्कारित नारी से समाज को दिशा 181-188
21. स्वतन्त्रता को स्व-तन्त्रता में बदलें 189-198
22. शान्ति के विविध रूप 199-209
23. उत्तराध्ययन सूत्र : महावीर की अन्तिम सीख 210-217
24. विणयं पाउकरिस्सामि 218-227
25. जीवन-निर्माण का सूत्र : विनय 228-238
26. जीवन-निर्माण का सूत्र : विनय (2) 239-246
27. जीवन-निर्माण का सूत्र : विनय (3) 247-257
28. सुख का द्वार : अनुशासन 258-270
29. अहंकार को त्यागें, आत्मानुशासित बनें 271-279
30. परीषह से साधक का समत्व परीक्षण 280-288

प्रकाशकीय

आगमज्ञ, प्रवचन-प्रभाकर, आचारनिष्ठ, चारित्रमूर्ति आचार्यप्रवर 1008 श्री हीराचन्द्रजी म.सा. रत्नसंघ के आचार्यों की परम्परा के उज्ज्वल नक्षत्र हैं। आप निर्व्यसनता, चारित्र-निर्माण, रात्रि-भोजन-त्याग, सामायिक, स्वाध्याय और संयम-साधना हेतु प्रबल प्रेरणा करते हैं। आप इस समय स्थानकवासी परम्परा में सबसे ज्येष्ठ आचार्य हैं तथा आपकी निर्मल-साधना, नीति-रीति, सूझबूझ, निराडम्बरता, निस्पृहता, व्रताराधन-प्रियता आदि की कीर्ति चतुर्दिक् फैल रही है।

आचार्यश्री की प्रवचन शैली में ओजस्विता, स्पष्टता, निर्भीकता, हृदयस्पर्शिता आदि अनेक गुण हैं। आप श्रोतावृन्द की चेतना से जुड़कर प्रवचन फरमाते हैं, जिसका अनेक स्थानों पर बाहर व्रतों के स्वीकरण, सामूहिक सामायिक-साधना के शुभारम्भ, सकल समाज द्वारा समाज की विकृतियों के निवारण हेतु क्रान्तिकारी निर्णय आदि के रूप में प्रभाव परिलक्षित हुआ है। अनेक व्यक्ति साधना के क्षेत्र में आगे बढ़े हैं। इस युग के यशस्वी-मनस्वी, अध्यात्मयोगी, उच्चकोटि के साधक, युगमनीषी, आचार्यप्रवर पूज्यश्री हस्तीमलजी म.सा. की निर्मल छवि को अभिवृद्ध कर रहे हैं। आपको अपने प्रभावशाली प्रवचनों के लिए ''प्रवचन-प्रभाकर'' कहा जाता है।

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल द्वारा विगत वर्षों में पूज्य आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्रजी म.सा. के प्रवचनों को हीरा प्रवचन-पीयूष भाग-1, भाग-2,

भाग-3 एवं भाग-4 के माध्यम से प्रकाशित किये गये हैं जिनका सर्वत्र स्वागत हुआ है। अल्प समय में ही इनका पुन: प्रकाशन होना इनकी उपयोगितका को दर्शाता है। उसी शृङ्खला में हीरा प्रवचन-पीयूष भाग-4 पुस्तक के चतुर्थ संस्कारण का प्रकाशन करते हुए हमको हार्दिक प्रमोद हो रहा है।

हीरा प्रवचन-पीयूष भाग-1, भाग-2 तथा भाग-3 के प्रवचनों की भाँति इस भाग-4 के प्रवचनों का आशुलेखन एवं सम्पादक श्री सुश्रावक श्री नौरतनजी मेहता, जोधपुरे एवं सम्पादन में डॉ. धर्मचन्द जी जैन का सहज सहयोग रहा है। इस द्वितीय संस्करण में प्रूफ संशोधन कार्य में श्रीमान् सौभाग्यमल जी जैन, अलीगढ़-रामपुरा, मंडल कार्यालय में कार्यरत श्री त्रिलोकचन्द जी जैन व जिनेन्द्र कुमार जी जैन का तथा कम्प्यूटर कम्पोजिंग में मण्डल कार्यालय में कार्यरत श्री प्रहलाद नारायण जी लखेरा का सहयोग प्राप्त हुआ है, एतदर्थ मण्डल परिवार कृतज्ञता ज्ञापित करता है।

आशा है यह तृतीय संस्करण भी पाठकों का मार्ग-दर्शन करने एवं जीवन को सही दिशा में समुन्नत बनाने में सहायक सिद्ध होगा।

:: निवेदक ::

कैलाशमल दुगड	**सम्पतराज चौधरी**	**विनयचन्द डागा**
अध्यक्ष	कार्याध्यक्ष	मन्त्री

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

सम्पादकीय

जीवन को सम्यक् मोड़ देने के लिए सन्तों का एक वाक्य भी पर्याप्त होता है। इसीलिए सत्साहित्य का स्वाध्याय किया जाता है। हमारा सांसारिक जीवन मोह, ममता, तनाव, द्वन्द्व, ईर्ष्या, द्वेष आदि से आच्छन्न है। इसे सम्यक् दिशा मिल जाय तो इन दुःखों से छुटकारा प्राप्त किया जा सकता है। इनमें थोड़ी कमी होने पर भी हमें शान्ति का अनुभव होता है। इसमें चारित्रनिष्ठ सन्तों की वाणी सहायक बनती है।

रत्नसंघ के अष्टम पट्टधर जैनाचार्य 1008 श्री हीराचन्द्रजी म.सा. के 30 प्रवचनों के संकलन के रूप में यह पुस्तक 'हीरा प्रवचन-पीयूष' का प्रथम भाग प्रकाशित किया जा रहा है। आपके ओजस्वी एवं मार्ग-दर्शक प्रवचनों में असंस्कारित और असंयमी-जीवन के प्रति पीड़ा प्रकट हुई है तथा निर्व्यसनता, सामायिक, स्वाध्याय, संयम, रात्रि-भोजन-त्याग और सत्संस्कारों के रक्षण की प्रेरणा की गई है। आचार्यप्रवर का इस बात पर बल है कि हमें शरीर, सम्पत्ति एवं सत्ता से अधिक मूल्यवान आत्मा को समझकर उसके सम्यक् पोषण के लिए समुचित उपाय करना चाहिए। जिन-वचनों का जीव पर वास्तविक प्रभाव हो जाय तो जीवन को सच्ची राह मिल जाय। आचार्यप्रवर के इन प्रवचनों में सम्यग्दर्शन, ज्ञान, आचरण, तप, संयम, दान, शील, तप, भावना, क्षमा, अहिंसा, रात्रि-भोजन-त्याग, संस्कार, विनय, आत्मानुशासन आदि अनेक तत्त्वों पर प्रकाश मिलता है।

आचार्यप्रवर द्वारा अपने प्रवचनों में स्पष्टता एवं निर्भीकता के साथ हृदय को प्रेरित किया जाता है। प्रवचनों का आनन्द जितना श्रवण में आता है, उतना लिपिबद्ध होने पर नहीं, क्योंकि बहुत-सी बातें प्रवचन में अकथित भी कथित जैसी प्रतीत होती है, लिपिबद्ध होने पर इस ध्वनि का अनुभव विरले ही पाठक कर पाते हैं। प्रवचनों का यह संकलन जिनवाणी में प्रकाशित प्रवचनों में से किया गया है। आगे भी शृङ्खला जारी रहेगी।

आशा है पाठकों के चित्त को अध्यात्ममुखी बनाने के साथ यह पुस्तक उन्हें शान्ति, समता, सहिष्णुता और संयम के पथ पर बढ़ने में सहायक सिद्ध होगी।

डॉ. धर्मचन्द जैन

1

सम्यग्दर्शन : स्वरूप-विश्लेषण

शरीर और आत्मा दो अलग-अलग चीजें हैं। शरीर मात्र साधन है, जबकि आत्मा साध्य है। शरीर के माध्यम से ही आत्मा की साधना की जाती है। शरीर जिन-जिन तत्त्वों से पोषित होता है, उन तत्त्वों की प्राप्ति में विघ्न डालने वाले जो भी कारण हैं, वे शरीर के शत्रु हैं और इसी तरह आत्मा जिन-जिन तत्त्वों से पोषित होती है, शुद्ध बनती है उन तत्त्वों की प्राप्ति में रूकावट पैदा करने वाले कारण आत्मा के शत्रु है। जगत् कल्याणकारी तीर्थङ्कर महावीर ने शरीर के शत्रुओं की अपेक्षा आत्मा के शत्रुओं से सचेत बनकर आत्म-रक्षा करने पर विशेष बल दिया है।

आप में से अधिकांश जन शरीर के विघातक तत्त्वों से सदैव भयभीत रहते हैं और उनसे शरीर को बचाने में प्रतिपल सजग भी रहते हैं। आप सामायिक व्रत लेकर बैठे हैं। आपके पास ही आपके शरीर पर धारण किए जाने वाले वस्त्रादि रखे हैं। सामायिक-व्रत की अवधि पूर्ण हुई। आपने विधिवत् सामायिक पालकर, मुँहपत्ति उतारकर, दुपट्टा नीचे रख, अपने वस्त्रों की तरफ हाथ बढ़ाया, तभी पास बैठे भाई ने कहा-''साहब! इसमें एक टाँटिया है।'' सुनते ही आपका आगे बढ़ा हाथ रुक जाएगा, पीछे हट जाएगा।

टाँटिया की जगह बिच्छू की बात हो तो भय में और अधिक वृद्धि होगी। सर्प यदि बैठा हो कपड़ों के आस-पास, दूर ही क्यों न हो, पर तब तो आप आसन छोड़ विपरीत दिशा में दौड़ लगाने लगेंगे। शरीर को कष्ट देने वाले, विषैले इन जन्तुओं से कितना भय है आपको ?

बंधुओं! इन विषैले जन्तुओं का जहर तो प्रयत्न करने पर फिर भी नष्ट किया जा सकता है और शरीर को पूर्ववत् उनके प्रभाव से मुक्त बनाया जा सकता है पर एक जहर ऐसा भी है जो अनादिकाल से जीवों में फैला हुआ है, फैल रहा है और अनन्त-अनन्त काल तक शायद जीव को न छोड़े। क्या उस जहर को जानने, पहचानने और पुरूषार्थपूर्वक उसे नष्ट करने की भी कभी इच्छा होती है आपकी ? व्यवहार में आप शत्रुओं को हराने, उन्हें नष्ट करने उनसे किसी तरह बचने की बात करते हैं और उपाय ढूँढ़कर ऐसा कर भी लेते हैं परन्तु निश्चय में जो शत्रु हैं, जो आत्मा का विघातक है उसे नहीं जानेंगे तो उससे छुटकारा कैसे प्राप्त करेंगे ? इस आत्मा का सबसे बड़ा शत्रु है- 'मिथ्यात्व'। जब तक मिथ्यात्व रूप शत्रु का नाश नहीं होगा तब तक साधना के मार्ग में चरण बढ़ाकर आत्मोन्नत करना भी संभव नहीं होगा। यही कारण है कि तीर्थङ्कर भगवन्तों ने मानव को बोध कराते हुए कहा-यदि तू आत्मजयी बनना चाहता है, साधना के मार्ग की बाधाएँ दूर करना चाहता है तो सबसे पहले अपने आपको समझ, विषय और कषायों को अनर्थकारी मान तथा धर्माचरण में कदम बढ़ा। इसके लिए आत्मा के शत्रु नम्बर एक अर्थात् मिथ्यात्व को सबसे पहले दूर कर। मिथ्यात्व अंधकार है, अंधकार में केवल भटकना ही भटकना है। जिस दिन अंधकार हट गया, तेरा लक्ष्य, तेरा पथ, तेरी मंजिल तेरे सामने स्पष्ट होगी।

अंधकार दूर होता है प्रकाश से, मिथ्यात्व दूर होता है सम्यग्दर्शन से। सम्यग्दर्शन है तो आपकी यह सामायिक, सही सामायिक है अन्यथा कोई भी

व्रत-नियम सफल नहीं, यथारूप नहीं। आप यदि ज्ञानवन्त हैं तो सही समझिए, आपका ज्ञान, सम्यग्दर्शन के अभाव में ज्ञान नहीं। मोक्षमार्ग के प्रतिपादन में भगवान महावीर ने सम्यग्दर्शन को प्रमुखता दी है। 'तत्त्वार्थसूत्र' में आया है- ''सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्ष मार्गः।''

सम्यग्दर्शन क्या है? कब होता है जीव को सम्यग्दर्शन? कौन जीव इसका अधिकारी है? और क्या फल है सम्यग्दर्शन प्राप्त करने का? आज हमें इन सभी प्रश्नों पर विचार करना है।

तत्त्व को यथावत् अर्थात् जैसा है, वैसा जानना और उस पर श्रद्धा (विश्वास) करना सम्यग्दर्शन है। जीव को जीव तथा अजीव को अजीव समझकर श्रद्धा रखना। इसी तरह आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष आदि आदि तत्त्वों की जानकारी प्राप्त करना, समझना और उन पर श्रद्धा रखना सम्यग्दर्शन है।

अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ तथा सम्यक्त्व मोहनीय, मिथ्यात्व मोहनीय एवं मिश्र मोहनीय-इस सात प्रकृतियों का क्षय, उपशम, क्षयोपशम भी सम्यग्दर्शन है।

व्यवहार में जिस जीव को तत्त्व की जिज्ञासा है और जो तत्त्व जानने वालों की सेवा-भक्ति के लिए तत्पर है-उन्हें भी व्यवहार दृष्टि में सम्यग्दर्शन (सम्यक्त्वी) कहा जाता है।

देव, गुरू, धर्म का सही श्रद्धान भी सम्यग्दर्शन है। वीतराग देव, निर्ग्रन्थ-गुरु और केवली भगवान द्वारा प्ररूपित दयामय धर्म में श्रद्धा रखना सम्यग्दर्शन है।

सम्यग्दर्शन कब होता है? शास्त्र की भाषा में जीव के सात कर्मों की स्थितियाँ (अन्तर) कोटाकोटि सागरोपम के भीतर आती है, उस समय जीव

को सम्यग्दर्शन प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त होता है। यहाँ अधिकार प्राप्त करने का अर्थ योग्यता धारण करने, योग्य बनने से है। जब तक योग्यता प्राप्त नहीं होती, उपादान शुद्ध नहीं होता तब तक उसे चाहे सद्शास्त्र श्रवण या पठन का, सद्गुरु के उपदेशों का और तीर्थङ्कर भगवान तक की वाणी का संयोग भी प्राप्त हो जाय, सम्यग्दर्शन की प्राप्ति संभव नहीं। अन्तरंग-शुद्धि की प्रमुखता के साथ ही साथ व्यवहार शुद्धि भी आवश्यक मानी गई है।

कुछ विज्ञजन मानते हैं कि 'निश्चय' सर्वत्र प्रधान है और 'व्यवहार' का स्थान गौण ही नहीं, अपितु नगण्य-सा है। इसी प्रकार कुछ भले मानस व्यवहार को प्रमुखता देकर निश्चय को गौण मान लेते हैं। बंधुओं! शास्त्रकार कहते हैं कि निश्चय और व्यवहार दोनों ही अपनी-अपनी जगह हैं, दोनों का समान महत्त्व है। कोई प्रधान या गौण नहीं अपितु दोनों ही प्रधान हैं। उपादान यदि सही है और निमित नहीं है तब भी कार्य सिद्ध नहीं होता और निमित्त सही है किन्तु उपादान में योग्यता नहीं है तब भी काम बनने का नहीं। घड़े का मूल कारण चिकनी मिट्टी है पर कुम्भकार, चक्र दंड (डंडा) रूप निमित्त नहीं हो तो घड़ा नहीं बन सकेगा और यदि ये सारे साधन विद्यमान हों पर मिट्टी चिकनी न हो, घट-निर्माण के योग्य न हो तो भी कुम्भकार घट का निर्माण नहीं कर सकेगा।

जीव के साथ भी ऐसा घटित होता है। कभी वह संयोगवश अकाम निर्जरा से दया, दान, क्षमा, विनय, सरलता आदि शुभ-भाव पूर्वक अपने सातों कर्मों की स्थितियों को घटाते-घटाते अंतः कोटाकोटि सागरोपम तक पहुँचा देता है और अपने आपको सम्यग्दर्शन के योग्य बना लेता है। अर्द्ध पुद्गल परावर्तन काल बाकी रहने पर वह कृष्णपक्षी से शुक्लपक्षी भी बन जाता है पर यदि बाहरी, योग्य निमित्त नहीं मिले तो उसे सम्यग्दर्शन की प्राप्ति की संभावना कम रहती है। यहाँ तक कि कभी-कभी कई भव्य आत्माएँ मोक्ष

जाने के तीन भव पहले अथवा उसी भव में सम्यग्दर्शन प्राप्त करती है और तब तक मिथ्यादर्शनी ही बनी रहती है। अनादि काल से, जन्म-जन्मांतर से, अनन्त-अनन्त काल तक वह मिथ्यादर्शनी रहा और इस भव में भी मिथ्यादर्शनी था, इसी भव में सम्यक्त्वी बना और मोक्ष को प्राप्त कर लिया-यह शास्त्रानुसार संभव है। इसमें निमित्त को भी महत्त्वपूर्ण माना गया है।

'तिन्नाणं तारयाणं' के विशेषण से युक्त तीर्थङ्कर भगवन्त जो स्वयं संसार सागर को तैर कर पार हो गए हैं और विश्व के अन्य प्राणियों के लिए जिन्होंने तिरने का पंथ बताया है, उनकी भी यही स्थिति है। वर्तमान तीर्थङ्कर भगवन्तों की चौबीसी में भगवान नेमिनाथ का जीव नौ भव पूर्व, भगवान पार्श्वनाथ का जीव दस भव पूर्व, भगवान आदिनाथ का जीव तेरह भव पूर्व और भगवान महावीर का जीव सत्ताईस भव पहले मिथ्यात्वी था। स्पष्ट है कि जिस जीव का अर्द्ध पुद्गल परावर्तन संसार भ्रमण शेष रहता हो वह शुक्लपक्षी तो बन जाता है पर सम्यग्दर्शन की प्राप्ति योग होने पर, निमित्त होने पर ही होती है।

अब हम यह भी विचार करें कि सम्यग्दर्शन कैसे प्राप्त हो सकता है? क्या समकित दी जा सकती है या ली जा सकती है?

'तत्त्वार्थ सूत्र' कहता है-''तन्निसर्गादधिगमाद्वा'' सम्यग्दर्शन कभी जीवों को नैसर्गिक रूप से, स्वान्त करण से एक प्रकार का क्षयोपशम होने पर प्राप्त होता है। ध्यान रहे, यह क्षयोपशम व्यक्ति के उपादान को शुद्ध बना देता है। इसी तरह कभी सम्यग्दर्शन अधिगम से अर्थात् योग्य गुरु के योग्य शिष्य को योग निमित्त मिलने पर भी प्राप्त होता है। यह है व्यवहार रूप में समकित देना व समकित लेना। शास्त्र के अनुसार निमित्त से, सद्गुरु के उपदेश से, करुणाभाव से, हृदय की अनुकम्पा से एवं ऐसे ही अनेक अन्य बाहरी संयोग से भी सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है।

नाव पानी में रहती है, पानी नाव में नहीं रहता।
दूध में घी रमा हुआ रहता है, घी में दूध नहीं रहता।
तिलों में तेल होता है, तेल में तिल नहीं होते।
शरीर में जीव रहता है, जीव में शरीर नहीं रहता।

ठीक ऐसे ही सम्यग्दर्शी व्यक्ति संसार में रहता है पर संसार उसके भीतर नहीं रहना चाहिये। संसार में रहकर भी वह संसार से परे रहे। पर-पदार्थों के बीच रहकर भी स्व के चिंतन में लगा रहे। जल में कमलवत् वह सांसारिक पदार्थों, नाते-रिश्तों से निर्लिप्त रहे। राग-द्वेष, हर्ष-शोक, सुख-दुःख से परे रहने के लिए प्रतिक्षण प्रयत्न करने वाला ही सम्यग्दर्शी है। लाखों-करोड़ों का लाभ हो या घाटा लगे, उसे न लक्ष्मी आने पर प्रसन्नता होती है और न उसके जाने पर विषाद। वह तो समता के प्रांगण में खेलता है, समत्व के झूले में झूलता है, अपने ही समान सभी जीवों को जानता है। व्यवहार में सम्यग्दर्शी की पहचान उसके जीवन-व्यवहार को देखकर अनुमानपूर्वक की जा सकती है पर निश्चय से हम नहीं कह सकते कि अमुक व्यक्ति सम्यग्दर्शी है ही। वह अन्दर में कैसा है, उसकी अन्तरात्मा कैसी है-यह तो केवलज्ञानी ही जान सकते हैं। हम तो केवल यह कह सकते हैं कि जो व्यक्ति आत्मलक्षी बनकर जीवन-व्यवहार करता है, वह सम्यग्दर्शी है।

सम्यग्दर्शी व्यक्ति घर-परिवार में रहे या सभी नाते-रिश्ते तोड़कर मोहमाया के बंधनों को छोड़कर त्यागी, वैरागी बन जाए, उसका तो एक ही चिन्तन रहता है-सुख और दुःख मेरे ही कर्मों का फल है। शुभ और अशुभ कर्म जो मैंने इससे पूर्व किए हैं, उनसे जो कर्मबन्धन हुए हैं, उनके उदय से ही यह उतार-चढ़ाव, आनन्द-शोक, साता-असाता मेरे जीवन में धूप-छाँव की तरह आते-जाते हैं। वह न सुख में हर्षित होता है और न दुःख में घबराता है। वह तो आत्मा को बन्धन से मुक्त करने की चिन्ता में लगा रहता है। उसका

प्रत्येक कार्य, प्रत्येक व्यवहार कर्म बन्धन को काटने को उद्यत होता है। उसका जीवन मधुमक्खी की तरह शहद में रहते हुए भी उसमें लेपायमान नहीं होता। एक पोस्टमैन जिस तरह जन्म या मरण के पत्र, हर्ष और शोक के समाचार घर-घर बाँटता है किन्तु स्वयं उन समाचारों को जानकर, सुनकर या पढ़कर भी न प्रसन्न होता है, न उदासीन। उसे कोई खुशी, कोई गम नहीं होता। वैसे ही सम्यग्दर्शी अनुकूल या प्रतिकूल सभी तरह की परिस्थितियों में समभाव रखता है, समता में मगन रहता है।

एक बार सम्यग्दर्शन हो जाए फिर उसका कर्म-बन्धन से मुक्त होना निश्चित है। देर हो सकती है पर मोक्ष तो वह प्राप्त करेगा ही। कभी कर्मों के गाढ़ उदय से कभी अप्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय से अथवा पूर्व में नरक का बन्ध पड़ जाने से लाखों-करोड़ों सम्यग्दर्शी जीवों में कोई एक आगे नहीं बढ़ सके, वह एक अन्य बात है। वासुदेव मानव होते हैं, व्रताराधन को जानते-समझते हैं पर कर नहीं सकते। कदाचित् व्रत ग्रहण कर भी लें तब भी आराधक नहीं रहकर विराधक बन जाते हैं। उनके लिए नरक गति का बंध निश्चित है। इसी प्रकार सामान्यतः सम्यग्दर्शन प्राप्त जीव का देर-सवेर मोक्ष जाना निश्चित है। कम से कम उसी भव में और अधिक से अधिक अर्द्ध पुद्गल परावर्तन काल में।

मोक्ष में जाने के लिए केवल सम्यग्दर्शन का प्रमाण-पत्र (सर्टिफिकेट) ही पर्याप्त नहीं है। सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के बाद उसे सम्यक्चारित्र की आराधना करनी होगी, कषाय-विजयी बनना होगा, मोह का त्याग करना होगा, पाप-कार्यों से पूर्ण निवृत्ति लेनी होगी।

मुझे सम्यग्दर्शन है या नहीं है और आपको भी सम्यग्दर्शन है या नहीं है, स्थिति चाहे जो हो-हमें पापों से निवृत्ति पर ध्यान देना है, वही मार्ग ग्रहण करना है जिस पर चलकर हम कषायों को कृश बना सके। क्षमा और नम्रता

धारण कर सहनशील बन समतापूर्वक जीवन बिताना निश्चय ही हमारे लिए श्रेयस्कर है। हमारा ऐसा जीवन-व्यवहार कभी व्यर्थ नहीं जाएगा।

हमारा लक्ष्य है कषाय-मुक्ति। हमारा व्यवहार है-पापनिवृत्ति। निश्चय-लक्ष्य और व्यवहार कार्य दोनों पर ध्यान देकर चलना ही प्रगति का सार्थक कदम है।

आपको और हमको चिन्तन करना है कि हमारे विषय-कषाय, राग-द्वेष में कितनी कमी आई है ? इस प्रकार का चिन्तन-मनन करते रहें, सम्यक् श्रद्धान को धारण करने के लिए प्रयत्नशील बनते रहें, कर्म-बन्धन हटाने में पुरुषार्थ लगाते रहें तो शाश्वत आनन्द की प्राप्ति में देर नहीं लगेगी। आनन्द ही आनन्द।

जोधपुर
21 अगस्त, 1991

2

धर्म का मूल–विनय

तीर्थङ्कर भगवान महावीर ने जीवन–विकास एवं आत्मोन्नति के अनेकानेक सूत्र दिए। इन सभी सूत्रों के मूल में उन महनीय महाप्रभु ने एक ऐसे गुण को निरूपित किया है जो जीवन का उद्धार करने वाला, ज्ञान–दर्शन–चारित्र के गुणों को उजागर करने वाला एवं आत्मा के अन्यान्य गुणों को प्रकाशित करने वाला है। वह गुण है 'विनय'।

विनय से ठीक विपरीत है अभिमान। जो अभिमान को जीवन में स्थान देकर चलता है वह अपने जीवन को डुबोता है, ज्ञान–दर्शन–चारित्र का नाश करता है और आत्मा के अन्यान्य गुणों को अभिमान की कालिमा से आच्छादित कर लेता है। विनय और अभिमान दोनों एक दूसरे के ठीक विपरीत हैं। विनय गुणों के द्वार खोलता है तो अभिमान अवगुणों–दुर्गुणों को प्रवेश देता है। विनय से जहाँ सद्गुणों का अर्जन होता है वहीं अभिमान सद्गुणों पर पानी फेर देता है। अतः प्रभु ने साधक को साधनारम्भ से पूर्व विनय–गुण के अर्जन का उपदेश दिया।

सामान्य–भाषा में कहा गया है–''दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान'' आप इसे यूँ भी कह सकते हैं–''विनय धर्म का मूल है, पाप मूल

अभिमान।'' यह अभिमान रूपी एक ही अवगुण मनुष्य को धर्म से, कर्त्तव्य से, जीवन-सौरभ से नीचे गिरा देता है। यह डूबने का, कष्ट-प्राप्ति का, अर्जित गुणों को मटियामेट करने का कारण बन जाता है और व्यक्ति के व्यक्तित्त्व का, उसके जीवन का सर्वनाश कर देता है। यह अभिमान व्यक्ति की कीर्ति को अपकीर्ति में, यश को अपयश में बदल कर उसे बदनाम और कुख्यात कर देता है।

अभिमान अवगुण बच्चों से बूढ़ों तक में देखा जा सकता है। बच्चों व किशारों में वह अकड़ के रूप में होता है। नासमझ बच्चे और कच्ची समझ रखने वाले किशोर यदि अभिमान के आसन पर बैठे हैं तो वे प्रत्येक बात में अकड़ दिखाकर, अपनी ही बात को मनवाना चाहते हैं। युवकों में यह 'मद' के रूप में होता है। आदमी जब 'मद' में होता है तो वह भान भूल जाता है। मदमस्त व्यक्ति विवेक के साथ न विचार कर सकता है, न नपी-तुली बात कह सकता है और न अच्छे कार्यों को सफलता दे सकता है।

'मद' एक नशा है। युवा-युवतियों को सर्वाधिक मद होता है अपनी यौवनावस्था का। शास्त्रों में आठ प्रकार के मदों का विवरण मिलता है। वे आठ मद हैं-जाति मद, कुल मद, बल मद, रूप मद, तप मद, श्रुत (ज्ञान) मद, लाभ मद और ऐश्वर्य मद। युवकों में यौवन-मद के साथ उपर्युक्त आठ बातों में से जितनी अधिक बातें मिलती हैं-उनका मद, घमण्ड या अभिमान उतने ही गुना अधिक बढ़ जाता है। वृद्ध-व्यक्तियों में अपने अनुभव का, बड़प्पन का और उम्र में ज्येष्ठ होने से श्रेष्ठता का मद आ जाता है।

चातुर्मास के इस धर्मसाधना-काल में जीवन-विकास के लिए जीवन में मद को हटाकर, मानाभिमान का त्याग कर सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूप रत्नत्रय की आराधना के पथ पर निरन्तर गति करते हुए आगे बढ़ने का लक्ष्य बनाना है। ध्यान रखिएगा यह मद, यह अभिमान दूध में कांजी की तरह आत्मा के गुणों को नष्ट-भ्रष्ट करने वाला है।

भगवान महावीर की जीवन कल्याणी आगमवाणी में 'विनय' का सुन्दर वर्णन उत्तराध्ययन नामक मूल-सूत्र में मिलता है। इस मूल-सूत्र का प्रथम अध्ययन ही 'विनय' है, जो बताता है कि जीवन में प्रथम स्थान विनय का होना चाहिए।

अंग, उपांग, मूल, छेद और आवश्यक सूत्रों में मूल सूत्रों का वैसे ही महत्त्व है, जैसे वृक्षादि का सम्पूर्ण आधार मूल (जड़ें) और मकान आदि का सम्पूर्ण आधार मूल (नींव) है। सभी अंग-उपांग का जुड़ाव मूल के साथ है। सामायिक अंग का मूल क्या है? सामायिक अंग का मूल है-समत्व भाव। यदि सामायिक में समत्व नहीं तो सामायिक का फल शून्य है। प्रतिक्रमण का मूल क्या है? प्रतिक्रमण का मूल है-पापों की आलोचना, पापों का प्रायश्चित्त और पापों का विसर्जन। यदि यह नहीं हुआ तो उस प्रतिक्रमण का क्या प्रयोजन?

एक व्यक्ति को बुखार है। डॉक्टर को दिखाया, डॉक्टर ने थर्मामीटर से बुखार मापा। एक सौ दो डिग्री बुखार आया। डॉक्टर ने केप्सूल, गोलियाँ, पीने की दवाई आदि लिखी। रोगी ने दवाइयाँ ली। एक-एक दिन करते दो-तीन महीने व्यतीत हो गए, पर बुखार नहीं उतरा। अब आप ही बताइए बुखार नहीं उतरे तो गोली, केप्सूल का क्या महत्त्व?

बादाम का स्वादिष्ट, स्वास्थ्यवर्धक हलवा खाने को मिल रहा है, पर खाकर चार वक्त मल-विसर्जनार्थ जाना पड़ता हो तो बादाम का हलवा क्या गुण करेगा? इसी तरह हमारी सामायिक हम में समता पैदा कर रही है या नहीं, हमारा प्रतिक्रमण हमारे पापों को घटा रहा है या नहीं यह चिन्तन करना चाहिए।

यही बात विनय की है। वह आत्मा के गुणों का मूल है। सारे अन्य गुण एक तरफ और विनय गुण एक तरफ है।

उपवास, बेला, तेला, मासक्षमण, छःमासी तप किया। एक दिन, दो दिन, एक मास, छः मास, पूरे वर्ष भर बाँस की तरह एकांत वन में खड़े रहकर जप-तप-आराधना की, परन्तु अन्तर में विनय नहीं तो समस्त साधना, आराधना और तप व्यर्थ है। केवलज्ञान-प्राप्ति के योग्य जितना ज्ञान-ध्यान-तप करना चाहिए उतना कर लिया, पर विनय मन में नहीं आया तो केवलज्ञान उत्पन्न नहीं होगा, सर्वज्ञ नहीं बन सकेंगे। बाहुबलि का स्मरण कर लीजिए, कैसा तप था उनका, पर केवलज्ञान नहीं हुआ। क्या कारण ? विनय उत्पन्न नहीं हुआ। जब अपने से पहले दीक्षित लघुभ्राताओं को वन्दन का विचार आया तो उसी क्षण वे सर्वज्ञ-सर्वदर्शी बन गए।

'विणओ सासणे मूलं' भगवान महावीर ने इस सूत्र में बताया कि विनय जिनशासन का मूल है। यह धर्म का, जीवन का एवं व्यवहार का प्राथमिक गुण है। 'एकै साधे सब सधै' कथन में जिस एक को साधने की बात है वह विनय ही है। विनय गुण आत्मा में है तो अन्य सभी गुण वहाँ टिक सकेंगे और विनय यदि अन्तर से हट गया तो अन्य सारे गुण भी हट जायेंगे, अवगुणों में परिवर्तित हो जायेंगे। विनय हटा कि अभिमान का झोंका आत्म-साधना के महल को धराशायी बना देगा।

उत्तराध्ययन महावीर-वाणी की अंतिम देशना है। इस सूत्र के प्रथम अध्ययन 'विनयश्रुत' की पहली गाथा में वीतराग तीर्थङ्कर प्रभु फरमाते हैं-

संजोगा विप्पमुक्कस्स, अणगारस्स भिक्खुणो।
विणयं पाउकरिस्सामि, आणुपुव्विं सुणेह मे।।

प्रभु ने बताया कि जो सांसारिक संयोगों से मुक्त हैं, गृहत्यागी अनगार हैं, निर्दोष भिक्षा पर जीवन निर्वाह करने वाले भिक्षु हैं, उनके विनय का मैं क्रमशः प्रतिपादन करूँगा, तुम मुझ से ध्यान से सुनो।

मैं भी आपसे यही कहता हूँ। प्रभु की यह अंतिम देशना बहुत ही ध्यान-पूर्वक सुनने, गुनने-व चिन्तन में उतारने की वस्तु है। यह केवल संयोगों (सांसारिक) से मुक्त अनगारों और भिक्षुकों के लिए ही नहीं, अपितु आप सभी के लिए भी जीवन-हितकारी है। यह आपके व हमारे जीवन को जीवन के मूल-स्रोत से जोड़ने वाली है। जो मानव जीवन में आत्म-विकास चाहते हैं, वे इस मूल-स्रोत को अवश्य निरन्तर सुनें।

वाचना प्रमुख सुधर्मा स्वामी कह रहे हैं कि विनय किनके लिए जरूरी है। जो संयोगों से मुक्त हैं, उनको तो विनय आवश्यक है ही, जो संयोग-सहित हैं, जो संसार में घर-परिवार-समाज आदि के मध्य हैं, उनके लिए भी विनय जरूरी है। गृहस्थ श्रावक के जीवन में विनय की महती आवश्यकता है।

पुत्र यदि विनय करेगा तो उसका अपना पुत्र भी विनय को जीवन में स्थान देगा। बहू में विनय भाव होगा तो आने वाली उसकी अपनी पुत्र वधू भी उसका विनय करेगी। इसके विपरीत यदि सासू का अनादर किया, अपमान किया, विनय-भाव से सेवा नहीं की तो जैसा किया, वैसा ही भरना पड़ेगा।

एक बहू ने वृद्धावस्था में अपनी सासू का अविनय किया। उसने उसे घृणा करते हुए घर के बाहर दरवाजे की चौखट पर खटिया डालकर बिठा दिया। वहीं सोना, वहीं उठना-बैठना, वहीं खाना-पीना। दिनभर खाँसी करती थी, थूँकती थी, अतः उसके बर्तन अलग रखे। पहले टूटे-फूटे बर्तनों में खाना देती, फिर मिट्टी के बर्तन ले आई। वे बर्तन खटिया के पास पड़े रहते, समय होता तब उनमें भोजन, पानी, चाय-दूध आदि दे दिया जाता।

बहू के बड़े बेटे की शादी हुई तो बहू भी सास बन गई। कुछ दिन बीते तो वृद्धा सासू ने संसार छोड़ दिया। नई पुत्र-वधू ने वे मिट्टी के बर्तन जिनमें वृद्धा को भोजन दिया जाता था, सहेज कर रख दिए। पहले वाली बहू की एक दिन उन पर नजर पड़ी तो उसने उन्हें उठाकर बाहर फेंकना चाहा। पुत्रवधू ने

देखा तो रोक दिया अपनी सासू को। सासू ने कहा–''ये तो मेरी सासू के लिए थे, वे स्वर्गस्थ हो गई, अब इनका यहाँ क्या काम?'' पुत्रवधू बोली–''सासूजी! आप भी तो वृद्ध होने जा रही हैं। अब ये आपके काम आऐंगे।''

जैसा अगली बहू ने अपनी सासू के साथ किया, उसकी पुत्रवधू वैसा ही उसके साथ भी कर रही है। यही संसार की रीति है। सांसारिक–संयोगों में जीने वाले प्राणी एक–दूसरे का अनुकरण करने की प्रवृत्ति रखने वाले होते हैं। आप गाली बोलेंगे तो बच्चे भी बोलेंगे। बच्चे बोलेंगे तो आपको बुरा लगेगा, आप उसे रोकना चाहेंगे, पर मना कर नहीं सकेंगे, क्योंकि आप स्वयं अपशब्दों का प्रयोग करते हैं, गालियाँ देते हैं। धूम्रपान करते हैं, गुटखा खाते हैं तो बच्चे भी सीखेंगे। आप उन्हें मना किस मुँह से कर सकेंगे? बड़ों के प्रति विनय और छोटों के प्रति स्नेह भाव रखिए। सामायिक में बैठे हैं, लड़का आया, चलते हुए उसने आपको ठोकर लगा दी। लगा दी क्या, अनजाने में लग गई। आप क्रोध में आ गए। यह ठीक नहीं है। आँखें लाल–पीली मत कीजिए। क्रोध आया अंतर में और विनय गया अन्दर से।

गाथा में 'अणगारस्स भिक्खुणो' शब्द आया हैं तो क्या केवल अनगार और भिक्षु के लिए ही विनय का कथन है। ऐसा नहीं है, आगारी–संसारी भी विनय रखेंगे तो भावी पीढ़ी भी उनको आदर–सत्कार, मान–सम्मान दे सकेगी।

जो लोग कुटुम्ब एवं सम्बन्धों में घिरे–बंधे हैं, उनका लौकिक–कर्त्तव्य–पालन भी विनय का ही एक रूप है। सौ–पचास जरूरी काम हैं फिर भी लोक में रहते हुए इन कर्त्तव्यों का पालन करना पड़ता है। पड़ौस में या मौहल्ले में गमी हो गई, आपके घर में कोई सदस्य बहुत बीमार है, उसे सेवा की अत्यावश्यकता है, पर फिर भी गर्मी में तो जाना ही पड़ेगा, यह लोक–विनय है, लोक–आचार है। मन में कभी नहीं जाने की बात आ भी गई तो

अन्तर से रह-रह कर एक बात उठने लगेगी-आज मैं नहीं गया, कल मेरे घर काम पड़ेगा तो कौन आएगा ?

लोक-आचार के साथ लौकिक शिष्टाचार भी विनय है। कभी कोई गमी में जाना पड़े तो अर्थी के साथ पैदल चलने की परम्परा है। इस परम्परा या शिष्टाचार को नहीं निभाने वाले अविनीत होते हैं और उन्हें लोकापमान का, जग-हँसाई का पात्र बनना पड़ता है।

किसी गाँव में एक सेठ अपने-आपको बहुत ऊँचा, प्रतिष्ठित एवं सम्मानित समझता था। धन की कमी नहीं थी, व्यापार भी अच्छा चलता था, अतः लोग भी उन्हें आदर देते थे, पर यह आदर दिखावा मात्र था। पीठ पीछे उनके व्यवहार की आलोचनाएँ की जाती थीं। सेठ की आदत थी कि जब कभी गाँव में कोई गमी होती तो लोकाचार में घोड़े पर बैठकर जाता था। मन में सभी लोग उसकी इस आदत पर हँसते, पीठ पीछे उन्हें मूर्ख एवं घमण्डी कहते। सेठ को भी इसकी कुछ-कुछ भनक लग जाती, पर सेठ इन बातों की परवाह नहीं करता था।

एक दिन सेठ जी के यहाँ कोई गमी हो गई। अर्थी उठाने और लोकाचार में जाने के लिए गाँव भर को कहलाया गया। गाँव में सभी ने मिलकर तय किया कि सेठ को शिक्षा देनी चाहिए, सबक सिखाना चाहिए। हरेक के यहाँ घोड़ा तो होता नहीं, पर कुछ ने अपने जाति भाई, मित्र, सम्बन्धी से कुछ देर के लिए घोड़े माँगे तो कुछ लोगों ने किराए के घोड़ों का प्रबन्ध कर लिया। अर्थी उठाने का समय हुआ। लोग एक-एक कर आने लगे। सेठ ने देखा, जो भी आ रहा है वह घोड़े पर बैठकर आ रहा है। सेठ ने कुछ कहना चाहा, पर उसे याद आया अपना व्यवहार, वह कुछ न कह सका। उसने तब अपने अविनय, अपने अशिष्ट-आचार के लिए एक-एक व्यक्ति से क्षमा माँगी। एक अविनय के कारण कितनी शर्मिन्दगी उठानी पड़ी उसे।

आपको तो लोक-व्यवहार के नाते विनय करना पड़ता है, पर अनगार के लिए विनय का इतना महत्त्व क्यों ? वहाँ तो न गोत्र का प्रश्न है न जाति का। न घर से कुछ लेना-देना है, न सम्बन्धी-जनों से। फिर उसके लिए विनय की क्या आवश्यकता है ? क्यों करे वह विनय ? किसके प्रति करे वह विनय ?

अणगार संत-साधकों को विनय आत्मगुणों की वृद्धि के लिए, ज्ञान-दर्शन-चारित्र की उत्कृष्टता के लिए करना चाहिए। वह जिनकी नेश्राय में है, उनका भी विनय करता है। संत दीक्षावय में बड़ों के प्रति आदर, सम्मान एवं विनयभाव रखेगा तो बड़े ज्ञानी गुरु भगवन्तों का स्नेहपात्र बनेगा, आशीर्वाद पाएगा और साधना के क्षेत्र में उन्नति कर सकेगा।

किसी घर में बड़ों का आदर नहीं, छोटों के प्रति स्नेह नहीं तो घर प्रीति-रहित भूतों का डेरा बन जाएगा। फिर तो ''थैं थाणें, म्हें माणें''-वाली भावना फैल जाएगी। पुत्र यदि पिता को कुछ ऐसी बात कहे और पिता भी पुत्र को अपनत्व रहित भावना से व्यवहार करे तो क्या होगा ? पुत्र का पिता से अलग होना निश्चित है। इस प्रकार अविनय से घर-परिवार के टुकड़े होंगे। शिष्य अविनीत है, आज्ञा में नहीं है तो अलग कर दिया जाएगा या अलग हो जाएगा और सम्प्रदाय, संघ विघटित हो बिखर जाएगा।

घर में विनय है तो सम्प है, सम्प होगा तो सम्पत्ति होगी, घर स्वर्ग बन जाएगा। कच्ची मिट्टी से घड़ा यदि बनना है तो उसे लकड़ी की टाँच सहनी पड़ेगी। अनगढ़ पत्थर को सुन्दर मूर्ति में ढलना है तो लोहे की टाँकी की टाँच सहनी पड़ेगी, बालक को सुशिक्षित, सुसभ्य बनना है तो बुजुर्गों-शिक्षकों की डाँट-फटकार और मार सहनी पड़ेगी। शिष्य को यदि साधना के पथ पर प्रगति करनी है-लक्ष्य सिद्धि करनी है तो गुरु के अनुशासन में रहकर गुरु-सेवा, गुरुभक्ति, गुरु विनय करना ही पड़ेगा।

इसी तरह जो बड़े हैं उनका वरदहस्त एवं स्नेह छोटों पर होना चाहिए। यह उनके विनय का रूप है। माता स्वयं गीले में सोती है, पर बच्चे को सूखे में सुलाती है। पुत्र-पुत्री को योग्य बनाने के लिए माँ-बाप क्या-क्या कष्ट नहीं उठाते ? घर में यदि धन है, सम्पदा है, ऐश्वर्य है, पर आदर और स्नेह भाव नहीं है तो उस घर में एक मिनट भी कोई ठहरना नहीं चाहेगा। स्वयं उस घर के सदस्य भी घर जाना नहीं चाहेंगे। मन यही करेगा कि बाहर ही चले जाएँ, कहीं अन्यत्र जाकर समय बिताएँ। कभी-कभी तो घर के क्लेश-कलह भरे वातावरण से ऊब कर युवक-वर्ग रात्रि में बारह-बारह बजे घर जाता है, होटलों में खाना खाता है, कई दिनों तक बाहर भ्रमणार्थ चला जाता है। क्यों ? घर में अविनय है। न बड़ों के प्रति छोटे आदर दिखाते हैं, न छोटे के प्रति बड़े स्नेह करते हैं।

हमारे आचार्यों ने कहा है-

सबसे पहले प्रेम है, वाके ऊपर नेम।
ज्याँ घर प्रेम न नेम है, त्याँ घर कुशल न क्षेम।।

बंधुओं! जिस घर में प्रेम, आदर, स्नेह है वहाँ किसी नियम को बनाने की आवश्यकता नहीं, स्वतः समय पर जो होना चाहिए वह हो जाएगा। जहाँ प्रेम नहीं, विनय नहीं, वहाँ नित्य नए-नए नियम बनेंगे फिर भी कलह रहेगा।

विनय सीखिए, विनय को अन्तर में स्थान दीजिए। विनय ही निर्जरा है, विनय ही तप है। जीवन में यदि विनय आ गया तो सुख-शांति-आनन्द है।

बालोतरा
11 जुलाई, 1992

3

मोक्ष का सरलतम मार्ग–दान

तीर्थङ्कर भगवान महावीर की अन्तिम अनुपम वाणी 'उत्तराध्ययन सूत्र' के सार रूप से आपके सामने रखी जा रही है। 'उत्तराध्ययन सूत्र' के 14वें अध्याय में दान का प्रभाव बतलाया गया है। मोक्ष का सरलतम रास्ता दान है। शील श्रेष्ठ है पर उसका पालन करना तलवार की धार पर चलना है। तप अनेक प्रकार की लब्धियाँ और सिद्धियाँ देने वाला है पर रूखी शिला को चाटने की तरह अपने आपको अपनी तृष्णा और इच्छाओं का दमन करना प्रत्येक के लिए संभव नहीं। अनेक जगहों पर उच्चारण किया जाता है 'भावे भावना भाइये, भावे दीजे दान''। भावना से हाथी के हौदे पर बैठे–बैठे मोक्ष हो सकता है, भावना से शीशमहल में रहते मोक्ष हो जाता है, भावना से नरक में जाते–जाते मोक्ष के दरवाजे खोलने वाले महापुरुष भी हुए हैं पर संसारी जीवन में ऐसी भावना आनी अति कठिन है। शास्त्र कहता है–समुद्र में पत्थर तिरे तो संसारी को ऐसी शुभ भावना आए। हर एक के लिए यह सम्भव नहीं है। हाँ, कोई अतिशय पुण्यशाली हो और उसे शुभ संयोग मिल जाय और भावना आ जाय, यह दूसरी बात है अन्यथा हल्के स्तर की भावना जीवन में चलती रहती है।

प्रभु महावीर कह रहे हैं, तिरने का सरलतम मार्ग है–दान। हर आदमी इसका पालन कर सकता है। संगम जैसा ग्वाला, वह न पढ़ा–लिखा था, न धर्माराधना जानता था, उसने शुद्ध भावना के साथ एक बार दान दिया तो संगम से शालिभद्र और शालिभद्र से सिद्धगति में चला जायेगा। कैसे चला जायेगा? क्या किया उसने? एक बार दान दिया और मोक्ष पा लिया। यह है दान का प्रभाव। एक बार की शुभ भावना ऐसी बनती है कि अनन्त–अनन्त जन्म के बंध को तोड़ देती है। शास्त्रकार कह रहे हैं–मानव! अगर तेरी पुण्यशालीनता बढ़ती जा रही है और तुमने पाया है तो कुछ दे। कहा भी है–

तुलसी जग में आय के, कर लीजे दो काम।
देने को टुकड़ा भला, लेने को हरिनाम।।

अगर पाया है तो देकर भी पुण्यशालीनता प्राप्त की जा सकती है। ज्यूँ देगा त्यूँ बढ़ेगा। चणे की बूँट को ज्यूँ–ज्यूँ चूँटे वह बढ़ती जाती है। सम्पत्ति का भी यही रूप है। देने के साथ उसमें वृद्धि होती रहती है।

पुण्यशालीनता बढ़ती है तब देना तो ठीक लेकिन यदि जिन्दगी में उतार का अन्दाजा हो तो क्या करना? नीति कहती है–तब भी दे। देना व्यर्थ नहीं जायेगा। सम्पति जाने वाली है तब देकर लावा क्यूँ न ले रहा है। जानता है यह रहने वाली नहीं है, नष्ट हो जायेगी। अगर तूँने हाथ से नहीं दिया और कदाचित् जीवन चला गया तो·····?

पाया है तो दे। महाराज भोज में ऐसे ही संस्कार थे। कोई भी उनके दरबार में आता, खाली नहीं जाता। किसी ने दरबार में जाकर स्तुति की। एक श्लोक सुनाया महाराज भोज खुश होकर किसी को हार उतार कर दे देते, किसी को स्वर्ण–आभूषण और मोहरें दे देते, किसी को हाथी तो किसी को पाँच गाँव देकर भेजते।

राजा आने वाले को देने लगा। पास बैठा था मंत्री। मंत्री के मन में आया कि महाराज इसी तरह देते ही रहे तो एक दिन खजाना खाली हो जायेगा, राज्य का दिवाला निकल जायेगा। एक-एक श्लोक पर हीरे का हार, स्वर्ण आभूषण, हाथी मोहरें देने से राज्य का दिवाला निकल जायेगा। मैं मंत्री हूँ, अगर महाराज के यह बात ध्यान में नहीं लाता हूँ तो भी अच्छा नहीं, पर कहूँ तो कैसे कहूँ? ''धणी रो धणी कुण।'' मंत्री की हिम्मत नहीं हो रही, लेकिन बिना कहे भी तो नहीं रहा जाता। उसने समझा अगर ध्यान नहीं दिलाऊँगा तो महाराज भी कह देंगे-तू मंत्री था, तूने अपना कर्त्तव्य क्यों नहीं निभाया? तुझे तो कहना चाहिए था।

जीवन में कभी-कभी ऐसी स्थितियाँ भी आती हैं। मंत्री ने आखिर एक युक्ति निकाली। उसने एक बोर्ड पर एक कड़ी लिख दी। 'आपदर्थ धनं रक्षेत्।' मतलब था-आपत्ति के लिए धन की रक्षा करो। सभी दिन एक समान नहीं होते, सुख और दु:ख आते रहते हैं। यह जीवन एक डोलर हिण्डा है। इसमें कभी सुख का पलड़ा ऊपर की ओर जाता है तो कभी दु:ख का पलड़ा नीचे उतर जाता है। सुख में भाई भूल जाता है कि तकदीर हर समय ऐसी ही नहीं रहेगी।

महाराज दूसरे दिन दरबार में पधारे। सामने बोर्ड पर लिखी पंक्ति पर नज़र गई। सोचा-मुझे कोई कहना चाहता है, इसीलिए लिखा है·····'आपदर्थ धनं रक्षेत्' महाराज ने पंक्ति के नीचे लिख दिया-'भाग्यभाजांक्वचापद:' अर्थात् जो तकदीर लेकर आया है, भाग्यशाली है, पुण्यशालीनता का खजाना जिसके पास है, उस पर आपत्ति आती ही नहीं। महाराजा ने लिख दिया मैं दे रहा हूँ तो देने दे।

दरबार रवाना हुए, मंत्री ने महाराज की लिखी पंक्ति पढ़ी तो सोचा– महाराज को घमंड भी बहुत है। महाराज को यह पता नहीं कि अयोध्या नरेश रामचन्द्रजी का राज्याभिषेक होने वाला था किन्तु उन्हें वनवास हो गया। सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र का एक रात में पासा ऐसा पलटा कि उन्हें राजदरबार छोड़ना पड़ा। महाराज को किस बात का घमंड है अच्छे–अच्छे की कतदीर बदल गई। तकदीर बदलती है तो पता नहीं चलता इसलिए घमंड नहीं करना चाहिए। मंत्री ने तीसरी पंक्ति लिख दी– 'देवं हि कुप्यतेक्वापि।'

मंत्री कहना चाहता था इसलिए पंक्ति लिखकर कह दिया कि कभी–कभी तकदीर भी बदल जाया करती है। तकदीर उल्टा हो तो दूध जैसा अमृत भी जहर बन जाता है और तकदीर सीधी हो तो कभी–कभी खाया जहर भी अमृत का काम कर जाता है। एक व्यक्ति बीमारी से इतना पीड़ित हो गया कि वह उसे सहन नहीं कर पाया। उसने सोचा इससे तो अच्छा है जहर खा लूँ। उसने जहर खा लिया। जहर खाने से आदमी की मौत हो सकती है परन्तु तकदीर अच्छी थी इसलिए जहर खाने पर जहाँ जहरी फोड़ा था, जहर से जहर दब गया और वह चंगा हो गया।

मंत्री कहना चाहता था–अच्छे–अच्छे की कतदीर बदल जाती है। कल तक जो राजा था, आज मारा–मारा घूम रहा है। अच्छे–अच्छे नरेशों की चलती थी तब खूब चलती थी आज पूछ तक नहीं। महासती अंजना जिसकी कुक्षि से हनुमानजी पैदा हुए, कहाँ हुए? जंगल में। माता जिसकी सती अंजना, पवन जिसका पिता। मंत्री ने तीसरी पंक्ति लिख दी– 'दैवं हि कुप्यते क्वापि' मतलब था–आप घमंड नहीं करे, अच्छे–अच्छे की तकदीर बदल जाती है।

महाराज दूसरे दिन दरबार में उपस्थित हुए। बोर्ड पर लिखी अगली पंक्ति पर नज़र गई, सोचा–मुझे समझाने वाला अभी तक माना नहीं है। उसे क्या? देने वाला देता है, लेने वाला लेता है। अकबर–बीरबल का एक किस्सा आता है। बादशाह अकबर पूछता है–हथेली में बाल क्यों नहीं होते? आदमी के सिर पर बाल हैं, पैर पर बाल हैं, हाथ और पेट पर बाल हैं, हथेली पर नहीं, इसका क्या कारण? बीरबल बोला–महाराज! कारण है। थारे देता–देता और म्हारे लेता–लेता बाल घिस गया। देवो थे, लेऊँ मैं, दूसरा देख–देख ने हाथ मलै इण वास्ते ब्याँरा भी बाल घिस गया।

महाराज भोज कहना चाहते थे, देने वाला मैं, खजाना मेरा, इसे चिन्ता क्यूँ? भोज ने चौथी कड़ी लिख दी–'संचितोऽपि विनश्यति।' अगर इकट्ठा करके खजाने में रखा तो भी कुछ होने वाला नहीं है। हाथ दिया ऐसे ही नहीं जाता। दिया हुआ दान व्यर्थ जाने वाला नहीं है। तू देगा तो भी जाने वाला है, वह रहेगा नहीं और मान लो धन रह भी गया परन्तु तेरी आयुष्य का क्या भरोसा? यदि तू बीच में ही चला गया तो.....यह धन यहीं रह जाना है।

शास्त्रकार कह रहे हैं–तेरी पुण्यवानी है, भाग्यशालीनता है, अगर तेरे चरण सीधे पड़ रहे हैं तो दे और अगर तेरी पुण्यवानी कम हो रही है तो भी दे। मोक्ष का सरलतम मार्ग दान है। आपने सुन रखा है–राजा, रानी, पुरोहित, पुरोहितानी और पुरोहित के दो बच्चे, वे छहों जीव मोक्ष में गए। कैसे? पुरोहित के लड़कों को ज्ञान जगा। उन्होंने दीक्षा की भावना व्यक्त की। पुरोहित और पुरोहितानी में भी लड़कों को देखकर निवृत्ति जगी। वे चारों संसार छोड़कर जाने की तैयारी करने लगे। छोड़ने वाले, ममता तोड़ने वाले

पीछे की फिक्र नहीं करते। स्वामी विहीन धन कहाँ पहुँचने लगा ? राजदरबार में। रानी को पता चला, वह राजा के पास पहुँची बोली–आप ही ने धन दिया, आप उसे वापस कैसे ले रहे हैं ? दिया हुआ वापस नहीं लिया जाता।

महाराज ने कहा–तुम्हारी बात सही है। नीतिकार भी कहते हैं कि दिया हुआ वापस लेना सज्जन का काम नहीं। दिया हुआ वापस लेना तो ठीक वैसा ही है जैसे वमन किया पुन: ग्रहण करना है। यह तो कौवे और कुत्ते का काम है। राजा ने कहा–मैं इस बात को जानता हूँ लेकिन राजा होने के नाते मेरी समाज के प्रति भी जिम्मेदारी है। मैं इस सम्पत्ति को जोर–जबरदस्ती से नहीं ले रहा हूँ, न मैंने डाका डाला है, न किसी की हड़प रहा हूँ। जब इस सम्पत्ति का कोई स्वामी नहीं है तो उसका मालिक राजा होता है। राजा ने कहा–मैं उससे माँग नहीं रहा हूँ और जब उस सम्पत्ति का कोई वारिस ही नहीं रहा तो फिर उसे राज्य में लेने में कोई आपत्ति भी नहीं है। राजा ने महारानी से कहा–आपने भी तो ये जेवर पहन रखे हैं। अगर आपका यही विचार है तो इन्हें क्यों धारण कर रखा है ? आमदनी/आय कैसे होती है, आप क्या जानें ? राजा की बात रानी समझ गई। वह आसक्ति वाली नहीं थी। रानी ने तुरंत कह दिया–भूषण को दूषण मैं समझूँ·····।

महारानी ने तुरंत सब कुछ छोड़कर दीक्षा की तैयारी के भाव बता दिये। महारानी जब सब कुछ छोड़ रही है तो मुझे भी संयम मार्ग पर आगे बढ़ना है। ऐसा विचार कर महाराज भी तैयार हो गये। इस तरह वे जीव मोक्ष मार्ग की ओर बढ़ गये। उनके तो समझ में आ गया आप भी सुन रहे हैं, किसी को समझ में आया हो तो खड़े हो सकते हैं।

छोड़ने वाले पाते हैं, जोड़ने वाले डूबते हैं। आपने कुछ पाया है तो दें। आपका स्वधर्मी भाई इंसान है। वह रो क्यों रहा है, आप उसके दु:ख दर्द

को समझें ही नहीं तो मिटायेंगे कैसे ? उसके दु:ख-दर्द को मिटाना आपका काम है। आप सेठ हैं और सेठ होकर कुछ देंगे तो आपके हुक्म में पाँच-दस रहेंगे। लेकिन यदि आपने चार मंजिल की हवेली बना ली और किसी को कुछ दिया ही नहीं तो आपकी हवेली कैसे सुरक्षित रहेगी ? इन पर भी सोचना चाहिए।

पाया है तो दें। दिया हुआ व्यर्थ नहीं जाता। दान मोक्ष का सरलतम मार्ग है। आपके पास ज्ञान है तो ज्ञान दान करें। धन है तो धन दें, शरीर में शक्ति है तो सेवा करें। जो देगा, उसे भव-परभव में सुख-शांति-आनंद प्राप्त होगा।

बालोतरा

22 अक्टूबर, 1992

4

अहिंसा, दया और करुणा की धारा जीवन में प्रवाहित हो ?

जीवन निर्माण हेतु ज्ञान और संस्कार दोनों की आवश्यकता है। बिना जाने, कल्याण का मार्ग क्या है ? पाप का मार्ग क्या है ? नहीं कहा जा सकता। तीर्थङ्कर भगवान महावीर की वाणी में–

सोच्चा जाणइ कल्लाणं, सोच्चा जाणइ पावगं।
उभयंपि जाणइ सोच्चा, जं सेयं तं समायरे।। दश. 4/11।।

जीवन का सार क्या ? जानकर क्या करना चाहिए ? जाना हुआ व्यक्ति क्या करता है ? आज इस पर कुछ चिंतन करें।

एयं खु णाणिणे सारं, जं ण हिंसइ किंचणं।
अहिंसा समयं चेव, एयावंतं वियाणिया।। सुय 1/4।।

जान लेने का, श्रवण कर लेने का और हिताहित के मार्ग के चिंतन से निर्णायक भूमिका प्राप्त कर लेने का मात्र कारण अहिंसा है। ज्ञानी दूसरों को

पीड़ा नहीं देता। ज्ञानी अपने समान सबको समझता है। ज्ञानी आत्मभाव में विचरण करता है। यही सिद्धांत है, यही विज्ञान है, यही धर्म का सार है।

भारतीय संस्कृति में व्यवहार तथा परमार्थ के जितने भी माप-तोल हैं, जितने भी निर्णय और निश्चय करने वाले सिद्धांत हैं, वे सब दया पर आधारित हैं। सिद्धांत की सूक्तियों में ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं-

तुंगं ण मंदराओ, आगासओ विसालयं नत्थि।
जह तह जयम्मिजाणसु, धम्ममहिंसा समं नत्थि।।

जैसे पर्वतों में सुमेरू से बढ़कर कोई नहीं, विशालता में आकाश से बढ़कर कोई विस्तृत नहीं, वैसे ही सम्पूर्ण धर्मों में अहिंसा से बढ़कर कोई धर्म नहीं। यहाँ का आहार-पेय, वस्त्र-परिधान, रहन-सहन, आजीविका चलाने के साधन जीवन के जितने भी व्यवहार हैं, सब दया से तोले जा रहे हैं। खाना कौनसा ? जिसमें कम से कम हिंसा हो। मांसाहार का क्यों निषेध किया गया ? मांसाहार मानव का खाद्य नहीं, आहार नहीं। मांसाहार से जीवन की मूलभूत करुणा भावना समाप्त होती है। आदमी नृशंस बनता है। जिसके घट में दया नहीं तो कुछ भी नहीं। उर्दू के शायर ने कहा है-

अगर तेरे दिल में दया ही नहीं,
समझ ले तुझे दिल मिला ही नहीं।।

दया है तो धर्म है। दया के महात्म्य को समझने के लिए प्रभु महावीर ने 'दशवैकालिक सूत्र' में कहा-

तत्थिमं पढमं ठाणं, महावीरेण देसियं।
अहिंसा णिउणा दिट्ठा, सव्वभूएसु संजमो।। दश. 6/9

धर्म के अनेक अंग हैं, मार्ग हैं, तथ्य हैं। उन सब में पहला स्थान अहिंसा का है। सम्पूर्ण जीवों को पीड़ा से रहित बनाने वाली अहिंसा है।

एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक सम्पूर्ण जीवों में जीने की इच्छा है, मरना कोई नहीं चाहता। नरक के नारकियों से लेकर नरेन्द्र-देवेन्द्र तक भी जीने की चाहना करने वाले हैं। जो जीना चाहता है, वह दूसरों को जिलाना चाहता है। जो मारता है, उसे मरना पड़ता है। काटता है, उसे कटना पड़ता है। दु:ख देता है, उसे दु:ख भोगना पड़ता है।

अहिंसा से बढ़कर कोई धर्म नहीं। अहिंसा सब पापों का परिमार्जन है। हिंसा का कोई परिमार्जन नहीं। एक व्यक्ति झूठ बोलता है, कल उसका मन शांत हो सकता है, पश्चात्ताप करके झूठ से ग्लानि हो जाय और वह सत्यवादी भी बन सकता है। मतलब झूठ बोलने वाला अपने पाप धो सकता है। चोरी के पाप में लिप्त व्यक्ति की भावना, दण्ड से बदल सकती है। रोहिणेय जैसा चोर जिसने सैंकड़ों का माल हड़पा लेकिन ज्योंही उसे चोरी से घृणा हुई, चोरी का पाप छूट गया। झूठ-चोरी के पाप धोये जा सकते हैं, अहंकार का पाप साफ किया जा सकता है पर जिसका जीवन हरण कर लिया, क्या आप उसके प्राणों को लौटा सकते हैं? जीवन से रहित किये जीव को फिर से जीवन दान नहीं दे सकते। आप तो छद्मस्थ हैं। अनन्त शक्तिमान वीतराग भगवंत भी प्राण रहित को प्राण नहीं दे सकते। आज एक व्यक्ति का दिल दूसरे व्यक्ति में लगाया जा सकता है, किसी की आँख दूसरे व्यक्ति की आँख में बैठाई जा सकती है, अंगों का परिवर्तन तो हो सकता है, लेकिन प्राणी को प्राण रहित करने के बाद उसमें फिर से प्राण नहीं दिये जा सकते। इसलिए सबसे बड़ा पाप हिंसा है। यह बात आपके समझ में आई या नहीं? मैं कह रहा हूँ इससे नहीं, आपके समझ में आनी चाहिए।

अनेक शास्त्रों का सार कह रहा हूँ-तथ्यपूर्ण कह रहा हूँ। आपकी माता आपके जन्म पर आप पर दया नहीं करती और इधर जन्म हुआ उधर गला घोंट दिया जाता तो सामायिक कौन करता? शील कौन पालता? आप

प्राणयुक्त हैं इसीलिए आप यहाँ बैठे हैं, व्याख्यान श्रवण कर रहे हैं, सामायिक हो रही है। दया नहीं करने वाला सम्पूर्ण पापों को करता है। चोरी करने वाला एक पाप करता है, झूठ बोलने वाला एक पाप करता है पर जो हिंसा करता है वह सम्पूर्ण पाप करता है। दया है तो जीवन है। जीवन है तो धर्म है।

अब, दूसरी तरह से चिंतन करें। अहिंसा को परमोधर्म कहा। अहिंसा धर्म का मूल है, आज हम इस मूल धर्म को कितना उपेक्षित कर रहे हैं? दूसरे शब्दों में आप धर्म से कितने दूर हटते जा रहे हैं? हिंसा कितनी व कैसी अनर्थकारी है? आप चिंतन करेंगे तो रोंगटे खड़े हो जायेंगे। खाना पहले भी खाया जाता था, आज भी खाया जाताहै, लेकिन पहले मन उतना काला नहीं था। आज क्या-क्या बनावट करके डिजाइनों में सब्जियाँ काटी जा रही है। खाने में एक ही चीज चार दिन लगातार आ जाय तो माथा ठनक जायगा।

आज खाना-पान में हिंसा बढ़ी है। जैन नामधारी मांसाहारी बन रहे हैं। केक, बिस्कुट, खाद्य-पदार्थ, दवाओं में कैसे हिंसाकारी पदार्थ काम में लिये जा रहे हैं। चिंतन करें। जो पदार्थ तामसी कहलाते थे, खाने योग्य नहीं माने जाते थे, उनको आज सामूहिक रूप में काम में लिया जा रहा है। आज शादी हो-विवाह हो या पार्टियाँ, आप में से कई एक लहसुन-प्याज तक काम में लेते हैं इसे क्या कहा जाय? क्या यह दया का रूप हो सकता है? क्या आपके मन में दया माता की कोई भावना है? व्याख्यान के अंत में 'दया सुखाँ री बेलड़ी' बोलने वाले क्या बोल रहे हैं? इस पर चिंतन करने की आवश्यकता है।

कल तक सूती या ऊनी कपड़े पहनने वाले आपके बच्चे आज चमड़े की जर्सी किस शान से पहनते हैं? चमड़े की जर्सी कैसे बनती है? आपने गंभीरता से सोचा ही नहीं। पहले बहिन बाजार से निकलती थी तब उसमें शर्म के भाव सहज दिखलाई पड़ते थे परन्तु आज बहिनें शान से चमड़े का मनी बैग लटका कर चलती हैं। वह चमड़ा कैसे प्राप्त होता है? उसका उन्हें कोई

ध्यान तक नहीं। आप पुराने लोग तो फिर भी कपड़े की थैली हाथ में लेकर निकल जायेंगे परन्तु आपके बच्चे थैले के बजाय बैग रखना पसंद करते हैं, क्यों? आप थोड़ा चिंतन तो करें कि चमड़े के बैग कैसे बनते हैं? जिन्दे हालात में चमड़ी उतारना तो दूर, थोड़ा गर्म पानी डाल दें तो क्या महसूस होता है? जब आपको गर्म पानी डालना भी सुखदायी माफिक नहीं होता तो कल्पना कीजिए जिन्दे जानवरों पर गर्म-गर्म पानी डालकर चमड़ी उतारी जाती है और उस चमड़ी से पर्स-बैग बनाये जाते हैं। क्या यह जीव दया में धर्म मानने वालों के काम में लेने योग्य है? आपके सामने डॉक्टर इंजेक्शन लेकर खड़ा हो जाये तो कइयों को पसीना आ जाता है। जब एक सुई नहीं देखी जाती तो ऐसे करूणाशील लोग शान से चमड़े के बैग-पर्स कैसे काम में लेते हैं? उन्हें तो सोचना चाहिए कि इस तरह की सामग्री का उपयोग हिंसा को बढ़ावा देना है, उसमें भागीदारी डालना है, दु:ख को निमन्त्रण देना है।

आहार व्यवहार की क्या बात कहूँ। औषधियों में भी कैसी-कैसी वस्तुएँ मिलायी जा रही हैं। हड्डी, मांस, चमड़ी, खून क्या-क्या उपयोग में नहीं आ रहे हैं? आप सोचने बैठेंगे तो रोंगटे खड़े हो जायेंगे।

महान् पुरुषों का उपदेश है-मानव! जो दे नहीं सकता, उसको ले भी मत। तू धन दे सकता है, सामान दे सकता है, बेटा-बेटी दे सकता है पर प्राणी को प्राण रहित करने के बाद पुन: प्राण नहीं दे सकता, इसलिए किसी जीव के प्राण हरण का तुझे क्या अधिकार है? अनर्थकारी अनावश्यक भयंकर पाप कर्म क्यों कर रहा है?

जीवन चलाने के लिए हिंसा होती है, करनी भी पड़ती है पर अनर्थ की हिंसाएँ हो रही हैं उससे बचना चाहिये। आप गृहस्थ हैं तो मकान की जरूरत हो सकती है, श्रावक उसमें भी उपयोग रखे तो अल्पारंभी रह सकता है परन्तु आज अनर्थ की हिंसा बढ़ रही है। बंगला बनायेंगे तो बगीचा भी बना

लेंगे। अनर्थकारी हिंसा के एक-दो नहीं, कई-कई नाम गिनाये जा सकते हैं। मनोरंजन के लिए हिंसा करते विचार नहीं होता। आज मनोरंजन के लिए मेंडे लड़ाये जाते हैं, मुर्गे लड़ाये जाते हैं, घोड़े दौड़ाये जाते हैं। घोड़ों की रेसें होती हैं। कौन-सा घोड़ा प्रथम आता है, इसलिए उन्हें मार-पीटकर तेज दौड़ाया जाता है। यह भी हिंसा में सम्मिलित है, अनर्थकारी है।

कई हिंसाएँ रूढ़ियों के कारण होती हैं। आपने सुन रखा होगा-मिश्र के बादशाह का जब देहावसान होता है तो उसकी रानियों को जिन्दा ही उनके साथ दफनाया जाता है। अमुक मात्रा में घोड़े, हाथी, दास-दासियाँ दफना दिये जाते हैं और यह माना जाता है कि वे उन्हें परभव में आगे मिल जाएँगे। आपके घर में भी कोई बच्चा मर गया तो आप भी दूसरे दिन दूध का प्याला लेकर जाते हैं। जिन्दों को दूध मिले, न भी मिले पर मरने के बाद दूध का प्याला रखने की रूढ़ि है।

कुरीतियों के कारण भी हिंसाएँ हो रही हैं। धन के लिए क्या-क्या नहीं होता है? बचपन में आँखें निकालकर बेची जा रही हैं, बच्चों के अंग-प्रत्यंग बेचे जाते हैं, बच्चों से भीख मँगवाई जा रही है। आज पैसों की प्राप्ति के लिए कैसे-कैसे तरीके अपनाये जा रहे हैं? आप जानते हैं।

मैंने सुना है कि आन्ध्रप्रदेश में एक कत्लखाना जैन बन्धु के द्वारा खोला जा रहा है। खुद के पास लाखों की सम्पदा है पर धन की लालसा के लिए कत्लखाना खुलवाने की बात पर विचार आता है कि ऐसा धन इकट्ठा करके कहाँ ले जायेगा? एक तरफ ऐसे भी लोग हैं जो एक-एक जानवर को छुड़वाते हैं, दूसरी तरफ ऐसे भी मिल सकते हैं जो कत्लखाना खुलवाने में भागीदार बनते हैं। आप एक वर्ष में जितने जानवर बचायेंगे, कत्लखाने में एक दिन में उससे कई गुणा प्राण रहित हो जायेंगे। आपको अहिंसा का स्वरूप समझना है तो आप इन सब बातों पर गंभीरता से चिंतन करें।

आज हिंसा के कैसे-कैसे रूप हैं ? साधारण तौर पर ध्यान में ही नहीं आते। मैंन कहीं पढ़ा है कि ब्रिटेन में चिकित्सा संबंधी खोज करने के लिए पचास लाख पशुओं को काटा जाता है। किसी जानवर को काटने पर कैसी वेदना होती है इसको समझने के लिए आप अपने पर से विचार करें। आप अपनी अँगुली पर वार करके देखें। आप अपनी अँगुली को काट नहीं सकते पर कभी तवे पर रोटी डालते समय अँगुली तवे को छू जाय तो भी वेदना होती है, इसका आपको अनुभव होगा। आपको शायद अनुभव हो या न भी हो पर बहिनों को अनुभव है कि अनजाने में तवे से अँगुली छू जाने पर पीड़ा होती है। जब मात्र छू जाने पर वेदना हो सकती है तो काटने पर कितनी वेदना होती होगी ?

आज कुत्तों पर प्रयोग होते हैं, बिल्लियों पर प्रयोग होते हैं। खरगोशों के कान में तेजाब डाला जाता है, जिससे कान फूलता है, खरगोश भागता है, खरगोश के कान से निकले खून की नेलपॉलिश बनती है। ऐसी हिंसाकारी वस्तुओं के प्रयोग में आपको कितना संकोच है ? जरा अपने से पूछें।

आज किसे कहें, कौन सुने ? आपमें से कइयों को हमारे पास आने की फुर्सत नहीं और कुछ लोग संतों के पास आकर सुन भी लें तो सोचते हैं हमें क्या ? किसी के बच्चा न हो तो वह कहाँ-कहाँ नहीं जाता ? डॉक्टर के पास जायेगा, भैरू-भवानी की मनौती करेगा और कई तो नासमझ महाराज तक के पास यह कहने उपस्थित हो जायेंगे कि बाबजी ! बच्चा नहीं हुआ। बच्चा नहीं होने पर तो स्थान-स्थान पर जायेंगे, मनौतियाँ मनायेंगे और बच्चा हो जाय तो उसे 10 मिनट संस्कार देने की, दया के स्वरूप को समझाने की, किसी को दुःख नहीं देने की बात कहने की फुर्सत नहीं। कई ऐसे भी हैं जो ताश-चौपड़ में टाइम गवाँ देंगे, इधर-उधर की बातों में समय बर्बाद कर देंगे लेकिन अपने बच्चों को जिन्हें संस्कार की जरूरत है, उन्हें संभालने की आप

में से अधिकांश को फुर्सत नहीं। जरूरत है बच्चों में संस्कार देने की। आपने संस्कार नहीं दिये तो हिंसा का यह रूप बंद नहीं होगा। मैं कह रहा था कि फैशन के कारण हिंसा बढ़ रही है, मनोरंजन के कारण हिंसा बढ़ रही है वैसे ही राजनैतिक कारणों से भी हिंसा बढ़ रही है।

राजनीति में हिंसा की बात कहूँ, एक-एक दिन में लाखों मौत के घाट उतार दिये गये। आज निर्दोष लोगों को सताया जा रहा है? किस प्रकार यातनाएँ दी जा रही हैं? कहें तो दिल काँप उठे आपका। धर्म का मूल दया है। कबीरदास ने कहा-

भावे जाओ द्वारका, भावे जाओ गया।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, सबमें मोटी दया।।

चाहे द्वारिका जाओ, चाहे मथुरा, पुष्कर जाओ या गिरनार, मन में दया नहीं तो सब तीर्थों में जाकर भी दु:ख से बचोगे नहीं।

कहते हैं, पढ़ लिख गया, डिग्री प्राप्त कर ली, पी-एच.डी. कर ली, करोड़ों पद कंठस्थ कर लिये, बोलने का कहें तो घण्टों तक बोल सकता है, किन्तु तेरे मन में दया नहीं तो कुछ भी नहीं। बिना कारण दूसरों को दु:ख नहीं देना चाहिये, यह नहीं सीखा तो कुछ भी नहीं सीखा।

आपने अहिंसा परमोधर्म को जान लिया, जीवन में करुणा और दया का आचरण आ गया तो मानिये स्वर्ग के दरवाजे खुलते देर नहीं लगेगी। जिसके मन में दया है, वह झूठ बोलते डरेगा। मन में करुणा है तो वह किसी को सतायेगा नहीं, दु:ख नहीं पहुँचायेगा। अहिंसा को जीवन में उतारने वाला क्रोध नहीं करेगा, मान-माया-लोभ उसके पास नहीं फटकेंगे, वह पापों से बचा रह सकेगा। जिसके घट में दया माता का निवास है उसके लिये बहुत कुछ कहा जा सकता है। ज्यादा कहने का अभी समय नहीं है, आप यत्किंचित्

भी दया की आराधना कर अनर्थकारी अनावश्यक हिंसा के पाप से बचने का प्रयास करेंगे तो वीतराग वाणी के श्रवण का सही लाभ प्राप्त कर सकेंगे। 'आचारांग' सूत्र में जिनेश्वर भगवंतों के वचन मिलते हैं कि यह धर्म शाश्वत है, नित्य है, ध्रुव है, अनादिकालीन है। संसार रहेगा तब तक अहिंसा धर्म रहेगा। दूसरे-दूसरे धर्मों का लोप हो जायेगा। भरत-ऐरावत की दृष्टि से पंचम काल समाप्त हो जाने के बाद एक प्रहर रहेगा, छट्ठा आरा शुरू होगा तब व्रत रूप धर्म नहीं रहेगा, न सत्य पालन की प्रतिज्ञा रहेगी न अणुव्रत का संकल्प रहेगा तथापि दया रहेगी।

संसार के जितने भी जीव हैं वे सब सुख-शांति की इच्छा रखने वाले हैं। दु:ख, वेदना, कष्ट, पीड़ा कोई नहीं चाहता। एक धर्म सबको इष्ट है, वह है अहिंसा। अहिंसा सब धर्मों का सार है। 'प्रश्नव्याकरण सूत्र' के प्रथम संवर द्वार में तीर्थङ्कर प्रभु महावीर ने अहिंसा भगवती का गुणगान करते हुए कहा है-यह अहिंसा भगवती, डरे प्राणियों को अभय देने वाली है, शरण देने वाली है। चोरी की बुरी आदत के कारण चोर पकड़ा गया, उसे महाराज ने फाँसी की सजा सुनाई। महाराज सुनवाई कर रहे थे, उस समय महाराज की चारों रानियाँ उसे देख रही थी। शरीर से सुंदर कांतिवाला युवक था। मौत का नाम सुनकर काँप उठा। उधर रक्षण की भावना से रानी को दया आ गई। रानी ने महाराज से कहा-यह डरा हुआ है, इसे एक दिन के लिए मुझे दे दिया जाय। महाराज ने एक दिन के लिए चोर को रानी के सुपुर्द कर दिया।

चोर को नहलाया गया, अच्छे वस्त्र पहनाये गये, भोग-उपभोग की सामग्री दी गई पर चोर के भीतर में मरने का भय था, उसे भोग-उपभोग की सामग्री प्राप्त होने पर कोई आनन्द नहीं। क्यों ? मौत की तलवार सिर पर जो लटकी हुई थी। एक-एक करके तीन रानियों ने एक-एक दिन चोर को खिलाया-पिलाया। चौथी रानी की बारी आई। उसने महाराज से कहा-मुझे

एक दिन नहीं, यदि आप देना ही चाहते हैं तो इस चोर को अभयदान दे दीजिये।

अभयदान श्रेष्ठ है। अभयदान दया है, अहिंसा है। नीति के वचन में कहूँ-

दया गई तो धर्म गया, धर्म गया तो कुछ रहा नहीं।
सब कुछ देकर धर्म रख लिया, तो तेरा कुछ गया नहीं।।

संसार में ऐसे लोग भी हैं जिन्होंने दया के लिए सब कुछ दिया, प्राणों तक का समर्पण कर दिया। दया समकित देने वाली है, दया स्वर्ग दिलाने वाली है। हाथी के भव में सम्यक्त्व प्राप्त करने वाले 'ज्ञाता धर्म' के अधिकारी मेघकुमार की बात आपने कई बार श्रवण की है। मैं उसे पुन: नहीं दोहराना चाहता पर आपके ध्यान में आये, इसलिये कहना चाहता हूँ कि एक जीव को बचाने वाला सम्यक्त्व प्राप्त कर रहा है। जीवन भर में उस हाथी ने कितनी हिंसाएँ की, कितने पेड़ उखाड़े, लेकिन एक जीव की दया की भावना से उसे मोक्ष मार्ग में प्रवेश करने का प्रमाण-पत्र प्राप्त हो गया। जीव दया में अपने आपकी दया भी है, दूसरे जीवों की दया भी है।

आप हिंसा कब करते हैं? आपके शरीर में मवाद हो और उसमें एक कीड़ा पड़ जाय, सहन नहीं करता। घर में मच्छर हो जाय, आप क्या करते हैं? आप जरा चिन्तन तो करें। आपने धर्म को ऐसा विपरीत कर दिया कि आज अहिंसा या दया भी हास्य का कारण बन गई है। धर्मी के विपरीत आचरण से धर्म बदनाम होता है। लिलोती के त्याग करने वाले अपनी बहू पर घासलेट डालकर तूली लगा दें तो क्या धर्म बदनाम नहीं होगा?

तीर्थङ्कर प्रभु महावीर ने धर्म का क्या यही रूप बताया है कि घरवालों को मारे जाओ और पानी छानकर पीओ? दया के स्वरूप को समझने की

जरूरत है। पहले पंचेन्द्रिय की दया करनी चाहिये या एकेन्द्रिय की ? आज आप जमींकंद छोड़ सकते हैं पर स्वधर्मी के साथ प्रेम से नहीं रह सकते तो इससे क्या धर्म की प्रभावना बढ़ती है ? एक भाई आया और उससे पूछा–क्या नियम है ? बोला–बाबजी ! मारे सगला नियम है, पास बैठा दूसरा भाई बोला–महाराज ! यह रोज सामायिक करता है, हरी नहीं खाता पर घर में भाई–भाई ऐसे लड़ते हैं कि पूछो मत। ऐसे विपरीत आचरण वाले भाई धर्म को बदनाम करते हैं।

भगवान महावीर ने कहा–दया स्वर्ग दिलाने वाली है। चण्डकौशिक जैसा साँप जिसने भगवान को नहीं छोड़ा पर जब अहिंसा की भावना बन गई तो चींटियों की दया करके आठवें स्वर्ग का अधिकारी बन गया। चण्डकौशिक में जब दया की भावना आ गई तो उसने अपने शरीर का हलन–चलन बंदकर दिया। उसने विचार किया कि मेरे हिलने पर शरीर पर रही चींटियों की घात हो सकती है।

आप सामायिक करते हैं, धर्म–ध्यान करते हैं। आपका सामायिक पौषध कब तक ? थोड़ी–सी वेदना हुई नहीं कि धर्म–ध्यान सब छूट जाता है। आप में कई तो सहज रूप से कहते भी हैं, आपद् काले मर्यादा नास्ति। आप अहिंसा धर्म के मर्म को समझें तो आपको अपने शरीर की नहीं धर्म की फिक्र होगी। शरीर आज है, कल नहीं रहेगा। इधर कष्ट आया उधर धर्म छोड़ दिया, यह रूप दया धर्म का नहीं है–

चार वेद मुख से पढ्या, समझ बिना सब झूठ।
जीव दया पाली नहीं, तो सब माथा कूट।।

दया है तो वह सम्यक्त्व के प्रकाश को निर्मल रखेगी। दया है तो आप व्रतों में आगे बढ़ेंगे। दया है तो सत्य–शील सदाचार और अन्य–अन्य धर्म होंगे। दया नहीं तो कुछ भी नहीं।

नीति कहती है–सब कुछ चला गया तो भी कुछ नहीं गया, यदि एक दया है तो सब कुछ रह गया–

न तद् दानं, न तद् ध्यानं, न तद् ज्ञानं, न तद् तपः।
न सा दीक्षा, न सा भिक्षा, दया यत्र न विद्यते।।

जहाँ दया नहीं तो दान, दान नहीं, दया नहीं तो ध्यान, ध्यान नहीं, दया नहीं तो तप, तप नहीं। आप भी कुछ देते हैं। कुत्ते को रोटी, कबूतर को दाना, गाय को घास। जैसे आप किसी को कुछ देते हैं शिकारी भी कुछ देता है। आपके देने का उद्देश्य किसी को साता पहुँचाना है। आप किसी को देकर शीशी में उतारना चाहते हैं तो आपका वह देना भी पाप है। देने को आप ग्राहक को भी कुछ देते हैं। आप ग्राहक आते ही उसे चाय, ठंडा देते हैं, क्यों? आप उसे आकर्षित और प्रभावित करना चाहते हैं जिससे वह आपका माल खरीदे। नीति कहती है–दया नहीं तो दान, दान नहीं है।

आज टी.वी. से भी ज्ञान मिलने की बात कही जाती है। कैसा ज्ञान? चोरी का ज्ञान, किसी की जेब साफ करने का ज्ञान! आज सुनते हैं मुसाफिरों को कोई दवा सुँघा दी जाती है और लूटकर माल साफ कर लिया जाता है। ट्रेनों में चाय के साथ नशीली दवा मिलाकर पिला देते हैं। बेहोश होने पर सामान लेकर चम्पत हो जाते हैं, इस तरह का ज्ञान, ज्ञान नहीं है।

बगुला क्या करता है? एक टाँग पर खड़ा रहता है लेकिन दया नहीं इसलिये उसका ध्यान, ध्यान नहीं। वह एक टाँग पर खड़ा रहकर बाट जोहता है कि कब मछली आये और कब वह उसे पकड़े। बिल्ली भी कोने में चुपचाप बैठी रहती है। किसलिये? उसका ध्यान चूहे की ओर रहता है ताकि ज्योंही चूहा आये, उसे पकड़े।

व्याख्यान में बैठने वालों में भी कुछ भाई इस बात का ध्यान रखते हैं

कि कौन आया, कौन नहीं आया ? कई सामायिक लेकर बैठते हैं, उसमें से भी कुछ भाई महाराज को देखें, नहीं भी देखें पर नई साड़ी पहनकर कौन आई ? उसे देखेंगे।

जिसमें हितचिंतन-करुणा की भावना और दयादृष्टि नहीं तो वह ध्यान, ध्यान नहीं। खड़े-खड़े सूख जायेंगे, उल्टे लटक जायेंगे, भगवान ने ऐसे तप को बाल तप कहा है। वह अज्ञान तप है। तप का मतलब अपने आपको तपाना है, अगर तप होता तो कमठ की जिंदगी बरबाद नहीं होती। शास्त्र कह रहा है कि वह तप, तप नहीं जहाँ दया नहीं, वह व्रत, व्रत नहीं जिसमें दया नहीं, वह आचरण, आचरण नहीं जिसमें दया नहीं। दूसरों को पीड़ा पहुँचाने की भावना हो तो वह दीक्षा, दीक्षा नहीं।

धर्म के सिद्धांत का महत्त्व दया से है। सब धर्मों में दया ही श्रेष्ठ है। दया के भेद हैं-एक द्रव्य दया, एक भाव दया। उठते-बैठते खाते-पीते कभी हिंसा होने पर भी हिंसा का पाप नहीं लगता और बाहर में व्यावहारिक दया होते हुए भी मन में करुणा नहीं है तो हिंसा का पाप लगता है।

मन में करुणा और दया होनी चाहिए। जिसके मन में करुणा और दया होगी वह अनर्थ की हिंसा नहीं करेगा और उपयोग से काम करते हुए भी हिंसा में कमी करेगा। दया की भावना वाले ऐसे लोग भी हैं जो दूसरों के प्राणों को बचाने के लिए अपने प्राण अर्पण कर दें।

तीर्थङ्कर प्रभु महावीर ने आठ प्रकार के हिंसक कहे हैं-

अनुमंता, विशसिता, निहंता क्रय विक्रयी।
संस्कर्ता, चोपहर्ता च, खादकश्चेति घातकाः।।

मारने वाला हिंसक है, कहने वाला, अनुमोदन करने वाला, बनाने वाला, बेचने वाला, लाने वाला, लाकर देने वाला ये सब क्या हैं ?

आप एक सिद्धांत, एक धर्म के मूल को पकड़कर चलिये कि जीवन में अनावश्यक हिंसा नहीं हो। आप आवश्यक का सर्वथा त्याग नहीं कर सकें तो भी मर्यादित करके चलेंगे तो बहुत कुछ हिंसा के पाप से बचे रह सकेंगे। नीति कहती है–

दुःख दिया दुःख होत है, सुख दिया सुख होत।

तू रहम करेगा तो रहमान तेरे पर रहम करेगा। हर धर्म, हर पंथ, हर ग्रंथ इस विषय में एक मत वाले हैं। जीव हिंसा को कोई धर्म नहीं मानता। जहाँ कहीं भी गया वहाँ दृष्टि–भेद है। ज्योंही ज्ञान का प्रकाश हुआ नहीं कि उसकी दृष्टि बदल जाएगी।

हिंसा करना धर्म नहीं है। आप सम्पूर्ण पापों को नहीं छोड़ सकते तो मर्यादा करके कम करें। पहले पंचेन्द्रिय के साथ करुणा लाइये। पंचेन्द्रिय जीवों पर दया और करुणा के भाव होने पर अन्यान्य जीवों पर भी दया के भाव आने स्वाभाविक हैं। कीड़ियों के प्रति आपके मन में कोमलता के भाव रहें और अपने भाइयों के प्रति द्वेष और घृणा के भाव रहें तो कहना होगा कि अहिंसा धर्म को आपने अभी जाना ही नहीं। दया या अहिंसा के महत्त्व को समझने की जरूरत है। आप दया को घट में रखकर आगे बढ़ेंगे तो इस लोक परलोक में शांति–आनंद पा सकेंगे।

अजमेर
10 मार्च, 1993

5

सहनशीलता : एक श्रेष्ठ गुण

उत्तराध्ययन सूत्र में तीर्थङ्कर भगवान महावीर की आदेय-अनमोल वाणी जीवन में समभाव का संदेश प्रदान कर रही है। भगवान का समत्वभाव का संदेश सौ रोगों की एक दवा जैसा है। भगवान की वाणी पर विश्वास करें तो समभाव सौ समस्याओं का समाधान है। इसमें शक करने की जरूरत नहीं है। जिनके जीवन में सहिष्णुता, समता, समभाव आ गया वे प्रतिकूलताओं में दुःखी नहीं होंगे, निन्दा-तिरस्कार किए जाने पर क्रोधित नहीं होंगे।

सहना सबसे बढ़ा गुण है। आचार्य भगवन्त पूज्य गुरूदेव श्री हस्तीमल जी महाराज की भाषा में कहूँ-'ज्ञान बाद में है, श्रद्धा बाद में है, जीवन में जितने भी व्रत-नियम-प्रत्याख्यान हैं वे सब बाद में हैं, पहले सहनशीलता है।' व्यवहार राशि वाला निगोद का जीव अगर किसी स्थिति में ऊपर आता है तो मात्र एक गुण है 'सहनशीलता'। निगोद के जीव को ज्ञान नहीं है। शास्त्र स्पष्ट उद्घोष करता है-ज्ञानावरणीय की तीस कोटा-कोटि, मोहनीय की सत्तर कोटाकोटि के उत्कृष्ट बंध वाला जीव सम्यक्त्व के नजदीक आता है तो उसका कारण है-सहनशीलता। सहन करना बहुत बड़ा गुण है। आप ज्ञानपूर्वक

और मन से सहन करो तो अनन्त-अनन्त कर्मों की निर्जरा हो सकती है। अज्ञानपूर्वक सहोगे तो भी फायदा ही है। सहनशीलता में नुकसान का कहीं कोई काम नहीं है।

जीवन में अनुकूलता-प्रतिकूलता आती रहती है। हर क्षण-हर पल यह संभव है। ज्ञानी हो या अज्ञानी, धनी हो या निर्धन अनुकूलता-प्रतिकूलता सबके सामने आती है। संयोग रहित त्यागियों के सामने भी अनुकूलता-प्रतिकूलता आती है तो संयोग युक्त गृहस्थियों के भी आती है। संसार का यह मार्ग कीचड़ वाला है। वर्षा के मौसम में आप एक-एक पैर संभल-संभल कर रखते हैं। जहाँ कीचड़ नजर आता है, उस स्थान से बचकर चलते हैं। आध्यात्मिक मार्ग में भी पग-पग पर देखकर चलने की जरूरत है। यह मार्ग विकट है। एक तरफ पर्वत है तो दूसरी ओर खाई। अगर सुख में झूम गये और दुःख में गमगीन होकर इधर से उधर पैर रख दिया तो हड्डियों तक का पता नहीं चलेगा। एक-एक शब्द सोच-समझ कर बोलना है। एक-एक क्षण सहनशीलता से बिताना है।

जिसने सहना सीख लिया, उसने सब-कुछ सीख लिया और जो एक बात सहन नहीं कर पाता, उसे दूसरों की कई बातें सुननी पड़ती हैं। आप में से अधिकांशतः अक्षरज्ञान से परिचित हैं। अ, आ, इ, ई से लेकर पूरी वर्णमाला आती है, एक, दो, तीन, चार से लेकर गिनती आती है, हिसाब मुँह पर कर जाते हैं। धार्मिक क्षेत्र में भी कई हैं जिन्हे सामायिक, प्रतिक्रमण बोल-थोकड़े याद हैं। एक ऐसा भी है जिसके लिए काला अक्षर भैंस बराबर। पढ़ना और बात है,सहन करना अलग बात है।

आपको बहुत कुछ आता है। शरीर सजाना आता है, घर संवारना आता है, दुकान जमाना आता है। घर पर कोई मेहमान आ गया तो कैसे जिमाना? पाट, थाल-कटोरी सब लगाना आता है। सब्जी कैसी चाहिये

उसमें क्या डालना, क्या नहीं डालना आता है, मिठाई कैसे बनती है, यह भी ध्यान है। बातचीत कैसे करना उसमें बहुत-से सिद्धहस्त हैं। बहुत कुछ आता है, पर यदि सहन करना नहीं आया तो सब बेकार है। इस शिक्षा की बात उत्तराध्ययन सूत्र के परीषह अध्ययन में कही जा रही है।

शिष्य ने गुरु से पूछा-हम क्या सहन करें। गुरू ने कहा-प्रभु महावीर कह रहे हैं कि सब कुछ सहन करो। फिर प्रश्न-कब तक ? उत्तर में कहा गया जब तक मन के विकार और कषायवृत्ति का शमन न हो जाय तब तक सहन करो। तीर्थङ्कर भगवन्तों ने विधि रखी है, वह है-

पुट्ठो य दंसमसएहिं, समरे व महामुणी।
नागो संगामसीसे वा, सूरो अभिहणे परं।।

-उत्तरा.सूत्र, अ.2, गा.10

आचार्य भगवन्त के शब्दों में कहूँ-

दंशमशक से छूने पर, समरस हो मुनि दुःख सहन करे।
संग्रामशीर्ष पर शूर नाग, ज्यों शत्रु सैन्य पर विजय करे।।

कल उष्ण परीषह पर कुछ चिन्तन किया गया। ताप सहन करना चाहिये, जितना तपोगे, उतना निखरोगे। तपना बड़ा गुण है। मिट्टी का घड़ा भी अगर आग में नहीं तपेगा तो पानी डालने लायक नहीं बनेगा। बड़े फलों की बात जाने दीजिये, कैरी आम तभी बनेगी जबकि वह सूर्य के ताप को और गर्मी के झोकों को सहन करेगी। दूध की मिठाई खोवा-रबड़ी तपकर बनती है। मूल्यवान बनना है तो तपना पड़ेगा, सहन करना पड़ेगा। आप जितनी-जितनी सहनशीलता बढ़ायेंगे उतनी-उतनी मात्रा में मीठे बनते चले जायेंगे। सहन करेंगे तो कर्म खपायेंगे। सहन करेंगे तो योग्यता बढ़ेगी, पात्रता आयेगी।

सहन कैसे करना ? कहा जा रहा है-'दंसमसएहिं' यानी डांस-मच्छर के द्वारा वेदना पाने पर 'समरे व महामुणी' अर्थात् महामुनि समभाव में रहे।

संग्राम में जैसे हाथी तीरों से और भालों से मुकाबला करता है, अनेकानेक घाव सहन करता है वैसे ही महामुनि डांस-मच्छर द्वारा वेदना पाने पर भी समभाव रखता है। युद्ध के घाव शूरवीर सहर्ष सहन करता है, ऐसे ही वचनों की मार भी समभाव से सहन करनी चाहिये। युद्ध में बम गिरते हैं, शस्त्रों-अस्त्रों की बौछारें होती हैं, लेकिन मोर्चे पर बढ़ा सैनिक मरने तक की परवाह नहीं करता। वह तो आगे बढ़ने में तत्पर रहता है। जैसे सैनिक आगे बढ़ता है ठीक वैसे ही साधक प्रतिकूल परिस्थिति में, संकट में, बाधा-पीड़ा में समत्वभाव से लक्ष्य की ओर निरन्तर गति करे।

बढ़ते कई हैं। कई मुकाबला करते हुए बढ़ते हैं। सामने वाला एक कठोर वचन कहता है तो उसे पाँच सुनाते हैं। सामने वाले को ईंट का जवाब पत्थर से देने की ताकत रखने वाले भी हैं। पर, यह बढ़ना, बढ़ना नहीं है। यह तो वैर-विरोध को बढ़ाना है। वैर-विरोध से अपनी शांति समाप्त होती है, वहीं दूसरों की शांति भी खत्म होती है। कहने-सुनने में दोनों का हित नहीं है। अनुभवियों ने तो कहा है-

आवत गाली एक है, पलटत गाली अनेक।
जो गाली पलटे नहीं, रहे एक की एक।।

कुछ लोगों की आदत होती है वे एक के चार जवाब देते हैं। जब तक जवाब देते रहेंगे तब तक भेद की दीवार टूटेगी नहीं। संग्राम में शूरवीर सहन करते आगे बढ़ता है, इसी तरह हमें कड़वी बातें सहन करते हुए आगे बढ़ने का प्रयास करते रहना चाहिये। हाँ, यह याद रखने की बात है, जो बढ़ता है, उसकी टाँग खिंचाई करने वाले भी होते हैं। आप चाहे घर में काम कीजिये, परिवार और समाज में काम कीजिये, राजनीति और धर्म में काम कीजिये, काम करते हुए आगे बढ़ने वालों की टाँगे खींचने वाले भी कम नहीं है। जो काम करेगा उसकी टाँग खिंचाई होगी। आप सहनशील बनकर चल

रहे हैं तो गाड़ी पार लग जायेगी। अगर सहनशीलता समाप्त हो गई तो मारवाड़ी कहावत 'सहजे चूड़ो फूटियो, हल्का हो गया हाथ' कहकर काम करने वाला किनारा करते देर नहीं करेगा। कभी चौबेजी छब्बेजी बनने खड़े हों तो दुब्बेजी बनकर रह जाते हैं। सहनशीलता समाप्त होने पर झूठे आरोप लगेंगे और कभी-कभी कलंक और लांछन भी लग सकता है। काम करने वाला काम करते-करते लड़खड़ा जाता है।

समाज में ईमानदारी से काम करने वालों पर आरोप लगाने वाले आरोप लगा ही देते हैं। अमुक ने पैसा खाया। ऐसा आरोप कोई भी लगा सकता है। काम करने वाला समाज का काम करता है, अपने समय का भोग देता है और वक्त जरूरत पड़ने पर स्वयं के पैसे लगाता है, फिर भी कहने वाले कहते हैं कि अमुक पैसे खा गया, अमुक ने काम पर ध्यान नहीं दिया, इसलिए काम बिगड़ गया। काम करने वालों को उपालम्भ देने वाले कई मिलते हैं।

सौ रोगों की एक दवा है-सहनशीलता। आप अगर सहनशील हैं तो गन्तव्य की ओर बढ़ सकते हैं अन्यथा ऊँची-नीची बातें सुन-सुनकर व्याकुल हो जायेंगे। शास्त्र कह रहा है-मानव! अगर कोई सच्ची बात कह रहा है और आपको कहीं अपनी भूल नजर आती है, उस स्थिति में यदि सहनशीलता है तो वह भूल भी निकल जायेगी। सेवा करते हुए या साधना करते हुए कोई आलोचना करता है तो आलोचना को इस कान सुनो, उस कान निकाल दो और काम करते रहो। यही आगे बढ़ने का तरीका है।

साधक के जीवन में परीषह आते रहते हैं। प्रतिकूल परीषह आसानी से जय होते हैं, किन्तु अनुकूल परीषह जय करना कठिन होता है। राग का थोड़ा सा अंश साधक को डिगा सकता है। भगवान महावीर को साधना से चलायमान करने के लिए सामान्य मनुष्य ही क्या, देवाधिदेव उपस्थित हुआ।

मेरू को डिगाने जैसे झंझावात चले, फिर भी भगवान अडोल-अकम्प रहे। भगवान परीषहों से डिगे नहीं। हम साधक भी परीषह आने पर डिगे नहीं।

श्रमण भगवान महावीर की परम्परा में आर्यवज्र के समय का प्रसंग है। पूर्व की पुण्यशालीनता के कारण आर्यवज्र जन्म से वैरागी थे। उनके पिता ने अपनी गर्भवती पत्नी को छोड़कर दीक्षा अंगीकार कर ली थी। वे बिना विवाह किए दीक्षा लेना चाहते थे, किन्तु पारिवारिक अवरोध कुछ ऐसा हो गया जिसके कारण वैवाहिक संबंध करना पड़ा। शादी कर लेने पर पत्नी को समझा कर दीक्षा की बात सोची, लेकिन यह बात पत्नी ने स्वीकार नहीं की। पति-पत्नी में तय होता है कि पत्नी का कोई सहारा हो जाय तब दीक्षा ग्रहण की जा सकती है। पत्नी गर्भवती हुई तो उसे कहा गया कि अब तुम्हें सहारा प्राप्त हो रहा है, इसलिए रोकने का कोई कारण नहीं है।

घर में न धन की कमी है, न प्रतिष्ठा की। विपुल भोगोपभोग की सामग्री भी उपलब्ध है। व्यक्ति-व्यक्ति की रूचि भिन्न-भिन्न होती है। खाने की रूचि वालों को तप में आनन्द नहीं आता। किसी की पहनने की रूचि है तो किसी की खाने की। कोई भोग में रूचि रखता हे तो कोई त्याग में।

समय के साथ बच्चे का जन्म हुआ। बच्चे के जन्मोत्सव पर पारिवारिक परिजन, इष्ट-मित्र उपस्थित हुए। बच्चे को देखते तो सहसा उनके मुँह से निकलता कि आज अगर इसके पिता होते तो जन्मोत्सव का आनन्द कुछ और ही होता, पर क्या करें इस बालक के पिता तो साधु बन गये। जो आता उसके मुँह से दीक्षा या साधु शब्द निकलता। पुनः पुनः दीक्षा व साधु शब्द सुनते-सुनते नवजात शिशु को जातिस्मरण ज्ञान हो गया। अरे! मैं भी पहले साधु था। यह है जन्मते वैरागी का नमूना। नवजात शिशु विचार करता है कि मैं शेरनी की दाढ़ में फँस तो गया, लेकिन मुझे निकलना है। मेरी माता ने मेरे पिता को सहज दीक्षा नहीं लेने दी। दीक्षा की आज्ञा दी तो अपने

सहारे की शर्त पर, इसलिए माता मुझे किसी हालत में छोड़ना नहीं चाहेगी। आज्ञा नहीं देगी तो मैं साधु कैसे बनूँगा ?

नवजात शिशु के समक्ष समस्या थी। समस्या का समाधान क्या ? वह तो शिशु था मैं अगर आपसे पूछूँ तो आपका क्या जवाब होगा ? आप शायद कह देंगे–यह तकदीर की बात है। किन्तु आर्यवज्र भाग्य के भरोसे नहीं रहा। उस नवजात शिशु ने रोना प्रारम्भ किया तो बन्द नहीं हुआ। माँ बच्चे को गोद में लेती खिलाती तब तक तो ठीक, पर ज्यों ही माँ काम में लगती बच्चे का रूदन प्रारम्भ हो जाता। माँ ज्यों ही रसोईघर में गई, बच्चा चीखता–चिल्लाता। स्नानघर में जाती या और कोई काम करती तो बच्चे के रूदन से माँ हैरान–परेशान हो गई।

आपके समक्ष ऐसी समस्या हो तो क्या समाधान ? आप में से कई कह देंगे जिसकी तकदीर में ऐसा लिखा है उसे दुःख उठाने होते हैं। बच्चे के रोने से माँ परेशान हो गई। बच्चे को जातिस्मरण ज्ञान था, अतः ममता कम करने का यही तरीका उचित समझा। मोह का बंधन भी निराला है। वह कभी प्रसन्न करके, कभी इच्छाओं की पूर्ति करके पूरा किया जाता है तो कभी हैरान–परेशान करके भी पूरा किया जाता है। दो साल से माँ परेशान हो रही थी।

बच्चे का तीसरा वर्ष आया। बच्चे के सांसारिक पिता पात्र हाथ में ले भिक्षाचरी को आए। मुनि ने भिक्षा के लिए प्रस्थान के पूर्व गुरूचरण में 'मत्थएण वंदामि' वन्दना–नमस्कार कर आज्ञा चाही कि मैं आपकी आज्ञा हो तो भिक्षा के लिए जाऊँ। गुरू ने कहा–जाओ, साथ ही गुरू ने यह भी कह दिया कि आज सचित्त–अचित्त जो भी मिले ले आना।

शिष्य भिक्षाचारी के लिए रवाना हुआ। चलते–चलते विचार आया कि गुरूदेव ने आज सचित्त–अचित्त जो भी मिले ले आना कैसे फरमाया। शिष्य के मन में कोई हलचल नहीं, आज्ञा–आराधन का भाव मन में संजोये

घूम रहा था। घूमते-घूमते मुनि अपने सांसारिक घर पहुँच गया। माँ बच्चे से परेशान थी। परेशान भी इतनी कि वह गले तक आ गई। मुनि को देखकर माता को प्रसन्नता हुई और बोली-महाराज! यह संभालो।

मुनिराज ने कहा-बाई! एक बार फिर सोच ले। आज परेशान होकर कह रही है कल तू इसे वापिस लेना चाहेगी तो नहीं मिलेगा। हम संत पात्र में लेने के बाद लौटाते नहीं।

जगत् में कई तरह के भक्त होते हैं। कई हैं जो अपने बच्चों को हमारे यहाँ लेकर आते हैं और कहते हैं-महाराज! ओ थाँणो, थें संभालो। कई कहते हैं-महाराज! मैं तो इण छोरा सुं परेशान हो गई, आप इणने समझावो। ऐसा कहने वाले कई हैं, पर महाराज को देने वाले कितने हैं? कहने वाले कई मिलते हैं, देने वाले विरले होते हैं।

आर्यवज्र की माता ने बच्चे को मुनिराज के हवाले कर दिया। मुनि ने भिक्षा में जो आया, स्वीकार किया और गुरु के चरणों में पहुँचे। गुरु ने कहा-शास्त्र के नियमानुसार आठ वर्ष की उम्र होने तक बच्चे को किसी गृहस्थ या शय्यातर के पास रखा जा सकता है। आर्यवज्र शय्यातर के साथ मुनियों के दर्शन-वन्दन के लिए नित्यप्रति आता रहा। बच्चे ने आठ वर्ष की उम्र तक ग्यारह अंगों का ज्ञान कर लिया। आप ताज्जुब करेंगे जो बच्चा माँ के पास रात-दिन रोता था, वह महाराज के यहाँ आने के बाद नहीं रोया।

बच्चे की याद माँ को सताने लगी। वह बच्चे को महाराज के यहाँ हँसता मुस्कुराता देखती, तो मन ही मन विचार करती कि मेरा लाल मेरे पास आ जाय तो ठीक है। एक दिन माता ने भावना रखी कि आप मुझे मेरा बच्चा वापस दे दें। आज जिनके बच्चे कहने में नहीं, वे कभी ज्ञान-ध्यान सीखने के लिए संतों के पास छोड़ देते हैं। संत सन्निधि में बच्चा रहता है तो कुछ न कुछ सीखता ही है। बच्चे के व्यवहार में परिवर्तन देखकर वे प्रसन्न होते हैं, किन्तु

बच्चे को पुनः घर पर ले जाने की सोचते हैं। घर पर रहता था तब तक वह नास्तिक था, अब सुधर गया। सुधर गया तो छोरो म्हारो।

स्वार्थ का संसार है। पहले बच्चा संत-चरण सेवा में नहीं आता था तो माँ-बाप प्रेरणा करके लाते थे, अब बच्चा स्वतः आता है तो कई माँ-बाप ऐसा कहने में संकोच नहीं करते कि सब दिन महाराज के यहाँ क्या काम? क्या तुझे महाराज बनना है? बच्चा आए तो क्यों आता है? नहीं आता तो कहते है आता नहीं। बच्चे के आने या न आने से जितना मतलब नहीं, उससे कहीं ज्यादा मतलब है स्वार्थ की पूर्ति का।

आर्यवज्र की माँ को बच्चे पर स्नेह था। याद आई और महाराज से बच्चे को वापस देने की माँग की। महाराज ने कहा-अभी बच्चा हमारे पास नहीं है, वह शय्यातर के पास है। माँ शय्यातर के पास पहुँची और बच्चे की माँग की। शय्यातर ने भी मना कर दिया। बच्चा नहीं मिलने से माँ ने राज-दरबार के यहाँ पहुँचकर अपनी माँग रखी। राजा ने कहा-ठीक है, बच्चा क्या चाहता है देखकर निर्णय करेंगे।

माँ भी राजदरबार पहुँची। शय्यातर भी वहाँ आ गई। माँ ने खाने-पीने की, खेलने की और बच्चे के मन के अनुकूल चीजों का लालच दिया, लेकिन बच्चा माँ की तरफ नहीं बढ़ा। शय्यातर के पास मुँहपत्ती थी, पूँजणी थी। बच्चे ने पूँजणी-मुँहपत्ती देखी तो उधर मुड़ गया।

फैसला हो गया। बच्चा तो पहले से यही चाहता था। उसे सन्त भगवन्तों के दर्शन-वन्दन ही तो चाहिये थे। आर्यवज्र ने समय आने पर दीक्षा अंगीकार की और चौदह पूर्व का ज्ञान प्राप्त किया।

आर्यवज्र पाटलिपुत्र पधारे। वहाँ के एक धनाढ्य सेठ की पुत्री रूक्मिणी अपनी सहेलियों के साथ बगीचे में आँख-मिचोली का खेल खेल रही थी। खेल-खेल में सहेलियों में से कुछ ने प्रतिज्ञा कर ली कि जिसके जो हाथ लगे

वह उसका स्वामी। हाथ चाहे वृक्ष लगे, खंभा लगे, आदमी लगे या और कुछ। वहीं आर्यवज्र ध्यानस्थ खड़े थे। सहेलियाँ आँखों पर पट्टी बाँधे खेल रही थी। रूक्मिणी ने भी प्रतिज्ञा कर ली-जो हाथ लगे वह स्वामी। खेल-खेल में उसके हाथ ध्यानस्थ संत लग गये। संत को पकड़ बैठी तो बोली ये मेरे स्वामी हैं, शादी करूँगी तो बस इन्हीं से।

बात सेठ तक पहुँची। सेठ के पास सम्पत्ति की कमी नहीं थी वह अपार सम्पत्ति लेकर महाराज के चरणों में उपस्थित हुआ और बोला-महाराज! आप मेरा दुःख मिटायें। मेरी लड़की की प्रतिज्ञा है वह आपके साथ विवाह करना चाहती है। आप मेरी पुत्री को स्वीकारें। आपको जिन्दगी भर कमाई करने की जरूरत नहीं। आप तो मेरे घर जँवाई बन कर रहें, आनन्द करें।

संत ने जवाब में कहा-सेठ! विवाह करना तो दूर की बात है, हम तो विवाह का नाम भी सुनना नहीं चाहते। अगर तुम्हारी लड़की को मुझ पर इतना स्नेह है तो जिस रास्ते पर मैं चल रहा हूँ उस रास्ते पर वह भी चले। आर्यवज्र के उपदेश से रूक्मिणी ने संयम पथ पर बढ़ना स्वीकार कर लिया। सेठ के रोकने पर भी वह नहीं रूकी।

यह है-परीषहजय। सामने वाला निमन्त्रित कर रहा है, लेकिन आर्यवज्र नियम के परिपालन में अडिग है। हम-आप भी जिस प्रतिज्ञा को लेकर चल रहे हैं उसका समभावपूर्वक निर्वहन करें। परीषह हम संतो के सामने आते हैं, आपके सामने भी आ सकते हैं। हमें भी और आपको भी समभाव से सहन करने की कला सीखनी चाहिये। जो भी सहनशील बनेगा वह सुख शांति और आनन्द प्राप्त कर सकेगा।

जोधपुर
10 अगस्त, 1994

6

पाप का परित्याग क्रम से करें

तीर्थङ्कर भगवान महावीर की आदेय-अनमोल वाणी उत्तराध्ययन सूत्र के माध्यम से आपके समक्ष रखी जा रही है। परीषह के संदर्भ को लेकर कुछ दिनों से चिन्तन किया जा रहा है। परीषह विजेता बनने वाले समभाव का आधार लेकर चलते हैं। जैसे वृक्ष का आधार उसकी जड़ें हैं, महल का आधार उसकी नींव है इसी तरह परीषह को जीतने का आधार समभाव है।

साधक का लक्ष्य पाप का निकन्दन करना है। समता की साधना से यह सम्भव है। एक ही बात के दो पहलू होते हैं। धर्म का आचरण करना है तो पाप का निकन्दन करना है। पापों को छोड़ना है तो धर्म को स्वीकार करके चलना है। अंधकार हटाना है तो प्रकाश करना है। कहने के दो तरीके हैं। एक है विधिरूप, दूसरा है निषेध रूप।

सबसे पहले हमें समझना है कि पाप कौन छोड़ सकता है? जो व्यक्ति श्रावक या साधुव्रत ग्रहण कर सकता है वह पाप छोड़ने की ओर गति करता है। श्रावक साधु बनने के पहले अपने-आपको, व्रत नियमों को और परमात्म स्वरूप को जानने का प्रयास करता है। ऐसा करना उसके लिए आवश्यक होता है।

सामायिक की बात कहूँ–सामायिक के पाठ में विधि और निषेध दोनों रूप मिलते हैं। आप बोलते हैं– 'करेमि भंते सामाइयं' यानी भगवन् मैं सामायिक करता हूँ। 'सावज्जं जोगं पच्चक्खामि' अर्थात् मैं सावद्य–योग पाप–क्रिया को छोड़ता हूँ और समत्व रूप सामायिक स्वीकार करता हूँ।

सामायिक क्या ? समस्यायःसामायिकम्। सामायिक समभाव की आय है। समभाव क्या ? सम अर्थात् समान। अपने समान दूसरों को समझना। अपने दुःख की तरह दूसरों का दुःख मानना। अपनी वेदना की तरह दूसरों की वेदना की अनुभूति करना। अपनी चाहना की तरह दूसरों की चाहना समझना। पंडित की परिभाषा भी यही है–

मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः।।

विद्वान् कौन ? पंडित कौन ? जो पराई स्त्री को माता की तरह मानकर चल रहा है, पराये धन को धूल की तरह समझता है और संसार में जितने भी चेतनाशील प्राणी हैं उन सब प्राणियों को अपने समान समझकर चलता है उसे समकित सामायिक के नाम से कहा जा सकता है। इसमें किसी पाप का प्रत्याख्यान नहीं करते हुए भी सारे पाप हेय समझ लिए जाने के कारण एक तरह से छूट जाते हैं। त्याग की दृष्टि से शायद आप और हम यह कह दें कि सम्यक्त्व वालों के किसी प्रकार के प्रत्याख्यान नहीं हैं, चौथा गुणस्थान समकित का है। वहाँ किसी पाप का त्याग नहीं है तो क्या इस गुणस्थान वाले अव्रती रहना चाहते हैं ? नहीं, वे अव्रती होते हुए भी जानने के साथ सारे पाप छोड़ने के प्रयास में रहते हैं।

संसार में डुबाने वाला पाप है। अगर पाप की प्रमुखता को लेकर कथन करें तो मिथ्यात्व इसकी जड़ है। बीज हैं–राग और द्वेष। राग और द्वेष से अलग होने वाले व्यक्ति हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन एवं परिग्रह को छोड़कर चलते हैं। आप मूल को पकड़ें और व्यवहार को लेकर चले।

मूल की बात कई प्राणियों की समझ के बाहर होती है। कई क्या, अनन्त-अनन्त प्राणियों की समझ के बाहर है। अनन्त काल बीत गया, पर मिथ्यात्व क्या, सम्यक्त्व क्या, आत्मा क्या, जड़ क्या, इसका उन्हें ज्ञान ही नहीं। इससे आगे बढ़ूँ-एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय में आने के लिए अनन्त पुण्यशालिता की अपेक्षा रहती है। पुण्यशालिता बढ़ती है तो एकेन्द्रिय से द्वीन्द्रिय में आना हो पाता है, फिर भी मिथ्यात्व क्या होता है, यह वे जीव नहीं जान पाते।

पहला पाप है मिथ्यात्व। मिथ्यात्व के पाँच भेद हैं। अनन्तानन्त प्राणी हैं जो अनाभोग मिथ्यात्व वाले हैं। धर्म, सम्यक्त्व, व्रत, आत्मा, परमात्मा इन सबको जानने की योग्यता उनमें नहीं है। जानने का साधन तक उन जीवों को प्राप्त नहीं है। वे दया के पात्र हैं। जितने भी अनाभोग मिथ्यात्व वाले हैं उनके पास न साधन हैं, न सामग्री, इसलिये वे दया के पात्र कहे जा सकते हैं। संख्यात-असंख्यात प्राणी ऐसे भी हैं जिनके मन है फिर भी वे इन तत्त्वों को जानने का प्रयास नहीं करते। उनका इस ओर चिन्तन चलता ही नहीं। वे नहीं सोचते कि हम कहाँ से आए हैं, क्यों परिभ्रमण कर रहे हैं? जानने का प्रयास नहीं चल रहा, इसीलिए तो समायिक करने की बात कही जाती है।

शास्त्रकारों ने सामायिक के चार भेद किए हैं, वे हैं-सम्यक्त्व, श्रुत, आगार औरअणगार। पहला भेद सम्यक्त्व सामायिक है। मैं पहले कह गया हूँ कि सम्यक्त्व आ जाय तो पाप छूट जाय। अगर आप अपने समान दूसरों को मानना चालू कर दें तो आपके पाप घटेंगे ही। पहला पाप है-प्राणातिपात। पाप को समझें उसके पूर्व प्राण क्या है यह समझना जरूरी है।

प्राण दस हैं। श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय, इन पाँच इन्द्रियों के पाँच बलप्राण और तीन योगों के तीन बल

प्राण-मनोबलप्राण, वचनबलप्राण और कायबलप्राण। पाँच और तीन आठ। नवम है श्वासोच्छ्वास बलप्राण और दसवाँ आयुष्य बलप्राण। पंचेन्द्रिय में दस बलप्राण कहे हैं। उन प्राणों का अतिपात करना, उनकी शक्ति नष्ट करना प्राणातिपात है। किसी का कान का पर्दा फोड़ दिया, किसी की आँख फोड़ दी, किसी की जीभ काट ली, किसी के अंग-उपांग तोड़ दिए, यह भी प्राणातिपात है। समूचे रूप से खत्म कर देना भी प्राणातिपात है। आप सामायिक लेकर चल रहे हैं तो प्राणातिपात हिंसा की विराधना से बचे रह सकेंगे।

हिंसा के दस भेद हैं। अर्थात् दस प्रकार से विराधना होती है- अभिहया, वत्तिया, लेसिया, संघाइया, संघट्टिया, परियाविया, किलामिया, उद्दविया, ठाणाओ ठाणं संकामिया और जीवियाओ ववरोविया। अपना जीव जैसा है, वैसा जीव दूसरे प्राणियों का भी है यह भावना आ गई तो कोई जीव किसी के प्राणों का अतिपात नहीं करेगा। मारेगा कौन? किसको मारेगा? जब किसी को पराया मानता है तब मारेगा। अपने समान दूसरे प्राणियों को समझ लिया तो वह मारेगा नहीं। क्षत्रिय के पास तलवार होती है, क्या वह घर वालों को मारने के लिए है? तलवार घरवालों को मारने के लिए नहीं, वह रक्षा के लिए है, दुश्मन को मारने के लिए है।

अपनों को कोई नहीं मारता। संसार के जितने भी प्राणी हैं उनको आपने अपना मान लिया तो मारने की भावना नहीं होगी। किन्तु अभी संसार के सभी प्राणियों को अपना समझा कहाँ है? कुछ प्रतिज्ञा करते हैं तो कुछ नाटक करने वाले भी हैं। एक प्रतिज्ञा होती है, एक प्रतिज्ञा करने का नाटक होता है। आप व्रत-नियम-प्रत्याख्यान करें, पर नाटक करने का स्वांग नहीं करें। जिसमें करुणा और दया की भावना है, समकितपना है, उसके हाथ से न अपनों की हिंसा होगी न परायों की। जिनके मन में दया नहीं तो कहना होगा जीव-हिंसा नहीं करने की बात मात्र नाटक है।

तीर्थङ्कर भगवान महावीर ने दया का भी एक क्रम बताया है। आपके शरीर को सजाने का क्रम है। पहले कपड़े चाहिये, फिर आभूषण। शरीर को सजाना है तो वस्त्र पहले धारण करने होंगे। वस्त्र कम हो या ज्यादा, एक धोती कुर्ता पर्याप्त हैं फिर आभूषण धारण करें तो ठीक कहा जा सकता है। यदि आदमी स्वर्ण आभूषण तो पहनें, किन्तु कपड़ों का पता नहीं तो क्या वे आभूषण शोभायमान होंगे? कपड़ों के बिना आभूषणों का शृङ्गार देखकर लोग पागल तो नहीं कहेंगे?

शरीर सजाने का क्रम है वैसे ही दया का भी क्रम है। **आपने जमीकन्द की मर्यादा कर ली, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय प्राणियों की हिंसा का त्याग कर लिया। किन्तु भाई का भाई से झगड़ा है इसका मतलब है भाई की भाई पर दया नहीं। जब भाई पर दया नहीं तो जमीकन्द के त्याग का क्या महत्त्व है? सबसे पहले अपने पर, फिर परिवार पर और उसके बाद अन्य प्राणियों पर दया है तो कहना होगा यह ठीक रूप है।** आप अपने-आप पर दया करना सीख जाओ तो अन्य प्राणियों पर दया करना भारी नहीं होगा, सब प्राणियों पर दया हो सकेगी। आपको भरोसा नहीं तो करके देख लीजिये।

आज रविवार होने से कई लोग दया करेंगे। दया करना अच्छा है। जो नहीं करने वाले हैं, वे करके देखें। जिसने खुद पर दया करली उसकी दुनियाँ पर दया हो गई ऐसा कहूँ तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है। मैं कबूतर, बकरे और गाय छुड़ाने का निषेध नहीं करता, पर जरूरत है सबसे पहले अपने-आपको छुड़ाने की।

एक है स्व-दया, दूसरी है पर-दया। पर-दया के अभ्यास के पूर्व स्व-दया का पालन होना चाहिए। अगर स्व की दया के बजाय अपनी प्रकृति और अज्ञानता से पर की दया में लगे रहे तो कभी धर्म भी बदनाम हो सकता

है। लोग कहेंगे–इसे जानवरों के प्रति दया है, अपने और अपने घरवालों के प्रति दया की भावना नहीं। रोज घर में लड़ाइयाँ होती हैं। घर में प्रेम के बजाय विद्वेष है तो दूसरे प्राणियों पर दया किस काम की ?

मैं कह गया–दया का भी क्रम है। **पहले पंचेन्द्रिय के प्रति दया और पंचेन्द्रिय में भी मनुष्य के प्रति दया। मनुष्यों में भी आपके सम्पर्क में जो आते हैं, जिनके साथ संसार–व्यवहार चलता है, पहली दया उनके साथ चाहिये।** रायचन्दजी का चिंतन था–'रायचन्द दूध पी सकता है, खून नहीं।' आप अपना चिंतन करके चलें, सोचें आपकी दया का क्रम क्या है ? समभावी दया करता है और उसकी दया का क्रम होता है। हिंसा पाप है, दया धर्म है।

श्रावक के तीन दर्जे रखे गये हैं। जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट। जघन्य के भी तीन नियम हैं। **जो जन्मजात श्रावक है, जिसने अभी सम्यक्त्व सामायिक का स्वरूप नहीं समझा है वह कम–से–कम मद्य–माँस का त्यागी तो हो। दया के क्रम में पहले परिवारजनों में असंतोष है, विद्वेष है, अनबन है तो उसे दूर करें।** इससे दया का आदर्श सामने आयेगा। अन्यथा लोग कहेंगे–जैन पानी तो छानकर पीते हैं और खून····· ?

आज छोटे–बड़े जीवों के प्रति दया और करुणा उमड़ती है तो फिर दहेज के लिए मिट्टी का तेल क्यों डाला जा रहा है ? चन्द पैसों के लिए भाई–भाई कोर्ट कचहरी क्यों चढ़ते हैं ? बाप–बेटे अलग क्यों होते हैं ? आप चिंतन करें कि दया की जरूरत पहले कहाँ है ?

अगर अपनों की दया के साथ जीवन में नैतिकता है तो आपको कहने की जरूरत नहीं, लोग आगे होकर कह देंगे कि यह जैन है, इसके मन में दया

है। यह अपना नुकसान उठाकर भी दूसरों की सहायता करने वाला है। आप जब अपने समान दूसरों की पीड़ा समझेंगे तो आपसे प्राणातिपात नहीं होगा। अपने समान दूसरों को समझने पर झूठ बोलने की मन में नहीं आयेगी।

झूठ भी अपनों के साथ नहीं, परायों के साथ बोला जाता है। चोरी और ठगाई भी दूसरों के साथ होती है, अपनों के साथ नहीं। लड़ाई किससे? नाक रखने की बात कहाँ होती है? कभी आपका पोता आपकी मूँछें खींच लेता है तो आप हैरान-परेशान नहीं होते, बात रखने की नहीं सोचते, आपको पोते पर क्रोध नहीं आता।

मैंने सुना है-चोर भी घर आकर सच-सच बताता है। फरेब करने वाला भी जिसे अपना समझता है, उससे कुछ नहीं छुपाता। आप जब दूसरों को अपने समान समझोगे तो पाप छूटते चले जायेंगे। अपना कौन? मैं नकारात्मक शब्द से कह रहा हूँ अपना कोई नहीं। स्वार्थ है तो अपना। स्वार्थ नहीं तो बाप, बाप नहीं। बेटा, बेटा नहीं। माता-पिता ने आपके लिए कितना सहन किया, कितने कष्ट झेले? आप मानते हैं तो एक-एक बात पर अलग होने की बात नहीं होती। एक अवगुण पर तलाक की नौबत देखने-सुनने को मिलती है। आप अगर एक-एक बात पर अलग होते गये, टूटते गये तो फिर आप कैसे दयालु? कैसे ज्ञानी? उसे सम्यक्त्वी कैसे कहा जाय?

मैं आपकी क्या कहूँ, जानवरों में भी राग होता है। उनकी कौनसे बच्चे सेवा करते हैं? एक चिड़िया जिस बच्चे को पाल रही है, उसका बच्चा बुढ़ापे में सेवा नहीं करता, पर उसी बच्चे को कोई उठाकर ले जाये तो वह बच्चे को अपने सामने ले जाने पर प्रतिकार करती है। गाय का बच्चा है उसके कोई हाथ लगाकर देख ले, गाय बच्चे की रक्षा के लिए शेर के सामने भिड़ने को तैयार हो जायेगी और बच्चे का रक्षण करना चाहेगी। जानवर कोई भी क्यों न हो वह अपने बच्चे की हिफाजत करता है। मेरा कहना यही है कि

जानवरों में भी राग होता है।

आप मनुष्य हैं। मनुष्य भी कैसे? सम्यक्त्वी अर्थात् पाप छोड़ने वाले। आप 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की बात कह तो जाते हैं, पर वैसा आचरण कितना है, इस पर चिन्तन करने की जरूरत है। हिंसा छोड़ने योग्य है, हिंसा छूटनी चाहिये। आप में से कई हैं जो हिंसा छोड़ने वाले हैं, पर उसमें भी क्रम चाहिये। झूठ छोड़ना चाहिये, ठगाई छोड़नी चाहिये पर छूटती कहाँ है? छोड़ने में भी क्रम चाहिये। आप मेरी बात का यह अर्थ नहीं निकालें कि मैं एकेन्द्रिय की दया का निषेध कर रहा हूँ। मैं क्रम की बात कह रहा हूँ। आपको मर्मभेदी, प्राण लेने वाले वचन छोड़ने की जरूरत है। पहले इसे छोड़िए। आप क्रम से छोड़कर चलेंगे तो अपना जीवन समाधिमय बना सकेंगे और आपका जीवन घर-परिवार के लिए ही नहीं, दूसरों के लिए भी आदर्श उपस्थित करेगा।

पाप डुबाने वाला है। पाप के कारण ही यह आत्मा आज तक परिभ्रमण कर रही है। पाप एकान्त रूप से छोड़ने योग्य है। आप क्रम से पाप छोड़ते जायेंगे तो आपका जीवन सुख-शांतिमय हो सकेगा।

जोधपुर
14 अगस्त, 1994

7

सुख–दुःख के कारण : पूर्वकृत कर्म

प्रत्येक प्राणी अशांति एवं दुःखों से बचकर शांति और सुख पाने की आकांक्षा रखता है। प्रश्न है–दुःख किसने उत्पन्न किया ? सीधी–सी भाषा में कहूँ–दुःख देने वाला कौन ? कुछ हैं जो कहते हैं–दुःख पिता ने दिया। घर में भरा–पूरा भण्डार था। धन–सम्पत्ति की कोई कमी नहीं थी, पर पिताजी ने जुआ खेलना चालू किया, सट्टेबाजी और व्यसनों में पड़कर स्वयं तो दुःखी हुए ही, हम–सबको भी वे दुःखी कर गये। ऐसे लोगों की सोच है दुःख देने वाला और कोई नहीं, पिता के कारण हम दुःखी हैं।

कोई जन्म से बीमार है। दस–बारह साल का होने पर किसी ने उससे पूछा–तू दुःखी क्यों है ? वह बोला–मेरा दुःख माँ का दिया हुआ है। माँ को खाने–पीने का ध्यान नहीं रहा, इसलिए मैं जन्म से बीमार हूँ। फिर, माँ ने मेरे लिए समुचित औषधि की व्यवस्था नहीं की, परिणाम है कि मैं बीमार का बीमार हूँ। मैं दुःखी हूँ तो माँ के कारण से। कोई भाई के कारण दुःखी है। जब तक पिताजी थे, घर में सुख–शांति थी, पर ईर्ष्यालु भाई के स्वभाव के कारण सम्पत्ति का बंटवारा हुआ और भाई ने कपट से–माया से सारा हड़प लिया। मेरे हिस्से का कुछ नहीं बचा, इसलिए मैं दुःखी हूँ।

घर की एक अनुभवी बुढ़िया ने कहा–''महाराज ! मेरे घर जब से यह कलमुँही बहू आई है, दुःखों का पार नहीं है। घर की शांति, परिवार का प्रेम और घर–परिवार का वातावरण बहू के आने के साथ दूषित हो गया है। मैं तो सच कहूँ–बहू का पगफेरा ठीक नहीं है।''

कुछ लोग आस–पास रहने वाले लोगों से दुःखी हैं। कोई व्यापार में घाटे से दुःखी हैं। कोई कहता है पड़ौसी की बुरी नज़र मेरे दुःख का कारण है। कुछ ऐसे भी हैं जो भगवान को दुःख देने वाला बताते हैं। उनका कथन है कि भगवान की मर्जी के बिना एक पत्ता भी नहीं हिलता। भगवान की कृपा नहीं है, इसलिये मैं दुःखी हूँ। उनके कथन से यह आभास मिलता है, मानो भगवान भी दो तरह की नजर रखते हैं। किसी पर प्रसन्न हैं तो किसी पर अप्रसन्न। कोई देवी के प्रकोप की बात कहता है तो कोई जड़ को दोष देता है।

पीपाड़ और भोपालगढ़ के प्राचीन उपासरों में दरवाजे छोटे होते, उनके छज्जे नीचे होते। प्रवेश करते समय एक भाई के सिर में चोट लगी। उसे गुस्सा आया और उसने छज्जा तोड़ दिया। यहाँ सोचना है, सिर किसने फोड़ा ? इस संबंध में आपकी मान्यता क्या ? अगर आपने असावधानी की, तो छज्जा तोड़ने की जरूरत क्या ? आप एक–दो बार नहीं, कई बार उस दरवाजे से भीतर आए और बाहर गए, किन्तु पहले तो कभी सिर नहीं फूटा। आज लगी तो क्यों ? सिर अपनी गलती से फूटा, किन्तु वह भाई छज्जे का दोष बताता है।

प्रश्न है दुःख देने वाला कौन ? कभी–कभी चलते–चलते ठोकर लग जाती है। ठोकर किसने लगाई ? एक–दो नहीं, पाँच–दस नहीं, अनेकानेक आदमी उस रास्ते से रोज गुजरते हैं उन्हें तो ठोकर नहीं लगी। आपको क्यों लगी ? दुःख देने वाला कौन ? भगवान महावीर की भाषा में कहूँ–

अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य।
अप्पा मित्तममित्तं च, दुप्पट्ठिय सुपट्ठिओ।।

सुख और दुःख का कर्त्ता और कोई नहीं, आपकी आत्मा स्वयं कर्त्ता है। ऊपर उठाने वाला और नीचे गिराने वाला दूसरा कोई नहीं, स्वयं का अज्ञान-अंधकार डुबाने वाला है। प्रकाशपुंज पैदा करने वाला भी दूसरा नहीं है।

भाग्य भी दुःख देने वाला नहीं है। आज बहुत से हैं जो भाग्य को रात-दिन दोष देते हैं। वास्तव में आत्मा के द्वारा कृत कर्म ही दुःख देने वाले हैं। आप और हम ही क्या, कर्मों ने तो भगवान को भी नहीं छोड़ा। पहले तीर्थङ्कर भगवान ऋषभदेव को एक वर्ष तक अन्न-जल नहीं मिला। भगवान महावीर के कानों में कीले ठोके गये, पैरों पर खीर पकाई गई और कष्टों का तो पार ही नहीं। यह कर्मों की लीला है। कर्म किसी को छोड़ते नहीं, छोड़ेंगे भी नहीं। किए कर्म भोगने पड़ेंगे, पर कर्मों को करने वाला कौन? जो दुःख महावीर को हुए वे भगवान शांतिनाथ को क्यों नहीं हुए? भगवान अजितनाथ या भगवान सुमतिनाथ को भगवान महावीर जैसी वेदनाएँ क्यों नहीं आई? दुःख का कारण दूसरा कोई नहीं, स्वयं के किए हुए कर्म हैं। भगवान महावीर ने कहा-**अप्पा मित्तममित्तं च।** इसी प्रकार गीता में श्रीकृष्ण ने कहा-**आत्मैव बन्धुः, आत्मैव रिपुरात्मनः।**

आत्मा ही मित्र है, आत्मा ही शत्रु है। इसी बात को मैं कवि की भाषा में रखूँ-

चेतन चाबी एक है, फेरन में है फेर।।

ताले को खोलना हो या बन्द करना हो तो चाबी एक ही है। आपका ताला खोलने और बन्द करने का रोज काम पड़ता है। उसी चाबी से ताला खुलता है, बन्द भी उसी से होता है। सीधी घुमाने पर ताला खुलता है, उल्टी

घुमाने पर बन्द होता है। एक चाबी ताले को खोलने का काम करती है तो वही बन्द भी करती है। चाबी की तरह हैं ये इन्द्रियाँ, मन, वाणी और काया के योग। इन्द्रियों को, मन को, वाणी को और काया के योगों को काम में लेकर सुखी भी बन सकते हैं और दुःखी भी हो सकते हैं। ज्ञानीजन कहते हैं कि **आप यदि कर्मों के आवरण हटाना चाहते हैं तो स्वार्थ घटाइये, ममत्व कम कीजिये।** मोह-माया के चक्कर में चौरासी के चक्कर काटने होते हैं। इसलिए जरूरत है इन्द्रियों को और मन-वचन-काय के योगों को समझकर उनका सही उपयोग करने की। मन से शुभ चिन्तन हो, वचन से हित-मित उच्चारण हो, काया से परोपकार हो तब तो ठीक, अन्यथा इन्द्रियों के और मन-वचन-काया के योग विपरीत दिशा में ले जाने वाले हैं।

आप जानते हैं काँच न पत्थर से काटा जा सकता है न धारधार छुरी या हथियार से। पत्थर से काँच चूर-चूर हो सकता है, फेंकने पर टूट सकता है, काँच को सीधा काटना है तो हीरकणी चाहिये। टूटा-फूटा या टेढ़ा-मेढ़ा काँच किस काम का ?

अस्त्र चाहे तलवार हो, छुरी हो या चाकू हो, काँच को सीधा नहीं तोड़ सकता। सीधा तोड़ने के लिए हीरे का उपयोग होता है।

आपको, मुझे और संसार के जीवों को दुःख देने वाला और कोई नहीं, हमारी करणी ही दुःख देने वाली है। जीव ने कर्मबंध किया तो भोगना भी उसे ही पड़ेगा। आप इन्द्रियों के सुख के लिए, मन की तृष्णा शान्त करने के लिए जिस हर्ष और उल्लास से कर्मों का बंध कर रहे हैं तो मानकर चलिये भुगतना भी उसी जीव को पड़ेगा जिसने कर्म बाँधे हैं। कर्म करते कई हर्षित होते हैं तो क्या कर्म भोगते भी वैसा ही हर्ष होता है ? लोग हँसते-हँसते कर्म बाँधते हैं तो भोगते समय रोते क्यों है ? कर्म बाँधते-हँसना और भोगते रोना दोगलापन नहीं तो क्या है ? हँसते-हँसते कर्म बाँधे हैं तो हँसते-हँसते भोगो।

आप दो रूप मत रखो। कर्म बाँधते समय तो हँसों और भोगते समय रोओ, यह उचित नहीं है। हाँ, अगर कर्म भी उदासीन भाव से बंधते हैं तो वह अलग बात है। कभी किसी से जरूरत पड़ने पर कर्ज लिया है और वापस चुकाने को नहीं है तो हाथ जोड़कर कह दीजिये कि अभी मेरी ऐसी स्थिति नहीं है कि मैं आपका कर्ज चुका सकूँ। यह मेरी लाचारी है, आप परिस्थिति के परिप्रेक्ष्य में मेरी कमजोरी समझें। मैं दूध से धोकर आपका पैसा-पैसा अदा कर दूँगा, आप मुझ पर भरोसा करके चलें।

आप लेने और देने की कला जानते हैं। संसार के व्यवहार से आप परिचित हैं, किन्तु आत्मोत्थान के मार्ग पर आपका जानना, मानना, पहचानना वैसा नहीं रहता जैसा संसार-मार्ग में होता है। आत्मोत्थान की कला सीख जायें तो फिर कर्मों को भोगते समय घबराहट नहीं होगी, हाय तौबा नहीं होगी। क्योंकि किए कर्म तो सामने आयेंगे ही, उन्हें भोगना ही पड़ेगा। कर्मों को भोगना है तो फिर रोते-रोते भोगने से क्या लाभ ? ऐसा करके क्यों नए कर्म बाँधते हैं ? शास्त्र कह रहा है-मानव ! अज्ञान रूप में तूने जो कर्मों के दलिक एकत्रित किए हैं उन्हें हँसते-हँसते भोग। यह समझकर भोग कि कर्म किसी और ने नहीं, मेरी अपनी आत्मा ने किए हैं, इसलिए मेरी अपनी आत्मा को ही भोगने पड़ेंगे। शास्त्र की भाषा में कहूँ-

से णूणं मए पुव्वं, कम्माऽण्णाणफला कडा।
जेणाहं नाभिजाणामि, पुट्ठो केणइ कण्हुइ ।।

-उत्तराध्ययन सूत्र, अ.2, गाथा 40

'से णूणं' यानी निश्चयपूर्वक कहा जा रहा है। पुव्वं अर्थात् पहले, पूर्वजन्म में अण्णाणफला अर्थात् अज्ञान के कारण अशुभ फल देने वाले कर्म किए हैं। किसी के द्वारा पूछे जाने पर भी किसके साथ किस स्थिति में कर्म बंध किया, यह मैं नहीं जानता हूँ। आचार्य भगवन्त की भाषा में कहूँ-

निश्चय ही मैंने कर्म किए हैं, ज्ञान निरोधक दुःखकारी।
पूछा जाने पर कहीं किसी से, मैं जान न पाता हितकारी।।

आप सामायिक-प्रतिक्रमण करते हैं। पाठ बोलकर सामायिक लेते हैं, पाठ बोलकर पालते हैं। आपसे यदि पूछा जाय कि जीव के कितने भेद हैं? विराधना कितनी तरह से होती है? ध्यान के आगार कितने हैं? ध्यान कैसे किया जाता है? ध्यान की विधि क्या है? आप नित्य-प्रति करते हैं फिर भी आप बता नहीं सकते। क्यों? क्या जानकारी नहीं है? जानकारी नहीं है तो फिर प्रतिदिन कैसे करते हैं? नंदीसूत्र का स्वाध्याय करने वाले कई हैं उनसे यदि पूछा जाय 363 मत कौनसे हैं तो गाड़ी अटक जायेगी। बोलने वाले रोज पुच्छिस्सुणं बोलते हैं, पर उसका हार्द क्या तो····· ? करते हुए, पढ़ते हुए, सीखते हुए पूछने पर बहुत-से जवाब देने की स्थिति में नहीं हैं।

जरूरत है समझने की, जरूरत है पूछने की और जरूरत है धारण करने की। यह प्रज्ञा परीषह है। जानते हुए भी जवाब नहीं आता, सीखे हुए होने पर भी उत्तर देते नहीं बनता। इसका मतलब है पढ़ने और सीखने के बाद भी चिन्तन नहीं चला। कई हैं जो वाचना करते हैं, परावर्तन करते हैं, अर्थ सहित भी वाचना लेते हैं, किन्तु पढ़े-सीखे की अनुप्रेक्षा और चिन्तन नहीं होता, इसलिये सार रूप ज्ञान नहीं आता। भक्तामर पढ़ते-पढ़ते नींद आ जाय जो पता नहीं चलता कि कहाँ पढ़ रहे हैं। कई तो बोलते-बोलते भूल जाते हैं, उन्हें फिर से बोलना पड़ता है। जरूरत है उपयोग पूर्वक जागरण की।

कइयों के कर्म ऐसे होते हैं कि नित्य-प्रति अभ्यास करते हुए भी कण्ठस्थ ज्ञान नहीं कर पाते। यह आश्चर्य की बात नहीं है। आपको किससे क्या लेना है, किसको क्या देना है, दुकान में कौनसी वस्तु किसी भाव से आई

है, कितना स्टॉक है, मार्केट की क्या स्थिति रहने वाली है, सब याद रहता है। पहले एक आने, दो आने, चार आने का चलन था, अब पैसों में उसका परिवर्तन हो गया, आपको हिसाब करते देर नहीं लगती। आप हजारों-लाखों का हिसाब करते हैं। याद नहीं रहता , यह बात नहीं है। आपको तोल-माप याद है, परन्तु ठाणं सपत्ताणं याद नहीं रहता। प्रतिक्रमण करने वाले कभी चौमासी प्रतिक्रमण को देवसियं तो कभी देवसियं को चौमासी या पक्खी प्रतिक्रमण बोल जाते हैं। शब्दों की ऐसी भूलें होती हैं तो कहना पड़ता है कि उनका लक्ष्य नहीं बना है। ऐसी भूलें आप श्रावकों से ही नहीं, साधुओं से भी हो जाती है।

एक आचार्य के सैंकड़ों शिष्य थे। मैं कल कह गया कि कई शिष्य ऐसे होते हैं जिनका काम है लाना, खाना और सो जाना। आज ही ऐसा है, यह बात नहीं, पहले भी ऐसे संत होते थे। यह बात किसी एक परम्परा की भी नहीं। कम ज्यादा सभी परम्पराओं में ऐसे संत मिल सकते है, जिनका काम है लाना, खाना और सो जाना। तीर्थङ्कर भगवान महावीर स्वयं विद्यमान थे, तब भी ऐसे शिष्य रहे, आज भी हैं। भगवान की सन्निधि में ऐसे आलसी शिष्य हों तो कहना होगा, 'धणी बैठां धाड़ा पड़ै'। केवलज्ञानियों की मौजूदगी में भी पतन के रास्ते जाने वाले थे, आज हों तो उसमें क्या आश्चर्य ?

आज भी गुरु रोज प्रेरणा करते हैं। सेवा और स्वाध्याय मुख्य रूप से दो काम हैं श्रमणों के। 'ज्ञान सीखो' की सीख गुरु महाराज देते रहते हैं। पर, गुरु की सीख पर ध्यान न देने वाले शिष्य इस कान सुनते हैं, उस कान बाहर निकाल देते हैं। मैं अपनी बात नहीं कह रहा। वे पूर्वधर आचार्य थे, गंभीर ज्ञानी थे, शिष्यों को ज्ञान देने में उनकी रूचि थी, लेकिन उस समय भी उदासीन रहने वाले संत उदासीन रहे। शिष्य की उदासीनता देखकर कभी-कभी गुरु

शिष्य को छोड़ देते। तू कुछ सीखता नहीं तो फिर तुझे साथ रखने से क्या लाभ?

कभी-कभी ज्ञान देने के लिए भी असहयोग करना पड़ता है। गृहस्थ जीवन में भी ऐसा होता है। कभी लड़का गाली बोलता है तो माँ कहती है कि मैं तुमसे नहीं बोलती। माँ के मन में कुछ नहीं है, फिर भी वह बच्चे के विपरीत आचरण से अलग हो जाती है।

कभी-कभी लोग हमसे कहते हैं- 'महाराज! हमको ज्ञान नहीं चढ़ता।' हाँ, किसी के अन्तराय हो सकती है, फिर भी उसे ज्ञानाभ्यास के लिए निरन्तर प्रयास करते रहना चाहिये। प्रयास से सफलता मिलती है और प्रयास ही न किया जाय तो पाँच-पाँच सौ गाथाएँ रोज याद करने की क्षमता वाला पाँच भी मुश्किल से याद कर सकेगा। इसमें कर्म का उदय या अज्ञान का निमित्त भी कारण हो सकता है, परन्तु प्रयास की कमी तो कारण है ही। कुछ ऐसे भी शिष्य होते हैं जो एक बार सुनने मात्र से कण्ठस्थ कर लेते हैं। जैसा सुना वैसा का वैसा वापस सुना देते हैं।

ज्ञान करने से आता है। अभ्यास करते-करते बारह साल में जिसे एक गाथा याद नहीं हुई, पर अभ्यास का क्रम चलता रहा तो अन्त में उसे केवलज्ञान हो गया।आपने सुना होगा-कालिदास महामूर्ख था। वह इतना मूर्ख था कि जिस डाल पर बैठा था उसे ही काट रहा था। शायद व्यवहार में ऐसा मूर्ख नहीं मिलता। परन्तु वह जग गया तो विद्वान् कवि बन गया। जरूरत है निरन्तर ज्ञान के अभ्यास की। ज्ञान नहीं करना भी दोष है और ज्ञान करके अंहकार करना भी दोष है। शास्त्र कहता है-मानव! तू प्रतिदिन ज्ञान का अभ्यास कर। संसार हो या परमार्थ, ज्ञान पहला चरण है।

प्रज्ञा परीषह हो या अज्ञान परीषह अथवा दर्शन परीषह उसे समतापूर्वक सहन करें यह संत-जीवन के लिए आवश्यक है। परीषह किसी अन्य के द्वारा उत्पन्न नहीं, वह स्वयं के किए का परिणाम है। दुःख किसी का दिया हुआ नहीं है, वह तो अपने किए कर्म का फल है। आप यह नहीं समझें कि अमुक मुझे दुःख दे रहा है। न बाप दुःख देता है, न भाई। वह तो अपना किया हुआ कर्म है जो सुख दुःख के रूप में फल देता है, अगर कर्म सही होंगे तो मानव ही नहीं, देव और देवेन्द्र की ताकत नहीं जो आपको दुःख दे सके। आप चाहे जिस स्थिति में हैं समत्वभाव के साथ ज्ञान दर्शन-चारित्र में रमण करने का प्रयास करें तो सुख, शांति और आनन्द प्राप्त कर सकेंगे।

जोधपुर
16 अगस्त, 1994

8

धनार्जन में बरतें सावधानियाँ

तीर्थङ्कर भगवान महावीर की आदेय-अनमोल वाणी उत्तराध्ययन सूत्र का चौथा अध्ययन मिथ्या मान्यताओं और रूढ़िवाद की भ्रमपूर्ण परम्पराओं को तोड़कर जीवन में ज्ञान का प्रकाश करने हेतु अनेकानेक अनमोल तथ्य प्रस्तुत कर रहा है। कल दो बातें रखी गई थीं। बुढ़ापे में धर्म करने की बात सोचने वालों को आगाह किया गया कि यह सतयुग का वह काल नहीं, चौथे आरे का समय नहीं, जिसमें अधिकतम लोग लम्बी उम्र पूर्ण करने के बाद जीवन छोड़ते थे। सतयुग में वृद्धावस्था आने के बाद भी उनके शरीर की, इन्द्रियों की, बल और बुद्धि की क्षमताएँ प्रायः कायम रहती थीं। कई ऐसे महापुरूष रहे, जिन्होंने जीवन के पिछले काल में आत्म-साधना में पुरुषार्थ कर लक्ष्य हासिल किया। तीर्थङ्कर भगवन्तों के लिए तो अधिकतम पिछला भाग ही धर्माराधन के लिए कहा जाता है। चौरासी लाख पूर्व की आयुष्य है, तियासी लाख पूर्व गृहस्थ अवस्था में बीतते हैं शेष एक लाख पूर्व की आयुष्य रहते भगवान दीक्षित होते हैं। अवसर्पिणी काल में सबसे पहले मोक्षगमन करने वाली माता मरूदेवी मात्र अंतर्मुहूर्त्त रहने पर साधना में चरण बढ़ाती है। एक करोड़ पूर्व का आयुष्य पाकर भी पिछले समय तक शारीरिक बल देखो तो कोई ह्रास नहीं, इन्द्रियों की क्षीणता भी नहीं, ऐसा शास्त्र वर्णन करता है।

आज पंचम काल में न तीर्थङ्कर हैं, न चरम शरीरी जीव। पिछली अवस्था में शारीरिक बल, इन्द्रियों की क्षमता और धर्म कर सकने की स्थिति चौथे काल जैसी नहीं है। शास्त्र का कथन है–**''असंखयं जीवियं मा पमायए।''** अर्थात् जीवन असंस्कृत है, अतः प्रमाद मत करो। आयुष्य की डोर टूट जाने पर कुछ नहीं होने वाला है। वीतराग प्राणी के इन्हीं अनमोल वचनों में भ्रम निवारण किया जा रहा है–

जे पावकम्मेहिं धणं मणुसा, समाययंती अमइं गहाय।
पहाय ते पास पयट्ठिए णरे, वेराणुबद्धा णरयं उवेंति।।

–उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन 4, गाथा 2

मूलपाठ को आचार्य भगवन्त की भाषा में रखूँ–

पापकर्म से कुमतिवश जो, मानव वित्त कमाते हैं।
देखो, बाँध वैर,धन तज वे, नर नरकलोक को जाते हैं।।

धन त्राण देने वाला है, दुनियाँ का भ्रम था और है भी। आज लोग महसूस करते हैं कि धनपतियों में जितने भी दुर्गुण हैं वे छुप जाते हैं। धनी व्यक्ति सब जगह सम्मान पाता है, सब जगह उसकी पूछ होती है। जिसके पास धन है उसकी आवश्यकताएँ पूरी होती हैं। धन है तो लोग उसे गुणी समझते हैं, धर्मी मानते हैं। जिसके पास धन नहीं, उसकी कोई कीमत नहीं, ऐसा मानने वाले बहुत हैं। लोगों को यह भ्रम आज ही है, ऐसी बात नहीं, पहले भी ऐसा भ्रम था। आज यह धारणा बन चुकी है कि धन है तो सब कुछ है। पर, भगवान महावीर इस भ्रमपूर्ण धारणा के निकन्दन के लिए एक अनमोल वचन कह गये हैं–**''जे पावकम्मेहिं धणं मणूसा, समाययंती अमइं गहाय''** अर्थात् जो मनुष्य कुबुद्धि के वश पापकर्मों से धन उपार्जित करता है, वह नरक में जाता है।

शास्त्र ने पाप-कर्म के तीन अर्थ किये हैं। प्रथम अर्थ है-हिंसा, झूठ, चोरी और आसक्तिभाव से धन संग्रह करना, यह सामान्य बात है। दूसरा है-छल से, कपट से, दंभ से, ठगाई से, लुटेरे बनकर, प्राण हरण कर अनैतिक तरीके से धन इकट्ठा करना। तीसरा तरीका है-महारम्भ से धन उपार्जित करना। हम इसे कर्मादान के नाम से भी कह सकते हैं।

तीनों तरीकों से धन उपार्जित करना पाप का संचय है। पहले से दूसरा एवं दूसरे से तीसरा तरीका अधिक पाप का कारण है। यह जान लेना चाहिए कि पाप का अवलम्बन लेकर कोई सुख नहीं पा सकता। एक समय था जब खेती का धंधा प्रमुखता से था। एक-एक व्यक्ति के पास सैंकड़ों बीघा जमीन होती थी। सैंकड़ों हल बैल होते, सैंकड़ों पशु भी होते थे। आनन्द कामदेव जैसे श्रावकों के पास बड़ी खेती थी, बड़ा पशुधन था। उन श्रावकों के पास यह सब था, पर आसक्तिभाव, लोभ और तृष्णा शायद जितनी आपकी है, उन श्रमणोपासकों की नहीं थी। पहले का खेती का काम आज की खेती से कुछ भिन्न था। पहले जानवारों के लिए खाने की कमी नहीं थी, आज जानवारों को खाने के लिए कितना दिया जाता है, कहने की जरूरत नहीं। जानवर अपने भाग्य का खाते हैं, पर आज काश्तकारों की मनोवृति कुछ बदल गई है ऐसा कह दूँ तो उसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है। मानसिकता में बदलाव भी लोभ के कारण से है। पहले खेत में बीज बोने का, लाटा निकालने का और अनाज घर तक पहुँचाने का काम बैल करते थे, लेकिन आज वही काम ट्रेक्टर करता है। अनाज भी मशीनों से निकाला जाता है। जानवरों का पहले की तरह खेती में वैसा उपयोग नहीं रहा, इसलिए जिनके पास जानवर हैं, वे बेचने का प्रयास करते हैं। कई जानवर कत्लखाने पहुँचाते हैं।

आज पशु-पक्षियों की सोचने वाले विरले हैं। मैं सुनी हुई बात कहूँ-उल्लू जैसा पक्षी भी खेती के लिए सहायक होता है। साँप भी सहायक माना

जाता है। चिड़िया भी कीटनाशक जन्तुओं को हटाने का काम करती है, इसलिए खेती में सहायक मानी जाती है। आज कीटनाशक औषधियों के छिड़काव से फसलों में लगे रोग दूर किए जाते हैं लेकिन पहले चिड़िया, साँप आदि जानवर फसलों को रोगग्रस्त होने से बचाव का काम करते रहे हैं। आज कीटनाशक दवाओं के छिड़काव के कारण थोड़ी असावधानी रह जाय तो वह मनुष्यों के लिए घातक ही नहीं, प्राण लेवा तक बन रही है। कभी भूल से आदमी के खाने में आ जाय तो·····?

आज व्यवसाय में अहिंसात्मक विचार रखने वालों का एक तरह से अभाव-सा हो गया है। आज तो खाद्य पदार्थों में जहर मिल रहा है, इसीलिए बीमारियाँ बढ़ रही है। शाक-सब्जियाँ और फलों तक में औषधियों का जहर मिल रहा है। अप्रैल 1990 में उत्तरप्रदेश के एक गाँव राजपुरा में कीटनाशक दवाओं के छिड़काव से गेहूँ जहरीला हो गया। परिणाम स्वरूप उस गेहूँ को खाने से कई लोगों की जान चली गई। कीटनाशक औषधियों के प्रभाव की खबरें रात-दिन पत्र-पत्रिकाओं में छपती है। विशेषज्ञों का मानना है कि कीटनाशक दवाओं का असर यकृत, गुर्दे, हृदय आदि पर होता है। आजकल फल और सब्जियों को चमकदार दिखाने के लिए उन पर पाउडर डाला जाता है। यदि बिना धोए उन फलों व सब्जियों को काम लिया जाय तो स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है। जब खाद्य पदार्थों का इतना असर दिखने को मिलता है तो आसक्ति से कमाये धन का असर तो होगा ही।

आज कई लोग हैं जो विदेशी वस्तुओं का उपयोग करना चाहते हैं और विदेशी वस्तुओं के प्रयोग को अपनी शान समझते हैं। विदेशी वस्तुएँ कैसे निर्मित होती हैं इसमें किसी का चिन्तन नहीं चलता। उन वस्तुओं के निर्माण में कितनी-कितनी जीव हिंसा होती है, उस पर कोई विचार नहीं करता। पत्र-पत्रिकाओं में हिंसा से निर्मित वस्तुओं की जानकारी आती है तब

भी कोई चेतना नहीं जगती। मैंने एक पत्रिका में प्रकाशित समाचार पढ़े जिसमें कुछ आँकड़े दिए गये थे। पत्रिका लाने वाले भाई ने कहा- 'देखो, महाराज 1976 से पहले जहाँ दो हजार टन कीटनाशक काम में लिया जाता था, आज अस्सी हजार टन का उपयोग किया जा रहा है। लोग फसल अधिक लेने की लालसा में भरपूर कीटनाशक का उपयोग करते हैं। कीटनाशक के अधिक उपयोग से जमीन बंजर हो रही है और उन फसलों से मानव शरीर में रोग बढ़ रहे हैं।' इस तरह अधिक पैदावार लेने की आसक्ति से कितना नुकसान हो रहा है?

परिग्रह की आसक्ति अनर्थकारी है। परिग्रह की आसक्ति से विराधना ही नहीं, कभी-कभी हत्या तक का भी अनर्थ हो सकता है। धन के लोभ में न जाने कितने राजा-महाराजाओं का क्या हश्र हुआ, आपने सुना होगा। सिकन्दर, नादिरशाह, मोहम्मद गौरी जैसे कई क्रूर शासकों ने भारत को सोने की चिड़िया समझकर देश पर हमला किया, लूट-पाट की और कितने ही लोगों को मौत के घाट उतार दिया, जिसका कोई हिसाब नहीं वे ऊँटों पर जवाहरात भर-भर कर ले जाते। इतिहास में वर्णन है एक-एक दिन में हजारों मौतें हुईं, कत्ले-आम मचा। नादिरशाह ने एक दिन में डेढ़ लाख लोगों की हत्या की और जो मिला, ले गया। यह सब परिग्रह की आसक्ति का परिणाम था।

गृहस्थ का काम बिना धन के नहीं चलता। धन सबको चाहिये। धन और परिग्रहरूप उसकी आसक्ति में बहुत अन्तर है। हेमचन्द्राचार्य ने मार्गणा के पैंतीस बोलों में सम्यग्दर्शन का स्वरूप बताया है, जिसमें न्याय सम्पन्न विभव का उल्लेख है। कमाना कैसे? कमाना कितना? न्याय सम्पन्न से तात्पर्य कमाने में ईमानदारी, नैतिकता, सहृदयता, दयालुता रहनी चाहिए।

शास्त्र की गाथा में आप सुन गये। शब्द है 'पावकम्मेहिं' जो लोग पाप-कर्म से धन एकत्रित करते हैं वे चाहे जितना संगृहीत कर लें उन्हें

छोड़कर जाना पड़ता है और वे वैर की परम्परा को बाँधते हुए नरक तक में जा सकते हैं। यहाँ शब्द है 'जे मणुस्सा' यानी जो लोग। जो लोग कौन ? क्या आप इसमें शामिल नहीं हैं ? आपके हाथ खड़े करवाऊँ ? आपमें से कौन हैं जो चोरी नहीं करते ? कितने अधिकारी हैं जो अपनी ड्यूटी के हिसाब से ईमानदारी पूर्वक और मेहनत के साथ काम करते हैं ? नैतिकता के आधार पर काम करने वाले विरले ही हैं। ईमानदारी के साथ काम करने वालों के पास मोटर-बंगले मुश्किल से मिलते हैं। हाँ, जिनके प्रबल पुण्य का उदय है उनकी बात अलग है। पुण्यशालिता हो तो हाथी आकर गले में माला पहना सकता है और राज्य मिल सकता है। पुण्यवानी नहीं है तो पाप करके भी पैसा नहीं मिलता। पाप करके पैसा नहीं मिलता तो फिर पाप क्यों करना ?

पाप संताप देने वाला है। जितना-जितना पापाचरण करेंगे उसका उतना फल भोगना पड़ेगा। कई हैं जो स्वार्थ से, धोखे से, कुबुद्धि से धन एकत्रित करते रहते हैं। उनका एकत्रित किया धन घर वाले सभी खाते हैं, किन्तु पापाचरण करके एकत्रित करने का फल तो उन्हें ही भुगतना पड़ेगा।

जानवरों में मनुष्य के जितना ज्ञान नहीं है। वे अज्ञान में मारे जाते हैं। अगर मछली को मालूम हो जाय कि यह आटे की गोली खाने के लिए नहीं, मारने के लिए है तो वह शायद उधर नहीं आयेगी। बन्दर को देख लीजिये। कभी कोई बन्दर बिजली का तार छू जाय और करण्ट लगने से गिर जाय तो दूसरे बन्दर उस मार्ग को छोड़ देंगे, करण्ट वाले तार के पास नहीं फटकेंगे। पशु-पक्षी में मानव जितना ज्ञान नहीं है। आप जानते हैं पाप का मार्ग सुखदायी नहीं है, फिर भी पाप के कार्यों को निमन्त्रित किया जाता है। धर्म का मार्ग आनन्ददायी है तो भी यहाँ बैठने को कोई कहाँ तैयार हो रहा है ?

स्वामी श्री चौथमलजी महाराज फरमाते थे कि साधुपने में आत्मा का विकास होता है, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक् चारित्र बढ़ता है और साधुपने

में बिना पाप किए पेट भरता है। क्या आप इस बात को जानते हैं? आप यह जान लें कि पाप संताप देने वाला है, भटकाने वाला है, दुःख देने वाला है। अगर यह बोध हो जाय तो संसार में अटकने और भटकने का कोई कारण नहीं।

काम करने वाले को सुख-शांति से दाल-रोटी मिलती है, फिर मानव क्यों स्मगलिंग करता है? क्यों महारम्भ-महापरिग्रह का धंधा करता है? हिंसा-झूठ-चोरी और छल-कपट करके वह अधिक संताप को निमन्त्रित तो नहीं करता? आप चिंतन करेंगे तो लगेगा कि काम नौकर करता है और सेठ गादी पर बैठे-बैठे कितने पाप-कर्म के दलिक एकत्रित करता है, जिसका कोई हिसाब नहीं।

चढ़ उत्तुंग जैसे पतंग, शिखर नहीं वह कूप।
जिस सुख भीतर दुःख बसे, वो सुख भी दुःख रूप।।

आचार्य भगवन्त (पूज्य गुरूदेव श्री हस्तीमल जी म.सा.) की भाषा में कहूँ-आपका सुख क्या इन्द्रियों के पोषण में ही है? आप यह मानकर चलिये कि पाप-कर्म से धन इकट्ठा करने वालों की न कभी गणना हुई है, न होने वाली है। एक-एक सुख के लिए न जाने कितने-कितने जीवों की विराधना होती है, कितने जीव मरते हैं? एक गज रेशम के बनाने में हजारों कीड़ों को पानी में उबाल कर नष्ट किया जाता है। आज बहिनें रेशम की साड़ी पहनकर निकलती हैं और ऊपर से इठलाती हैं, उनके पाप-कर्म को क्या कहा जाय? एक-एक के पास न जाने कितने कपड़े हैं फिर भी नई साड़ी चाहिये, नई ड्रेस चाहिये। आपका मन कभी भरता नहीं।

आप में से कई हैं जो बोलते हैं-'सादा जीवन उच्च विचार, गुरू हस्ती की जय-जयकार।' बोलना सरल है, किन्तु बोलने के अनुरूप आचरण करना उतना ही कठिन है। शास्त्र कह रहा है-'धन बंधन में बाँधने वाला है।' आपको सोना-चाँदी, धन-सम्पति सब छोड़कर जाना पड़ेगा। आप कहते तो

हैं, पर शायद करते कुछ उलटा ही हैं। मैं तो कहूँ-संसार के जितने भी संबंध हैं, वे स्थायी नहीं हैं। जितने गहरे संबंध होंगे कर्म भी उतने ही गहरे बँधेंगे। **'वेराणुबद्धा नरयं उवेंति।'** वैर का बंध करके वे व्यक्ति नरक में जायेंगे।

आचार्य भगवन्त पूज्य गुरुदेव श्री हस्तीमल जी म.सा. ने एक गाँव में प्रश्न किया-'भाई! अगर कोई तुम्हें पाँच लाख रूपये इस शर्त पर दे कि मैं तुझे अंधा करूँगा तो क्या तुम ऐसा करने के लिए तैयार हो?' मैं यही बात आपसे भी पूछूँ तो? पैसे से सुख मिलता है तो प्रस्ताव क्यों ठुकराया जा रहा है?

जिस तरीके से आप धन कमा रहे हैं, आप क्या बनेंगे? मैं कठोर सत्य कह रहा हूँ। शास्त्र कहता है कठोर सत्य नहीं कहना चाहिये। हाँ, व्यक्तिगत मुझे किसी से कुछ नहीं कहना है, मैं मात्र पाप से विरति उत्पन्न हो, इस दृष्टि से कह रहा हूँ। आप स्वयं सोचें-जो माया, गूढ़ माया, छल-कपट, आरम्भ-समारम्भ कर रहे हैं, उससे किसे क्या मिलेगा? सुख-सुविधा के नाम पर कर्म-बंधन करना कहाँ की बुद्धिमानी है। मकान से सुख मिलता तो कोई दुःखी हो ही नहीं सकता था, क्योंकि आपमें से अधिकतर लोगों के अपने मकान हैं। याद रखना-कर्म बाँधना सरल है, किन्तु भोगना अवश्य पड़ेगा।

शास्त्र कह रहा है जलते हुए को देखकर दूसरे को सावधान हो जाना चाहिये। जो कोई सावधान हो जायेगा, वह पाप-कर्म से बचा रह सकेगा। आप पाप से निवृति करें, संवर-निर्जरा में आगे बढ़ें और धर्माचरण में उत्तरोत्तर प्रगति करें। थोड़े सुख के लिए लम्बे काल के दुःख को मोल लेना समझदारी नहीं है। आप सुज्ञ हैं, वीतराग वाणी को हृदयंगम कर पाप घटाने का प्रयास करेंगे, यही मंगल मनीषा है।

जोधपुर
24 अगस्त, 1994

9

आत्मशुद्धि का अमोघ उपाय : तप

णाणेण जाणइ भावे, दंसणेण य सद्दहे।
चरित्तेण णिगिण्हाइ, तवेण परिसुज्झइ।।

उत्तराध्ययन सूत्र 28.35

संसारी आत्मा कर्म से आबद्ध है। वह ज्ञान से जानता है, दर्शन से श्रद्धा करता है, चारित्र से निग्रह करता है और तप से शुद्ध होता है। 'जाणइ' शब्द जानने का संदेश देता है। 'दंसणेण य सद्दहे' शब्द यह विश्वास करने का संदेश देता है कि तुम्हारा उद्धार-उत्थान करने वाला और कोई नहीं, तुम स्वयं हो। देवी-देवता तो क्या स्वयं तीर्थङ्कर भगवान भी किसी को तारने में समर्थ नहीं हैं। यदि तीर्थङ्कर तारते तो गौतम शीघ्र तिर जाते। गौतमस्वामी श्रद्धावान, विनयवान और जीवन समर्पण करने वाले थे, पर जब तक उनके मन से मोह नहीं गया, वे तिर न सके। गणधर गौतम के पश्चात् दीक्षित होने वाले अनेक मुमुक्षुओं ने केवलज्ञान प्राप्त कर लिया, किंतु गौतम को केवलज्ञान बाद में हुआ, क्योंकि मोह के क्षय से मोक्ष होता है।

आचार्य भगवन्त (पूज्य गुरुदेव श्री हस्तीमलजी महाराज) के चरणों में एक भक्त की भावना सुनी। वह बोला-''गुरुदेव! मुझसे तो कुछ होता जाता नहीं, पर मेरी धर्मपत्नी सामायिक करती है, तपस्या करती है और साधना-आराधना भी करती है। मैं उसके ज्ञान-ध्यान और त्याग-तप में सहयोग देता हूँ। मैं नहीं करता तो क्या हुआ, मैं उसका पल्ला पकड़कर पार हो जाऊँगा।'' धर्म-ध्यान के लिए उसका ऐसा कथन कितना उचित है? जो इस तरह की भावना रखकर चलते हैं मैं उन भले आदमियों से पूछूँ कि आपकी घरवाली खाती है, पीती है, वस्त्राभूषण धारण करती है तो आप क्यों नहीं कहते कि घरवाली खाती-पीती है तो मुझे खाने-पीने की क्या जरूरत?

श्रद्धा के संदर्भ को लेकर मैं कह गया कि आपकी आत्मा का उत्थान करने वाला दूसरा कोई नहीं, है तो बस तुम्हारी अपनी करणी का रूप। न देवता तार सकते हैं और न ही तीर्थङ्कर भगवान, फिर जगह-जगह जाकर माथा रगड़ने से क्या लाभ? आप श्रद्धा को पकड़ लो, पार हो सकते हो। मारवाड़ की कहावत आपने सुनी होगी-सात मामा का भाणजा भूखा रह जाता है। आप कभी भैरूजी, कभी नाकोड़ाजी तो कभी दूसरे-दूसरे देवी-देवताओं के चक्कर लगाते हैं उससे कोई लाभ मिलने वाला नहीं है। आत्मा से परमात्मा बनना है तो एक ही रास्ता है चारित्र और तप का। सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक् चारित्र और सम्यक् तप प्रत्येक प्राणी को उत्थान की ओर ले जाने वाले हैं। बातें करने से पेट नहीं भरता। मंजिल का नाम स्मरण करते रहने से मंजिल पर पहुँचना नहीं हो सकता। ज्ञानपूर्वक अटूट आस्था से चारित्र में चरण बढ़ाने पर मंजिल प्राप्त होती है।

कल देशविरति चारित्र में बारह व्रतों की बात कही गई थी, वहीं बारह व्रत अंगीकार करने की सामर्थ्य नहीं होने पर कम से कम एक व्रत आवश्यक रूप से धारण करने का आह्वान किया गया था। व्रताराधन व्यक्ति-

व्यक्ति की क्षमता पर निर्भर है। वायुयान से सफर करने वाला मिनटों/घंटों में गंतव्य स्थल पर पहुँचता है तो रेल से यात्री दिनों में गंतव्य स्थल प्राप्त करता है। छोटी-सी चींटी अपनी चाल से चलती है तो वह भी रास्ता पार कर जाती है, भले ही उसे अधिक समय लगे। जरूरत चलने की है, चलने वाला मंजिल तक पहुँच सकता है।

तीर्थङ्कर भगवान महावीर ने कर्म-रोग मिटाने के लिए तप को अमोघ औषधि कहा है। तप को पथ्य के नाम से भी कह सकते हैं। जानना, मानना, पालना आवश्यक है वैसे ही पथ्य-परहेज भी आवश्यक है। जानना ज्ञान है, मानना दर्शन है, पालना चारित्र है तो पथ-परहेज है-तप। कर्मों का रोग है यह जान लिया। कर्मों के रोग को मिटाने वाली श्रद्धा है इसे भी मान लिया, पर कर्म-रोग मिटता है चारित्र से। चारित्र पालन आवश्यक है। चारित्र का पालन औषधि सेवन की भाँति है वहीं तप रूप पथ्य परहेज से रोग का निकंदन सुगम होता है।

जितना महत्त्व दवा का है, पथ्य भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है। शूगर है, लेकिन शक्कर नहीं छूटती, बी. पी. वाले का नमक नहीं छूटता तो फिर सैंकड़ों गोलियाँ खा ली जाय, लाभ नहीं मिल सकता। पथ्य के बिना किसी का रोग मिटता नहीं, मिटेगा भी नहीं। भगवान महावीर ने कर्म-रोग काटने के लिए पथ्य की बात कही है। इस पथ्य को भी दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। एक है शरीर का परहेज, तो दूसरा मन का परहेज। एक तप, शरीर को तपाता है तो दूसरा तप, मन को तपाने वाला है। एक शरीर की शुद्धि करता है तो दूसरा मन के विकारों को नष्ट करता है।

भारतीय संस्कृति में जितने भी ऋषि-महर्षि, साधक और महापुरुष हुए हैं सबने तप का आचरण किया है। तप का विस्तृत क्षेत्र है। खाते हुए भी

तप हो सकता है तो खाना बंद करके भी हो सकता है। बोलना तप है तो मौन भी तप है। तप सोचने की प्रक्रिया से भी हो सकता है। तात्पर्य यह है कि जिस साधना से विकार घटे, वह तप है।

भारत में भगवान पार्श्वनाथ और भगवान महावीर स्वामी के समय अनेकानेक तपस्वी थे जो तन को तपाते, पर उनके मन का अहंकार कम होने के बजाय बढ़ता रहता था। कई तपस्वी नदी में खड़े होकर, पेड़ों पर लटक कर तप करते थे। कुछ तपस्वी अपने तन के चारों ओर अग्नि लगाकर तन को तपाते थे। भगवान महावीर ने इस प्रकार के तप को अज्ञान तप की संज्ञा दी। ऐसा तप, निर्जरा नहीं संताप पैदा करता है। तप की परिभाषा करते कहा है–

''तप्यन्ते कर्माणि येन, असौ तपः''

अर्थात् जिससे पूर्वबद्ध कर्मों का क्षय होता है, वह तप है।

दूध–पानी की तरह आत्मा के साथ एकमेक हुए कर्मों को जिससे तपाया जाता है, उसे तप कहते हैं। यहाँ हो सकता है आपमें से कुछ के मन में प्रश्न उठे कि कर्मों को विनष्ट करने के लिए शरीर को कष्ट क्यों दिया जाय? उपवास, बेले, तेले, अठाई और मासखमण क्यों किए जायें? भोजन छोड़ना, स्नान नहीं करना, मैल नहीं निकालना, शरीर की शोभा–विभूषा नहीं करना– इन बातों का क्या मतलब?

आचार्य भगवन्त (पूज्य गुरुदेव श्री हस्तीमलजी म.सा.) ने शास्त्रीय दृष्टान्त के माध्यम से समस्या के समाधान के लिए फरमाया कि घी में छाछ का विकार मिला हुआ है, उस घी को आग में डाल दिया जाय तो छाछ रूप विकार और घी दोनों जल जायेंगे। घी को छाछ रूप विकार से अलग करना है तो उसे बर्तन में रखकर तपाना होगा, जिससे घी में रहे छाछ रूप विकार को जलाकर घी को विशुद्ध बनाया जा सके। यह दृष्टान्त है। समझने की बात है

कि आत्मा के साथ कर्म रूप विकार हटाने के लिए शरीर को तपाना जरूरी है। यह शरीर तपेले जैसा है। जितना-जितना शरीर तपेगा कर्म विनष्ट होते जायेंगे।

भूख में भोजन करना शरीरधारी जीव की प्रकृति है। आवश्यकता से अधिक खाना, विपरीत खाना, व्यसन सेवन करना विकृति है। तप करना संस्कृति है। साधना के लिए शरीर आवश्यक है। शरीर निर्वहन के लिए भोजन करना प्रकृति है, लेकिन स्वाद के लिए खाना, आवश्यकता से अधिक खाना, विपरीत खाना और जिसकी तन को जरूरत नहीं ऐसे व्यसनों का सेवन करना विकृति है। आप चाहे पान-पराग खा रहे हैं, गुटखे का सेवन कर रहे हैं, शराब-सिगरेट-बीड़ी-जर्दा आदि जितने भी व्यसन हैं वे सब छोड़ने लायक हैं। पान-पराग, गुटखा भी छोड़ने योग्य है। प्राकृतिक खाना शरीर की प्रकृति के लिए अनुकूल है वहीं प्रकृति के विरूद्ध खाना विकृति है, त्याज्य है, छोड़ने लायक है।

आपने देखा होगा-जो बैल खेत में हल जोतने जाता है, स्वामी उसे बिनौले खिलाता है, तिल और गुड़ देता है। वही बैल मेहनत का काम नहीं करता तो उसे साधारण चारा चरने को दिया जाता है। बैल का स्वामी जानता है कि उसे बाँटा देना? कितना देना कि बैल में प्रमाद नहीं आये और उसकी कार्य-क्षमता बनी रहे, यह उसका स्वामी जानता है। बैल की बात छोड़िये, यह शरीर है, इसे कब? कितना? और कैसे? खाना दिया जाय, इसका चिंतन जरूरी है। अधिक खाना कार्य में सहायक बनने की बजाय बाधक बनता है। कई हैं जो मनुहार से खिलाते हैं, जबरदस्ती करते हैं। कुछ तो सौगंध देकर खिलाने में शान समझते हैं। किंतु एक जरूरत से ज्यादा खाकर तकलीफ उठाता है वहीं एक को आवश्यकता से बहुत कम नसीब होता है। एक के द्वारा अधिक खाना दूसरे को महरूम रखने जैसा है।

भारत के जितने भी संत-महात्मा हैं उनमें शायद ही कोई ऐसा होगा जिसके जीवन में थोड़ा या अधिक तप का आचरण नहीं होता हो। भगवान ऋषभदेव से भगवान महावीर तक और भगवान महावीर से आज तक किसी भी परंपरा को ले लीजिये, किसी भी धर्म, पंथ या मत को ले लीजिये, सबमें न्यूनाधिक रूप से तप का आचरण मिलेगा ही। लौकिक पुरुष गाँधीजी का नाम ले लीजिये, वे भी क्या खाना ? कब खाना ? कितना खाना ? इन सबका ध्यान रखते थे। खाने पर संयम करना तप है। यह तप हमारी संस्कृति है।

अनशप तप है। इसमें अमुक समय तक आहार ग्रहण नहीं किया जाता। उपवास में कम-से-कम छत्तीस घंटे तक आहार नहीं होता। उपवास करने वाला पहली रात को भोजन नहीं करता, फिर अगले दिन के बारह घंटे अगली रात के बारह घंटे, इस तरह छत्तीस घंटे निराहार रहता है। यह तप किसी के कई दिनों और महिनों तक चलता है। भगवान ऋषभदेव ने एक वर्ष तक तप किया, भगवान महावीर ने छः महीने तक तप किया। भगवान महावीर के बाद भी पाँच माह पन्द्रह दिन का तक का तप करने का उदाहरण है जयपुर की बहिन इचरजकँवर लुणावत का। एक-एक महीने तक का तप करने वाले तो आज भी कई हैं। खंभात में एक साथ 108 मासखमण और लगभग 120 अठाइयाँ हुईं। अन्य जगहों पर भी मासखमण तप होते रहते हैं। मासखमण से ऊपर की तपस्याएँ चलती रहती हैं। अनशन तप स्वीकार करने वाले तपस्वी पहले थे, आज हैं और आगे भी रहेंगे।

तप क्या है ? इसे समझना जरूरी है। आज तर्क का युग है। पूछने वाले पूछते हैं कि हम तप क्यों करें ? उत्तर में कहना होगा कि तप का तेज आत्मा को गति देता है। चारित्र में चरण बढ़ाने वाला तप के तेज द्वारा द्रुतगति से आगे बढ़ सकता है। चारित्र के बाद का तर्पण मिलता है, क्योंकि तप कर्मों के पहाड़ को काटने वाला वज्र है। तप काम-दावानल की ज्वाला के शमन

के लिए जल का काम करता है। तप इन्द्रियों के विकारों को वश में करने का वशीकरण मंत्र है। तप लब्धि और आत्म-साधना में आगे बढ़ाने वाला साधन है। तप की महिमा करते कवि ने ठीक ही कहा है-

क्रोड़ विघ्न दूर टले, वांछित फले तत्काल।
जो भविजन नित तप करे, तस घर मंगलमाल।।

तप वांछित फल देने वाला है। अब तक जिन्होंने जो भी मिलाया है, इसी तप-साधना के बलबूते से मिलाया है। शास्त्रों में और कथाभाग में अनेकानेक दृष्टांत मिलेंगे, जिनमें तप के कारण एक-एक तपस्वी के जीवन में अभूतपूर्व परिवर्तन आया है।

तप से मन के विकार दूर होते हैं। एक सेठ का पुत्र अर्थोपार्जन के लिए विदेश गया, नव-यौवना वधू घर पर थी। वधू के खाने-पीने की कमी नहीं थी, अत: खाना-पीना और आराम करना ही मुख्य काम था। जवानी दीवानी होती है। नव-यौवना के मन में विकार उठने लगे। एक दिन वह वधू अपने श्वसुर से बोली-पिताजी! घर का यह बूढ़ा नौकर काम करने में समर्थ नहीं है, इसलिए इसकी जगह किसी जवान को रखना चाहिये। सेठ अनुभवी था। सोचने लगा-वर्षों पुराने नौकर के बजाय जवान नौकर की माँग के पीछे क्या रहस्य है? सेठ ने सोचा-मुझे युक्ति युक्त तरीके से समाधान करना चाहिये।

दूसरा दिन हुआ। बहू पृच्छा करने आई-पिताजी! आज भोजन में क्या बनाया जाय? सेठजी ने कहा-बहू! आज चतुर्दशी है, संत भगवंतों का सुयोग भी प्राप्त है, इसलिए मेरी भावना उपवास करने की है। तुम अपने लिए जो बनाना है, बना सकती हो।

बहू सोचने लगी कि इस अवस्था में पिताजी उपवास करने की भावना कर रहे हैं, मैं तो जवान हूँ, सहजता से तप कर सकती हूँ अत: मुझे भी उपवास करना चाहिये। घर में दो ही खाने वाले हैं, मैं अपने लिए क्यों बनाऊँ? अकेले के लिए आरंभ-समारंभ के बजाय उपवास करना ठीक ही है।

दूसरे दिन पारणे के समय बहू ने पूछा-पिताजी! पारणे के लिए क्या तैयार करूँ?

बेटी! मेरी भावना है आज एक उपवास और कर लूँ। श्वसुर ने बेला किया तो बहू ने भी बेला कर लिया। तीसरे दिन बहू ने फिर पूछा-पिताजी! आज तो पारणक है, क्या बनाऊँ? श्वसुर ने कहा-बहू! मेरा तप ठीक चल रहा है, मैंने तेला कर लिया। बहू ने भी श्वसुरजी का अनुसरण कर तेला कर लिया। एक तेले से पेट की सफाई तो हुई ही, बहू के मन की सफाई भी हो गई।

तप से विकार मिटते हैं। तीन दिन की तपस्या के बाद बहू ने कहा-पिताजी! घर में ज्यादा काम तो है नहीं, फिर वर्षों पुराने नौकर को नहीं छोड़ना चाहिये। आजकल विश्वास करने वाले नये नौकर मिलते कहाँ हैं? नये नौकर का भरोसा भी तो नहीं किया जा सकता, इसलिए अपना पुराना नौकर ही ठीक है।

पिता ने पारणक कर लिया, बहू ने भी पारणक कर लिया। तप-साधना से श्वसुर ने बहू की सारणा कर ली। अनशन इन्द्रियों के विकार घटाता है। तन को स्वस्थ और मन को विशुद्ध रखने के लिए अनशन रामबाण औषधि है। आज कई हैं जो तप के महत्त्व से अनभिज्ञ हैं। वे प्राय: हम संतों से कहते हैं-महाराज! इस बच्चे को तो ध्यान नहीं, आप इसे प्रत्याख्यान नहीं करायें। बच्चों को नहीं, बड़ों के लिए भी कहने वाले हैं। महाराज! ये तो कभी तप करते नहीं इसलिए इनसे नहीं होगा। तप करने में कठिनाई होती है। मैं उनके कहा करता हूँ कि आप संसार में रहते सैंकड़ों कठिनाइयाँ सहन करते

हैं तो कर्म-काटने के लिए तप की कठिनाई सहना भारी क्यों लगती है ? एक माँ कितनी कठिनाइयाँ सहन करती है ? एक किसान जेठ की भरी गर्मी में खेत जोतता है, निरंतर काम करता है, धूल-मिट्टी से सराबोर हो जाता है, उससे पूछो, क्या तुम्हें कोई तकलीफ हो रही है ? किसान भरी सर्दी में रात को खेत की पाणत करता है, धोती ऊपर करके घंटों नंगे पाँव पानी में रहता है, फिर भी वह कष्ट का अनुभव नहीं करता। आप जानते हैं, न माँ को कष्ट होता है न किसान को, क्योंकि उन्हें मालूम है कि दु:ख नहीं देखेंगे तो सुख मिलने वाला नहीं है। एक देशभक्त सैनिक युद्ध के मोर्चे पर सीना ताने खड़ा है। उधर से गोलियाँ चल रही हैं, बम बरस रहे हैं, जान को खतरा है, फिर भी देश की रक्षा के लिए लड़ रहा है तो क्या वह कष्ट का अनुभव करता है ?

तप करने वाले की श्रद्धा है, उमंग है, उल्लास है, भावना है, तब कहीं तप होता है। भावना वाले दीर्घ तपस्या में भी एक सौ आठ बार वंदन कर जाते हैं। मैंने ऐसी बहिनें देखी हैं। मैंने यह भी देखा है कि जिनके 81 उपवास का पारणा है, फिर भी पारणे में केवल तीन द्रव्य। इक्कीस वर्षों से एकांतर चल रहा है। तप करने वाले गरीब हों, उनके पास साधन नहीं, ऐसी बात नहीं है। किन्तु तप को आत्महित के लिए अपनाया है। कई बहिनें स्वयं तप करती हैं, परन्तु घर आए मेहमान को मिष्ठान्न खिलाकर भेजती हैं।

भगवान महावीर ने विकार-शमन के लिए तप की जरूरत बताई जो अनशन नहीं कर सकते वे ऊणोदरी तप कर सकते हैं। ऊणोदरी तप बालक कर सकता है, वृद्ध भी कर सकता है, रोगी भी कर सकता है। भूख से कम खाना ऊणोदरी तप है। कपड़ों की मर्यादा करना भी तप में शुमार है। आप मर्यादित वस्त्र रखेंगे तो आपको पेटियाँ और अलमारियाँ नहीं भरनी पड़ेंगी। आज बहिनों की तृष्णा बढ़ती ही जा रही है। घर में पचास नहीं, सौ साड़ियाँ

हैं, फिर भी बाजार में नई डिजाइन देखी नहीं कि खरीद कर ली। न जाने कितनी साड़ियाँ हैं, कितने जोड़ी चप्पल-जूते हैं, फिर भी तृष्णा वहीं की वहीं। आज हर-एक को मैचिंग चाहिये। ड्रेस जैसी चप्पलें। ड्रेस लाल तो जूतियाँ भी लाल। कपड़े क्या, जूते क्या, चूड़ियाँ और बिंदी भी मैचिंग की चाहिये। बस अंतर है तो मुँह वैसा नहीं है।

जरूरत से ज्यादा संग्रह दूसरों के दु:ख का कारण बनता है। साधु के लिए वस्त्र-पात्र की सीमा है, इसका मतलब आपको छूट है ऐसा नहीं। खाने में जिस प्रकार ऊणोदरी तप है वैसे ही जरूरत जितना बोलना भी तप में शुमार है। एक की चार सुनाने वाले कई हैं। आप स्वयं होकर गम खा जाओ तो यह भी एक तरह का तप है। क्रोध के समय क्रोध नहीं करना तप है। क्षमा करने वाला बड़ा होता है। कभी प्रतिष्ठा में आँच आने वाले शब्द कोई कह दे तो गम खा जाओ, यह भी तप है। बीस अक्षरों के बजाय पाँच से काम चलता हो तो पाँच अक्षर बोलो।

आपने आचार्य भगवंत (पूज्य गुरुदेव श्री हस्तीमलजी म.सा.) का जीवन देखा है। पूज्य गुरुदेव अल्प भाषण करते थे। पूज्य गुरुदेव का अतिशय ही ऐसा था कि बड़े-से-बड़ा आदमी भी बात करने से पहले सोचता था। गृहस्थ या सामान्य साधु की क्या बात कहूँ, बड़े-बड़े आचार्य भी पूछते कि हमें बात करनी है।

विक्रम सम्वत् 2020 में आचार्य भगवन्त (पूज्य श्री हस्तीमलजी म.सा.) अजमेर पधारे। तब भगवंत, श्रमण संघ में उपाध्याय थे। पूज्य आनन्दऋषिजी म.सा. आचार्य पद पर थे। उन्हें प्रायश्चित्त को लेकर कुछ विचारणा करनी थी। आचार्यश्री आनन्दऋषिजी म.सा. के साथ श्री कुंदनऋषिजी म.सा. थे, गुरुदेव के साथ मैं था। स्थंडिल के समय शहर की

सीमा से बाहर आचार्यश्री आनंदऋषिजी म.सा. ने मुझसे (मुनि श्री हीराचन्द्रजी से) कहा–उपाध्यायश्री से बात करने का समय कब है? आचार्य प्रवर स्वयं उपाध्याय प्रवर से पूछ सकते थे, लेकिन अल्पभाषी पूज्य गुरुदेव से कब बात करनी चाहिये यह बात उनके मन में थी। आप जरूरत है उतना बोलकर अपनी कीमत बढ़ा सकते हैं। बोलकर इज्जत बढ़ाना आपके हाथ में है तो कम बोलें, जरूरत के मुताबिक बोलें, हितकारी बोलें। जानते तो आप हैं, लेकिन व्यवहार में यह सूत्र कितना आया है, चिंतन का विषय है।

अनश्न को लेकर अपनी बात चल रही थी। अनशन तप है। ऊणोदरी तप है। तप का तीसरा भेद है–वृत्तिसंक्षेप। जितने पदार्थ सामने आयें उनमें से एक एक भी कम कीजिए, यह भी तप है। भोजन में रस लेने का त्याग करना अथवा विभिन्न रसों में कुछ के सेवन का त्याग करना रस–परित्याग तप है। काया को साधना के योग्य बनाए रखना, शीत, आतप आदि में अप्रमत्ततापूर्वक समत्व की साधना कायक्लेश तप है। इन्द्रियों को विषयों से हटाकर आत्मा में लीन करना प्रतिसंलीनता तप है। ये बाह्य तप हैं तो अंतरंग तप है मन को विशुद्ध करना।

प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्त्य, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग ये आभ्यंतर तप हैं। आपसे कोई त्रुटि हो जाय, उसका शुद्धीकरण करना प्रायश्चित्त तप है। जैसी भूल हुई उसे यथा रूप प्रकट करने वाले विरले होते हैं। पाप करने वाले बहुत हैं। पापाचरण करने वाले को कहने वाले कोई–कोई मिलते हैं और यथावत् कहने वाले तो विरले ही होते हैं। रोग–निदान के लिए आप डॉक्टर को साफ–साफ बताते हैं, वहाँ छुपाव का काम नहीं। बीमारी क्या है, कब से है आप यथावत् बताते हैं लेकिन पाप प्रकट करना हो तो छुपाते हैं बताते भी हैं तो घटाकर कहते हैं। कभी मजबूरी से कहना भी पड़े तो अपने ऊपर डालने के बजाय दूसरों पर डालने का प्रयास होता है। यह कब होता

है ? यह तब होता है जब मन को विशुद्ध करने का भाव नहीं होता। इसलिए जान लेना चाहिए कि पाप का प्रायश्चित्त करना भी तप है।

विनय भी तप है। वैयावृत्त्य भी तप है। स्वाध्याय भी तप है। आचार्य भगवंत (पूज्य गुरुदेव श्री हस्तीमलजी म.सा.) ने जीवन भर स्वाध्याय का आघोष किया। स्वाध्याय रूप तप से न जाने कितनों का जीवन बदला है, कितने ज्ञानी बने हैं, कितने देशविरति बने हैं, इसलिए कहना है, स्वाध्याय भी तप है।

ध्यान भी तप है। एक दिन सबको जाना है। रोते-रोते जाने के बजाय तन की ममता उतारकर चलोगे तो जाते समय हाय-त्राय नहीं करना पड़ेगा, रोन नहीं पड़ेगा, हँसते-हँसते जायेंगे। शरीरादि से ममत्व का त्याग व्युत्सर्ग तप है। ममता रहेगी तो हाय-हाय रहेगी। आप अंतरंग और बाह्य तप का स्वरूप समझकर कर्मों का विशोधन करें, विकार घटायें। आप तन के स्वरूप को समझकर जीवन में तपश्चरण करें तो आप कर्मों का क्षय कर आत्मा से महात्मा और महात्मा से परमात्मा बन सकेंगे।

जोधपुर
5 सितम्बर, 1994

10

स्वहित-परहित : दान में दोनों निहित

पर्वाधिराज पर्युषण पर्व का आज 5वाँ दिन है। सहज गति से चलने वाले ये परम पवित्र दिन कृष्ण पक्ष से शुक्ल पक्ष की ओर बढ़ रहे हैं। इन पावन दिनों का संदेश है-मानव! तू कृष्ण पक्ष से शुक्ल पक्ष की ओर कदम बढ़ा। अज्ञान से हटकर ज्ञान का प्रकाश कर। अश्रद्धा से हटकर आत्म-तत्त्व पर विश्वास कर। चारित्र में चरण बढ़ाकर कर्मों के बंधन को तोड़। संचित कर्मों को अनशन से, विनय से, वैयावृत्त्य से, स्वाध्याय से, ध्यान से खपाने की कोशिश कर।

मानव-जीवन बचपन से लेकर अंतिम समय तक दान के सहारे ही आगे बढ़ता आया है। जन्म लेने के साथ माता का स्नेहदान मिलता है तो आगे चलकर परिवार का प्रेमदान, अड़ौसी-पड़ौसी का सहयोगदान, विद्यागुरु का ज्ञानदान, हुनर सिखाने वाले का इल्मदान इस तरह जीव के अंत तक मानव-जीवन का दूसरों के सहयोग से विकास होता है। मोक्ष-मार्ग में जिन चार उपायों का कथन किया गया है, उनमें दान सबसे पहले है-

दानं सुपात्रं सुभगं च शीलं, तपो विचित्रं शुभ भावना च।
भवार्णवोत्तारणयानपात्रं, धर्मं चतुर्धा मुनयो वदन्ति।।

दान संसार-सागर से पार होने के लिए नौका या जहाज की तरह है। चार धर्मों में पहला दान-धर्म है। चार धर्म हैं-दान, शील, तप और भावना। इन चार धर्मों का जो भी आराधन करते हैं, वे लाभ प्राप्त करते हैं, किंतु दान की महिमा निराली है। आपने उपवास किया, बेला-तेला-अठाई या मासखमण किया, अनशन ही नहीं ऊणोदरी, रस-परित्याग आदि तप किए तो उसका लाभ स्वयं को मिलेगा। इसी प्रकार शील का लाभ भी स्वयं को मिलता है। शील पालने वाला स्वयं की शक्ति का वर्द्धन करता है, स्वयं के विकारों को घटाता है, स्वयं की बुद्धि निर्मल करता है। मतलब शील-पालन का खुद को लाभ मिलता है, दूसरों को लाभ नहीं होता। भावना भव नाशिनी है, भवों के बंधन काटने वाली है। शुभ भावना का लाभ भी स्वयं को मिलता है। भावना वाला अपने हृदय को पवित्र बनाता है, स्वयं वैराग्य की ओर बढ़ सकता है, संसार की अनित्यता समझ सकता है और भावना से केवलज्ञान की प्राप्ति भी कर सकता है ऐसी प्रभावशाली भावना का स्वयं को लाभ है, दूसरों को नहीं। शील हो, तप हो या भावना हो इन सबसे स्वयं को लाभ मिलता है, लेकिन दान स्वयं के लिए लाभप्रद है ही और साथ में जिसे दिया जा रहा है उसको भी लाभान्वित करने वाला है।

दान, जहाँ स्वयं की ममता-मूर्च्छा घटाता है, वहीं दूसरों के लिए भी उपयोगी होने से उभय लाभदायी है। अधर्म में देने के बजाय जो लोग सुपात्रदान में देकर अपने द्रव्य को पवित्र करते हैं तो वे पुण्य का उपार्जन भी करते हैं। दान स्वयं के लिए निर्जरा और पुण्य का कारण है तो सामने वाले के लिए तर्पण का काम करता है। दान स्वयं तक सीमित नहीं रहता, वह तिर्यंच या मानव जिन्हें भी दिया जाता है उन्हें भी लाभ पहुँचाता है। मानव ही क्या देव, देवेन्द्र, महेन्द्र भी हों, दान स्वयं को उपकृत करता है तो दूसरों के लिए भी उपकार रूप है। जहाँ दान के लिए शास्त्र में कथन है वहाँ आचार्य भगवंत (पूज्य गुरुदेव श्री हस्तीमलजी म.सा.) ने भी श्रावक के आवश्यक कर्त्तव्यों में दान का वर्णन करते हुए अपनी भाषा में कहा-

सुपात्र दान के तीन भेद कर लेना।
साधु, श्रावक समदृष्टि को देना।
ज्ञान और अभयदान रस लीजे।
पात्र दान के भूषण ध्यान धरीजे।।
चित्त-वित्त अरु पात्र की महिमा गाई।
षट् कर्मों रा धन री करो कमाई।।
कहे मुनीश्वर सुनो बाई और भाई।
षट् कर्मों रा धन री करो कमाई।।

भारत की संस्कृति दान-प्रधान है। यहाँ शूरों, वीरों, तपस्वियों और जपियों के पहले दानियों का स्मरण किया जाता है। आपने शायद कहावत सुनी होगी-पहली प्रहर राजा कर्ण की। राजा कर्ण का स्मरण क्यों? क्योंकि वह दानी था।

भारत में अनेक दानी हुए हैं, जिन्होंने धन दिया, सम्पत्ति दी और जरूरत पड़ी तो घर के भंडार खोल दिये। इससे अधिक क्या कहूँ इस देश के ऋषियों ने अपनी हड्डियाँ तक दान कर दीं। जिसके सहारे जीवन चल रहा है, उसे माँग लिया तो कवच और कुण्डल दान कर दिये। माँगने पर सर्वस्व न्यौछावर करने वाले दानी इस देश में हुए हैं।

दानी को यह कहने की जरूरत नहीं है कि तुम दान करो। सूर्य को कौन कहता है प्रकाश करो? नदियों को कौन कहता है बहती रहो? वृक्ष को कौन कहता है छाया दो? सूर्य बिना माँगे प्रकाश देता है, नदी स्वत: प्रवाहित होती है, वृक्ष सहज रूप से छाया देता है इसी तरह दानी पुरुष पाई हुई लक्ष्मी का सदुपयोग करता है तथा इसे अपना कर्त्तव्य समझता है।

दान क्या? दान की कई परिभाषाएँ हैं, अनेक भेद हैं। तीर्थङ्कर भगवान महावीर ने ठाणांग सूत्र के दसवें ठाणे में दस प्रकार के दान कहे हैं।

गीताकार श्रीकृष्ण ने दान के तीन भेद करते हुए–तामस दान, राजस दान और सात्त्विक दान बताये हैं। इन्हीं को अधर्मीदान, व्यवहार दान और करुणा दान के नाम से भी कहा जा सकता है। अहं की पुष्टि और नाम की भावना से दिया गया दान अधर्मदान में गिना जाता है। नट–नटनियों को देना, व्यसन–सेवन करने वालों को देना, स्वयं नशा करके देना तामस दान या अधर्म दान है। लोक व्यवहार दान में सम्मिलित होता है। बच्चे के विवाह में लड़की अपने साथ लेकर आई अथवा अपनी लड़की का विवाह हो तो साथ में कुछ देकर भेजना भी व्यवहार दान है। आप किसी के यहाँ भोजन करके आए, आपके यहाँ कभी उसका आगमन हुआ तो उसे भोजन कराना आदि भी परस्पर व्यवहार दान है। आप किसी के यहाँ भोजन करके आए, आपके यहाँ कभी उसका आगमन हुआ तो उसे भोजन कराना आदि भी परस्पर व्यवहार दान है। आप किसी के यहाँ भोजन करके आए, आपके यहाँ कभी उसका आगमन हुआ तो उसे भोजन कराना आदि भी परस्पर व्यवहार दान है। दूसरों के दु:ख को दूर करने के लिए दिया गया दान करुणा दान है। नीति का कथन है–मार्ग में भटकने वाले व्यक्ति को यदि आँख वाला सज्जन रास्ता नहीं बताता, तैरना जानते हुए भी डूबने वाले का हाथ पकड़ कर यदि कोई बाहर नहीं निकालता, अपने पास बुद्धि और ज्ञान होते हुए भी दूसरों को सत्पथ नहीं दिखाता तो वह कृतज्ञ के बजाय कृतघ्न कहलाता है। आपने पाया है तो दें। जो देने का कर्त्तव्य अदा नहीं करता वह एक तरह से अपराधी है, पापी है, उसमें करुणा नहीं।

दातव्यमिति यद्दानं, दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च, तद्दानं सात्विकं स्मृतं।।

–भगवद् गीता 17.20

गीता में श्रीकृष्ण ने कहा–जो अपनी ममता उतार कर देता है वह सात्त्विक दान है। जो देकर लिया जाता है वह व्यवहार है, दान नहीं। आज

हजारों-लाखों रुपयों के दान करने वाले कई लोग हैं। वे मुक्त हस्त से देते हैं, लेकिन देने के साथ उनकी भावना रहती है कि हमारे नाम का शिलालेख लगे, हमारे नाम का कमरा और हॉल बने। नामवरी के लिए देने वाले बहुत हैं। मंदिर हो या उपाश्रय अथवा सार्वजनिक कोई भवन हो, प्राय: अधिकांश भवनों पर दानदाताओं की नामावली से दीवारें भरी हैं। लोग नाम के लिए, प्रतिष्ठा के लिए, कीर्ति और सौरभ के लिए उदारता से देने में आगे रहते हैं, लेकिन ऐसा दान सात्त्विक दान नहीं कहा जा सकता। आप उसे व्यवहार दान तो कह सकते हैं।

जो दिया जाता है, वह दान है। दिया किसे जाय ? देने के लिए देश, काल और पात्र को समझना जरूरी है। एक है 'अभयदान', दूसरा है 'सुपात्र दान', तीसरा है 'ज्ञानदान'। अभयदान, सुपात्रदान और ज्ञानदान से निर्जरा होती है। षट्काय के जीवों को अभय देना अभयदान है। ये कर्म क्षय करने वाले दान हैं। सुपात्र कौन ? इसके लिए कहा है कि जो स्वयं आरंभ-समारंभ नहीं करते। जो न बनाते हैं, न पकाते हैं। वे अपने लिए बनाया हुआ या खरीदा हुआ भी नहीं लेते। ऐसे जो लेने वाले हैं उन्हें देना सुपात्रदान है। ऐसे लेने वाले साक, मात्र ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना के लिए लेते हैं। संयम-यात्रा के निर्वहन के लिए, स्वयं तिरने और दूसरों को तारने के लिए लेते हैं। सुपात्र दान के भी तीन भेद हैं-उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य।

उत्कृष्ट सुपात्रदान में तप साधक अणगार जो दीर्घ तपस्या करते हैं वे माह, दो माह, चार माह के तप के पश्चात् जब भी आवश्यकता अनुभव करते हैं, भिक्षाचरी के लिए निकलते हैं। कोई तपस्वी मुनिराज एक दिन आहार लेकर फिर से तप-साधना में लग जाते हैं। ऐसे तपस्वी अणगार को देना उत्कृष्ट सुपात्रदान है। मध्यम सुपात्र दान है साधु-साध्वी की संयम यात्रा के निर्वहन के लिए देना। सुपात्र दान का तीसरा भेद है-जो श्रमणोपासक

संसार में रहते हुए धर्म को प्रधानता देते हैं, उनको देना। श्रावक को दिया गया दान भी सुपात्र दान में शामिल है। श्रावक, धर्म के कार्य को प्रधानता देने का लक्ष्य रखता है। संघ-समाज में काम करने वाले संस्थाओं को जीवन समर्पित करने वाले अपना घर-बार छोड़कर रहते हैं, उनकी सहायता भी सुपात्रदान में सम्मिलित है। एक सम्यग्दृष्टि व्यक्ति जो देव अरिहंत-गुरु निर्ग्रंथ और दयामय धर्म की श्रद्धा रखता है, वह कमजोर स्थिति में है, उसकी सहायता भी सुपात्रदान की श्रेणी में है।

सुपात्रदान देकर जन्म-मरण का अंत किया जा सकता है। शास्त्र में सुपात्रदान के अनेक दृष्टान्त हैं। राख का धोवन पानी देकर तीर्थङ्कर नाम कर्म बाँधने का दृष्टान्त आपने सुना होगा। उड़द के बाकुले देकर बंधन काटने का दृष्टांत है, वहीं शालिभद्र की बात आपने कई बार सुनी है। संगम को जीवन में पहली बार खीर खाने का मौका मिला, उसे भी वह सुपात्रदान में देता है। आज कई हैं जिनको बढ़िया चीज खाने को मिलती है तो वे कमरे का दरवाजा बंद करके खाते हैं। दूसरों को क्या दें ? घरवालों को देना पसंद नहीं, इसलिये कुछ होटलों में जाकर खाते हैं, खोमचों पर खड़े-खड़े खाते हैं, घर से बाहर खाते हैं। दूसरी ओर संगम को पहली बार खीर मिली, जिसे भी वह संत-मुनिराज को बहाराता है। सुपात्रदान के प्रति शुभ-भावना के कारण उसे शालिभद्र का भव मिला जिसमें अकूत रिद्धि एवं वैराग्य की प्राप्ति हुई।

ज्ञानदान की बात कहूँ तो एक उत्कृष्ट दान है। ज्ञानदान करने वाले स्वयं अपनी निर्जरा तो करते ही हैं, दूसरों में रहा अज्ञान-अंधकार भी नष्ट करते हैं। दान स्वयं के लिए लाभप्रद है वहीं दूसरों को ज्ञान-दान देकर नरक-निगोद से बचाकर उन्हें सत्पथ पर लगाया जा सकता है। ज्ञान-दान स्वयं का तर्पण करता है तो दूसरों के लिए भी तर्पण का निमित्त बनता है।

दान सद्गुण है। चार गुण सहज आते हैं उसके लिए सीख देने की

जरूरत नहीं होती। दान देना सद्गुण है, मीठा बोलना सद्गुण है। शूरता सद्गुण है तो चतुराई भी सद्गुण है। कुछ व्यक्ति ऐसे मिलेंगे जो स्वयं व्यस्त हैं, पर माँगने वाले को देखते ही काम छोड़कर उसे देते हैं। कुछ तो ऐसे भी हो सकते हैं जो खेल को छोड़कर आगत को संतुष्ट कर भेजते हैं। यह देने का गुण बड़ों में ही नहीं, कई बच्चों में भी मिलता है। द्वार पर कोई याचक आया, बच्चा रोटी देने के लिए मचल उठता है, स्वयं खाना छोड़कर देता है।

दान सहज है। सहज रूप में देने वाले भी कई हैं, जिन्होंने सब कुछ दिया है। **'बिना कहे देवे पुरुष, पूरे मन की आस'** यह कहावत कई दानदातओं पर चरितार्थ होती है। मैंने पूज्य गुरुदेव (आचार्य भगवंत श्री हस्तीमलजी म.सा.) के मुखारविंद से सुना है कि रिंया वाले जीवणदासजी मुणोत के 27 स्थलों पर सदाव्रत चलते थे। उनके सदाव्रत में कोई भूखा आ जाये तो उसका न नाम पूछा जाता था, न जाति और न अपना-पराया ही देखा जाता था। मुणोतजी के झाँसी, ग्वालियर, दिल्ली, पटना, पेशावर आदि अनेक नगरों में सदाव्रत चलते थे।

आपमें से कइयों के मुँह से सुना है कि मुद्रास में चोरड़िया-गेलड़ा आदि परिवार मारवाड़ से आने वाले जैन भाइयों के लिए चौका चलाते हैं। आगत जैन भाई के लिए उनका कथन है कि जब तक नौकरी नहीं मिलती या काम-धंधा शुरू नहीं होता आप यहाँ रहे, सामायिक करें और चौके में भोजन करें। आने वाला भाई जैन है, स्वधर्मी है, गाँव से आया है इसलिये उसे सहयोग दिया जाय। नये आदमी को पाँवों पर खड़ा करने के लिए वे रहने का और खाने का इंतजाम तो करते ही, धंधा शुरु करने के लिए मदद भी करते। उनके चिंतन में स्वधर्मी भाई के लिए मदद की बात रहती। वे सोचते कि हमारे सहयोग से हमारा कोई जैन भाई आगे बढ़ता है तो उसे सहयोग दिया जाय।

अलवर के एक भामाशाह थे लाला काशीरामजी। देश-रक्षा के

लिए कोई जवान शहीद हो जाता तो लालाजी उसके घर की परवरिश करते। एक बार लालाजी किसी घर के आगे रास्ते से जा रहे थे। उनके कानों में बुढ़िया का रुदन सुनाई दिया। बुढ़िया का पति शहीद हो गया था, बेटा जेल में था और घर पर कमाने वाला कोई नहीं रहा, इस कारण बुढ़िया का रुदन चल रहा था। लालाजी बुढ़िया के मकान के पिछवाड़े गये और नोहरे में जाकर जवाहरात की एक पोटली जमीन में गाड़ दी। कुछ समय पश्चात् वे बुढ़िया के पास आए और पूछा-''माँजी! आपको क्या कष्ट है? बुढ़िया ने कहा-''बेटा! मेरा पति शहीद हो गया, बेटा जेल में है, मेरे को भी मौका मिले तो मैं भी देश के लिए कुर्बान हो जाना चाहती हूँ अन्यथा घर-गृहस्थी की गाड़ी चलाना मेरे वश की बात नहीं है।''

लालाजी ने कहा-''माँ! देश के लिए कुर्बान होने के लिए कई सपूत मौजूद है। मैं तो आपके पास इसलिए आया कि मुझे कल किसी ने सपने में कहा कि आपके पिछवाड़े में धन गड़ा है। लालाजी के कहने पर नोहरे में खुदाई की गई जिसमें जवाहरात की पोटली निकली। मदद कैसे दी जाय लालाजी ने उदाहरण प्रस्तुत किया।

आपने एक सूक्ति सुनी होगी-**सौ हाथों से सींचिये, हजार हाथों से देते जाइये।** बीकानेर में शंकर के भक्त थे, नाम था-रामरतनजी डागा। घर आने वाला कोई भी क्यों न हो, शंकर भक्त किसी को निराश नहीं करता था। डागाजी के यहाँ संयोगवश एक ब्राह्मण पहुँचा। डागाजी बाड़े में एक पत्थर पर बैठे नहा रहे थे। ब्राह्मण ने कहा-यजमान की जय।

डागाजी ने पूछा-ब्राह्मण देवता क्या बात है?

ब्राह्मण ने कहा-सेठ! मेरी पुत्री बड़ी हो गई है, मेरे पास कुछ नहीं है, शादी कैसे हो?

सेठ के पास कागज-कलम तो थी नहीं, पर पास में एक फूटे मटके का टुकड़ा पड़ा था। कोयला भी दिख पड़ा। सेठ ने कोयले से मटकी के टुकड़े पर कुछ लिखा और कहा-जाओ, मुनीम से ले लो।

मुनीम साहब का मन कच्चा था। मुनीम ने दो आने निकाल कर देने का प्रयास किया तो ब्राह्मण ठीकरी लेकर सेठ के पास पहुँचा। सेठ से बात कही तो सेठ ने एक बिंदी बढ़ा कर दे दी। ब्राह्मण फिर से मुनीम के पास गया। मुनीम आदत से लाचार था अत: फिर लौटा दिया। ब्राह्मण फिर सेठ के पास पहुँचा, सेठ ने एक बिंदी और बढ़ा दी। यह बात उस जमाने की कह रहा हूँ जब एक पाई में पेट भरता था। उस समय के हजार रुपये आज करोड़ रुपये के बराबर हैं कह दूँ तो उसमें कोई अतिशयोक्ति जैसी बात नहीं होगी। सेठ ने कहा-इस बार मुनीम मना कर दे तो तुम वहीं बैठ जाना, मैं आता ही हूँ। ब्राह्मण मुनीम के पास बैठ गया। सेठ के आते ही मुनीम घबराया। सेठ ने एक हजार रुपये निकाल कर ब्राह्मण को दे दिए। मुनीम को घबराहट थी, सेठ को देखकर वह धूजने लगा कि मेरे कारण एक रुपये की राशि एक हजार तक पहुँच गई। सेठ ने कहा-मुनीमजी, आपको घबराने की जरूरत नहीं, महादेव का ऐसा ही हुक्म था। ब्राह्मण के भाग्य में हजार रुपये लिखे थे इससे आपको अपनी शक्ल बिगाड़ने की जरूरत नहीं।

देने वालों के नामों में ऐसे कई नाम हैं। उदयपुर के महाराणा जगतसिंहजी देने में माहिर थे। उन्होंने पच्चीस साल तक राज्य किया। उनके चरणों में एक व्यक्ति पहुँचा। महाराणा जगतसिंहजी गृहीता के माता-पिता का नाम नहीं जानते पर जो आता उसे जरूर देते थे।

राजा भोज की बात आपने सुनी होगी। नीति का कथन है-

अनुकूले विधौ देयं, यत: पूरयिता हरि:।
प्रतिकूले विधौ देयं, यत: सर्वं विनश्यति।

मानव! अगर तेरे भाग्य चमक रहे हैं, दूसरे शब्दों में कहूँ–तेरी अंतराय टूट रही है तो दिये जा। देते रहने से धन घटता नहीं, बढ़ता ही है। अनुकूलता में दे उसका क्या, भाग्य की प्रतिकूलता में भी देते जा। भाग्य की प्रतिकूलता में संपदा वैसे ही नष्ट हो जाएगी। संपदा जा रही है तो देते हुए भी जायेगी और नहीं देगा तो भी रहने वाली नहीं है। मारवाड़ी कहावत है– **''खाओगे दुर्गंध आयेगी, खिलाओगे सुगंध आयेगी।''** चार आदमियों के बीच आप अकेले हलवा खाओ तो लड़ाई होगी, देकर खाओगे तो प्रेम बढ़ेगा।

आप दान की बात सुन रहे हैं। सुनना अच्छा है, पर आप सुनकर ही नहीं रहें, सुनने के साथ देने का लक्ष्य रखकर चलें तो आपको लाभ प्राप्त हो सकेगा। तीन दानों की बात मैं कह गया, दान के अनेक भेद किए जा सकते हैं–समय का भोग देना भी कर्त्तव्यदान है। ज्ञान देना भी दान है। संघसेवी सुश्रावक समय का भोग देकर संघ की प्रवृत्तियों को आगे बढ़ाते हैं, कर्त्तव्य भावना से समय का भोग 'दान' है। सेवा के बलबूते पर संघ संगठित रहता है, प्रगति करता है। ज्ञानदान की महिमा आपको ज्ञात ही है।

जैन परंपरा की तरह अन्य परंपराओं में भी दान की महिमा है। संतोषी परंपरा में कुछ उंछभोजी कहलाते हैं। खेती पक जाने पर जब धान को किसान घर पर ले जाता है तब वहाँ रहा–सहा अनाज इकट्ठा करके पेट भरने वाले उंछभोजी होते हैं। यह एक वृत्ति है। आहार से जीविका चलती है। जो आहार फेंकने लायक है उसे भी काम लेने वाले होते हैं। धन्ना अणगार कैसा आहार करते थे, शायद आपने कभी सुना होगा। वे आहार को 21 बार धोकर प्रयोग में लेते। उंछवृत्ति वाले खेत में फसल कटने के बाद पड़े अनाज के दाने एकत्रित कर जीविका चला लेते। एक उंछभोजी फसल कटने के बाद खेत में दाने चुग रहा था। उधर से घोड़े पर सवार नरेश निकले। नरेश ने देखा तो मन में सम्मान के बजाय घृणा के भाव जागे।

जननी ऐसा मत जणो, भोय पड्यो कण खाय।

मतलब, माँ! ऐसा पुत्र मत जन्मना जो पेट नहीं भर सके। वह फक्कड़ प्रवृत्ति वाला था। जवाब दिया–

छता जोग दु:ख ना हरे, ऐसो ना जणियो माय।

जवाब देने वाले ने कह दिया माँ! ऐसा कंजूस पूत भी मत जन्मना जो हजारों को खिलाने की ताकत रखता है, पर खिलाता किसी को नहीं।

नरेश को यह खयाल नहीं था कि सेर को कभी सवासेर भी मिल जाता है। आज हर व्यक्ति कुछ–न–कुछ दे सकता है। आप तन से, मन से, धन से दे सकते हैं। किसी के पास भले साग–रोटी नहीं है तो भी वह ज्ञानदान कर सकता है। आपने आज जो कुछ भी सुना उसे सम्पर्क में जाने वाले को सुनाने का प्रयास करना। आप किसी को सुनायेंगे, समझायेंगे, प्रेरणा करेंगे यह भी दान की श्रेणि में हो सकेगा। आज हजारों–लाखों पशु कट रहे हैं आप अपनी बात रखें, अनेकानेक संस्थाएँ अपना पक्ष रखें तो अभयदान की दिशा में कुछ हो सकता है। आपने जो कुछ भी पाया है, दीजिये। जो देगा वह मोक्ष–मार्ग की ओर चरण बढ़ा सकेगा।

जोधपुर
6 सितम्बर, 1994

11

ज्ञान प्राप्ति में समय का उपयोग करें

आचारांग सूत्र की सूक्ति का विवेचन करते हुए कल बताया गया कि यह आत्मा अनादिकाल से है और अनंतकाल तक रहने वाला है। छः द्रव्यों में आत्मा को शाश्वत माना गया है। आत्मा अजर है, अमर है, शाश्वत है फिर यह भटकाव क्यों ? आत्मा का भटकाव विभाव के कारण है। विभाव है इसीलिए जन्म-मरण है। विभाव है इसीलिए भव-भ्रमण है। आत्म शब्द का अर्थ किया गया-

अतति पर्यायात्तरम् गच्छति इति आत्मा:

एक गति से दूसरी गति में, एक भव से दूसरे भव में, एक योनि से दूसरी योनि में विभाव के कारण आवागमन है। आत्मा स्वभाव से नित्य है, पर्याय से अनित्य। आत्मा एक पर्याय से दूसरे पर्याय में और एक उपयोग से दूसरे उपयोग में आता-जाता है।

आज कई लोग हैं जो पुनर्जन्म को नहीं मानते। यह विषय आज ही है, ऐसी बात नहीं हैं। सर्वज्ञ-सर्वदर्शी अनंतज्ञान संपन्न तीर्थङ्कर भगवन्त विराजमान थे तब भी पुनर्जन्म की मान्यता और धारणा के लिए प्रश्न खड़े

करने वाले लोग थे। वे पुनर्जन्म के समाधानार्थ विचार-चर्चा करते। पुनर्जन्म की जिज्ञासा आज है, पहले रही और भविष्य में भी रहेगी।

संसार के भोग, इन्द्रियों के विषय और ये जो आमोद-प्रमोद एवं वैभव-विलास के साधन हैं इन्हें छोड़कर, इनसे हटकर, नरनारायण-सी देह को साधना में तपा कर, झुलसा कर, कष्ट देना किसने बताया? परलोक भी है इसे कौन जानता है? कुछ हैं जिनका व्यवहार बतलाया है कि वे परलोक मानने वाले हैं। जन्म-मरण को मानने वाले कई हैं, वे प्राय: परलोक मानने से परहेज नहीं करते।

पुनर्जन्म है इसे तीन तरह से सिद्ध किया जा सकता है। एक श्रुति से, दूसरा युक्ति से और तीसरा स्मृति से। श्रुति से का क्या अभिप्राय? अनंत ज्ञानियों के आगम वचन में आचारांग सूत्र का वाक्य है-

इहमेगेसिं णो सण्णा भवति। तं जहा
पुरत्थिमातो वा दिसातो आगतो अहमंसि.....

शास्त्र स्वयं कथन कर रहा है-एक-एक व्यक्ति को यह ज्ञान नहीं कि वह कौन-सी दिशा से आया है? मेरी आत्मा औपपातिक-जन्मधारण करने वाली है या नहीं? मैं पूर्व जन्म में कौन था? शास्त्र वचनों से यह सिद्ध है कि आत्मा परलोक गमन वाला है। उत्तराध्ययन सूत्र का पहला अध्ययन विनय है। पहले अध्ययन की अंतिम गाथा है-

स देव-गंधव्व-मणुस्सपूइए, चइत्तु देहं मल-पंक-पुव्वयं।
सिद्धे वा हवइ सासए, देवे वा अप्परए मिहिड्ढिए।।

उत्तराध्ययन सूत्र, अ 1/48 गाथा

आचार्य भगवंत (पूज्य गुरुदेव श्री हस्तीमलजी म.सा.) के शब्दों में कहूँ-

सुर–नर–गंधर्वों से पूजित, मलपंक रचित यह तन तजकर।
शाश्वत सिद्धत्त्व को पाता या, लघु कार्य महर्द्धिक देवप्रवर।।

विनीत शिष्य देवों, गंधर्वों और मनुष्यों से पूजित सर्वप्रथम मल–पंक से निर्मित शरीर को छोड़कर या तो शाश्वत सिद्ध होता है अथवा अल्पकर्म–रज वाला महर्द्धिक देव। इस विनय का, ज्ञान का, चारित्र का आचरण करने वाले कई जीव शाश्वत सिद्ध गति को प्राप्त कर गये। यदि परभव नहीं है तो शास्त्र का कथन युक्ति संगत नहीं बैठता। सदाचरण करने वाला, साधना–आराधना में जीवन बिताने वाला या तो कर्म से विमुक्त, सिद्ध–बुद्ध होकर मोक्ष गति को प्राप्त करता है अथवा देवलोक में जाता है। उत्तराध्ययन सूत्र के तीसरे अध्ययन की 17–18 गाथा में कहा है–

खेत्तं वत्थुं हिरण्णं च, पसवो दासपोरुसं।
चत्तारि कामखंधाणि, तत्थ से उववज्जइ।।

मित्तवं णायवं होइ, उच्चागोए य वण्णवं।
अप्पायंके महापण्णे अभिजाए जसो–बले।।

उत्तराध्ययन सूत्र, अ. 3/17–18 गाथा

आचार्य भगवंत की भाषा में कहूँ–

क्षेत्र वास्तु हिरण्य स्वर्ण, पशु दास अंग रक्षक होते।
ये चार जहाँ हो काम–स्कन्ध, उस कुल में वे पैदा होते।।

अच्छे मित्र, जाति उत्तम हो, गोत्र वर्ण भी शुभ पाते।
रोग रहित महाप्रज्ञा यशस्वी, ख्यात कुलीन सबल होते।।

देवलोकों के वे देव अपना आयुष्य पूर्ण होने पर च्युत होते हैं और मनुष्य योनि पाते हैं। चार काम स्कंध और छः प्रकार की ऋद्धिवान देव गति से निकलकर मनुष्य जन्म प्राप्त करते हैं। यह आत्मा अनादिकाल से था।

किसी भी गति की आयु अनंत काल की नहीं। नरक का आयुष्य कम-से-कम दस हजार वर्ष उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम है। तिर्यंच का तीन पल्योपम, कर्मभूमि का लें तो करोड़ पूर्व। इसी तरह मानव की आयु कर्मभूमिज करोड़ पूर्व, अकर्म भूमिज युगलिक का आयु तीन पल्योपम। देव का जघन्य दस हजार वर्ष उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम!

अब कर्मों की स्थिति समझने का प्रयास करें। कर्म का बंध अंतर्मुहूर्त्त में हो सकता है, उत्कृष्ट सत्तर कोटा-कोटि। बीस, तीस, सत्तर कोटाकोटि सागरोपम स्थिति का कर्मबंध करने वाले गत्यांतर-भवांतर नहीं करेंगे तो भोग कहाँ करेंगे? मैंने शास्त्र की बात श्रुति के नाम से रखी है, उससे पूर्व जन्म की बात सिद्ध होती है। जिसने शुभ-कर्म का उपार्जन किया, यहाँ भोग पूरा नहीं कर पाया, अशुभ कर्म का उपार्जन किया वह भी पूरा नहीं कर पाया तो एक जन्म से दूसरे जन्म में कर्म पूरा करना पड़ा। कर्जा लिया है तो उसे पूरा करना ही है। सेठ ने अधिक काम लिया, कर्जा चुका नहीं इसलिये बैल मरकर लड़का बना। लड़के के रूप में कार्य पूरा होने पर वह मरण प्राप्त करता है तब यह कहकर मर रहा है कि अब तेरा-मेरा हिसाब पूरा हुआ।

लेना आसान है, चुकाना मुश्किल। कर्मबंध करना सरल है पर बँधे हुए कर्मों को समभाव में रहकर समाप्त करना सभी के लिए संभव नहीं है। शास्त्र की इस बात से भी पुनर्जन्म का औचित्य समझ में आता है।

पुनर्जन्म के विषय में कई लोगों का कथन है कि पुनर्जन्म है तो हमें पूर्व के भव की यादें क्यों नहीं है। पूर्व के भव की स्मृति नहीं होना सिद्ध करता है कि पुनर्जन्म की बात मात्र कल्पना है। प्रश्न करने वाले ऐसे बहुत हैं। हमें प्रश्न में उलझना नहीं है किन्तु वास्तविकता की तह तक जाना है। मैं आपसे एक बहुत सामान्य-सा प्रश्न कर रहा हूँ-आपने जो यहाँ खाया है वह सब याद है क्या? अगर याद है तो बताओ दो साल पहले ज्ञानपंचमी के दिन आपने

क्या खाया था? दस वर्ष पहले इस समय आप किससे बात कर रहे थे? जिनकी स्मृतियाँ तेज हैं वे एक बार सुन लें तो भूलते नहीं। मैं आपको पूछूँ- कल मैंने कौनसे शास्त्र की कड़ियाँ कही थी? आप माता की कुक्षि में आए, गर्भ की वेदना सही अब आपसे पूछा जाय तो किसे वह वेदना याद है? आप अपने-आपको बुद्धिमान समझते हैं पर शायद ही कोई है जो गर्भावास में उल्टे लटककर जो वेदना सही उसका कथन कर सके। आपको जब इस जन्म का याद नहीं तो पूर्वजन्म की बात कैसे याद रहेगी? आपमें से कोई है जो इस जन्म की बातें बता सके?

कुछ लोगों का तर्क है कि पूर्वजन्म नहीं दिखता इसलिए हम उसे नहीं मानते। अगला भव होगा या नहीं, पिछला भव था या नहीं इस पर भिन्न-भिन्न विचार हो सकते हैं। आप यहाँ है, यह सब मानते हैं। आपके दादाजी थे पूछा जाय, तो आप हाँ में जवाब देंगे। क्या सात पीढ़ी पूर्व में भी कोई था? आप हाँ कर रहे हैं। क्या आपने उनको देखा है? आपने सात पीढ़ी के लोगों को भले ही नहीं देखा किन्तु आप सब मानते हैं। सात पीढ़ी नहीं, पचास-सौ पीढ़ी पहले भी कोई था, पाँच सौ पीढ़ियों के पूर्व भी कोई रहा होगा और पाँच हजार पीढ़ियों के पूर्व भी कोई-न-कोई रहा होगा। यदि देखा है उसे ही मानना इस तर्क को सही समझा जाय तो कईयों ने परदादा को नहीं देखा फिर उन्हें क्यों मानना? पीढ़ियाँ थी इसलिए आप हैं यह स्वयं में एक प्रमाण है। इस सबूत को सहज झुठलाया नहीं जा सकता।

अपने से परिवार है। परिवार से पीढ़ियाँ हैं। यह बात मानने में आती है। एक-दूसरे का एक-दूसरे के प्रति राग है, द्वेष है और प्रेम भी है। एक जीव किसी दूसरे जीव को देखता है, तो देखने के साथ दुश्मनी का भाव पैदा हो सकता है जबकि एक को देखकर प्रेम उमड़ सकता है। एक माँ के दो लड़के हैं। एक उदर से जन्म पाये हैं। एक को गोद में उठाने का मन होता है, दूसरे के हाथ लगाने की भावना तक नहीं बनती। किसी के प्रति अपनत्व है तो

किसी के प्रति घृणा का भाव। माता-पिता एक हैं फिर भी एक-एक जीव के प्रति उनकी भावना अलग-अलग है, यह भी पुनर्जन्म को सिद्ध करता है।

कुछ लोग हैं जो सोचते हैं कि बच्चे सामान्यत: माँ-बाप जैसी प्रकृति के होते हैं किंतु ऐसा एकान्त: नहीं होता। एक पिता ने दीक्षा ग्रहण कर ली परंतु बच्चे की भावना नहीं बनी। पिता धर्मी है, संघ-समाज की सेवा में सक्रिय है तो उसका लड़का धर्मी होगा यह जरूरी नहीं है। मुम्मण की माँ लोभी नहीं थी, मुम्मण लोभी था। अर्जुन की पत्नी ने शायद युद्ध नहीं किया पर अभिमन्यु ने माँ के पेट में रहते चक्रव्यूह के भेदन की कला सीख ली। मारवाड़ में कहावत है कि 'भोली माँ का डाया बेटा, डाही माँ का भोला बेटा।' राजपूतनियाँ प्रकृति से सरल होती है लेकिन उनके बेटे शूरवीर हो सकते हैं। ऐसी कई उक्तियाँ हैं वे सिद्ध कर रही हैं कि आज का जीवन सब कुछ नहीं है। आज के पहले भी कुछ था, आज के बाद भी कुछ रहेगा। श्रुति और युक्ति के संदर्भ को लेकर बहुत कुछ कहा जा सकता है।

स्मृति भी पूर्वजन्म को सिद्ध करने का काम करती है। आज भी कई शास्त्रीय दृष्टांत हैं जो स्मृतियों से पुनर्जन्म की बात सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है। आपने मृगापुत्र की बात सुनी होगी। वह माता से कह रहा है-माँ, तूँ जिन दु:खों की बात कह रही है, वे दु:ख तो कुछ भी नहीं है। एक रात में मेघमुनि का मन डोलायमान हो गया। कल तक माता-पिता समझा रहे थे राज्य पद का प्रलोभन तक दिया गया किन्तु मन में संयम रचा-पचा होने से वह सब कुछ छोड़कर प्रव्रजित हो गया। संयम लेने के बाद पहली रात में मन में चंचलता क्यों? आज संयम के प्रति वह भावना नहीं जो कल तक थी। मेघमुनि ने मन-ही-मन सोचा कल तक जो दूर के डूँगर की तरह सुहावना लग रहा था, आज वही संयम भारी क्यों लग रहा है? मेघमुनि रात के परीषह से विचलित ही नहीं हुए अपितु भंडोपकरण लेकर तीर्थङ्कर भगवंत के श्रीचरणों में पहुँच कर कहा-भगवन्! ये संभालो आपके भंडोपकरण!

भगवान अनंत करुणा के सागर थे। उन्होंने मेघ की स्मृति जगाई। भगवान पूर्व जन्म का हवाला देकर मेघ मुनि को दृष्टान्त सुनाने लगे। मेघ! यादकर, हाथी के भव में एक खरगोश की रक्षा के लिए तू तीन टाँग पर तीन दिन और तीन रात ज्यों का त्यों खड़ा रहा और यहाँ साधु जीवन में एक रात में घबरा गया। तू अपने पूर्वभव को निहार। करुणार्द्र तीर्थङ्कर भगवंत के वचनामृत श्रवण कर मेघमुनि को जाति स्मरण ज्ञान हो जाता है और पूर्व भव को देखकर वे संयम में स्थिर हो जाते हैं। आपने यह दृष्टांत कई बार सुना है।

भगवान ऋषभदेव के जीव ने धन्नासार्थवाह के भव में घृत का दान कर सम्यक्त्व प्राप्त किया। धन्नसार्थवाह के भव से बारह भव हुए और उस जीव ने केवलज्ञान प्राप्त कर लिया। भगवान महावीर ने सत्ताईस भव किए। अरिहंत अरिष्टनमि ने नौ भव किए, ये पूर्व जन्म को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं क्या? एक-एक जीव के असंख्य भव हैं किन्तु सम्यक्त्व प्राप्ति के पश्चात् की गणना शास्त्र में उल्लिखित है। स्मृति जगेगी तो ज्ञान में, चारित्र में, श्रद्धा में कदम बढ़ेंगे।

ज्ञान पंचमी भी यही बात सिद्ध करती है। पिछले जन्म में भवि आचार्य आज कोढ़ि हैं, मूर्ख हैं। बर्धत कुमार राजघराने में जन्मा है, कालकाचार्य तक का वर्णन है पर एक कला सीखने में थक गया। क्यों थका? पहले की गई विराधना ज्ञान प्राप्ति में बाधक है। यही बात गुणमंजरी के लिए भी है। वह भोली है, गूँगी है। आप किसी के ज्ञान में बाधा तो नहीं डाल रहे हैं? कई ज्ञान प्राप्ति में सहयोगी भी बनते हैं। कभी-कभी बाप अपने बेटे से कहता है-मैं नहीं बढ़ पाया, तुम ज्ञान करो, पढ़ो और खूब पढ़ो। एक है जो ज्ञान का महत्त्व नहीं समझता, वह पढ़ते हुए को उठाता है और दूसरे-दूसरे काम करवाता है। आप आज ज्ञान पंचमी के दिन संकल्प करें कि हम किसी को ज्ञान प्राप्ति में बाधा नहीं पहुँचायेंगे।

आपको जन्म-मरण के बंधन काटने हैं, दु:ख, वेदनाएँ और पीड़ाएँ समाप्त करनी हैं तो आपको किसी को ज्ञान प्राप्ति में अंतराय नहीं देनी है। ज्ञान प्राप्ति में अंतराय देने वाला स्वयं का नुकसान करता है। ज्ञान प्राप्ति में अंतराय देने वाला पंचेन्द्रिय से चउरिन्द्रिय बनता है। पाँचों इन्द्रियाँ आचरण से दिखती हैं पर कान है तो भी वह सुन नहीं पाता। नेत्र हैं लेकिन देख नहीं सकता। कुछ बोल नहीं सकते, कुछ देख नहीं सकते, कुछ सुन नहीं सकते।

जिसने पुनर्जन्म को समझा है कहना होगा उसने आत्मा को समझ लिया। आत्म-स्वरूप का जानकार कर्म काटने में पुरुषार्थ कर सकता है। आपको-हमको-सबको कर्म बंधन काटने हैं इसलिए ज्ञान में, दर्शन में और चारित्र में चरण बढ़ाने होंगे। हम अनमोल समय का उपयोग करेंगे तो एक-एक क्षण जिसकी बहुत बड़ी कीमत है, व्यर्थ नहीं जाने देंगे। आप इस कीमती समय को केवल मात्र खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने और ऐश-आराम में पूरा नहीं करें वरन् ज्ञान प्राप्ति में समय का उपयोग करेंगे तो सुख, शांति और आनंद प्राप्त कर सकेंगे।

जोधपुर
7 नवम्बर, 1994

12

आत्मलक्षी बन करें पुरुषार्थ

तीर्थङ्कर भगवान महावीर की अनुपम-अनमोल वाणी में जीवन विकास हेतु एक सूत्र आया-ज्ञान क्रियाभ्यां मोक्षः। अर्थात् ज्ञान और क्रिया मोक्ष-मार्ग के दो महत्त्वपूर्ण तथ्य हैं। ज्ञान और क्रिया को शिक्षा व दीक्षा के नाम से भी कह सकते हैं। ज्ञान जानना है तो क्रिया आचरण है। ज्ञान और क्रिया के संयोग से अनंतकाल से लगे कर्मों का कचरा साफ किया जा सकता है।

ज्ञान लेने वाले भी दो तरह के होते हैं। विनीत भी ज्ञान लेता है तो अविनीत भी शिक्षा ग्रहण करता है। एक सदुपयोग करता है, दूसरा दुरुपयोग। एक बंधन काटता है, दूसरा बंधन गाढ़ करता है। एक भव बंधन टालता है, दूसरा भव-भ्रमण बढ़ाता है।

आपके समक्ष दो रूप रखे जा रहे हैं। संसार के अनंत-अनंत प्राणी ऐसे हैं जो जड़ के प्रभाव में आकर क्रिया करते हैं। वे पराधीनता से, पराये वश में होकर, अपना स्थान छुपाकर अथवा खोकर जीवन यात्रा में आगे बढ़ रहे हैं। तीर्थङ्कर भगवंतों का कथन है-मानव! यदि तूने आत्मा के स्वरूप को समझ लिया है, उसमें रही हुई अनंत शक्ति, अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत

सामर्थ्य की पहचान की है, तो उदय में बहने के बजाय क्षायिक उपशम भाव में प्रयत्न करके चल। उदयभाव अनुश्रोत है, पानी के साथ बहना है, भेड़ चाल है। गिरते हुए को देखकर, दूसरों को विनाश के गर्त में जाते हुए देखकर और वेदना-कष्ट-दु:ख पाते हुए को देखकर भी यह आत्मा उदयभाव के अनुसार चला है। जरूरत है ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् आत्मलक्षी बन, पुरुषार्थ करने की। जरूरत है श्रद्धाभाव बढ़ाने की।

राम और रावण दोनों कला-निधान थे। शिक्षा के लिहाज से शायद कृष्ण से अधिक कंस ने शिक्षा प्राप्त की होगी। विद्यार्जन करने वाले बहुत हैं। साधन की दृष्टि से संभवत: सीता के बजाय सुर्पणखा अधिक संपन्न थी। सीता उस समय वन में थी, उसके पास साधन नहीं थे। रूप परिवर्तित कर लेना, दूसरों को ठग लेना किसी को शीशी में उतार देना, सुर्पणखा को अधिक आता था। दशरथ को संकट की स्थिति में कौशल्या ने जितना सहारा नहीं दिया, उतना कैकेयी ने दिया।

कलाएँ हों, विद्याएँ हों, साक्षरता के रूप में कही जा सकती हैं पर जीवन में जो आचरण होना चाहिये, आत्मलक्षी पुरुषार्थ होना चाहिये वह अगर नहीं है तो विद्या भी निंदा-तिरस्कार को प्राप्त हो सकती है। साक्षर बनना अलग बात है, सरस बनना अलग बात है। अपनी भाषा-भाव से दूसरों को प्रभावित कर लेना एक बात है और अच्छी बात जो कही जा रही है उसे जीवन में उतार लेना दूसरी बात है।

बहुश्रुत अध्ययन उदय में बहने के लिए नहीं है। जड़ के प्रभाव में आकर अपना आत्मधन खोने के लिए नहीं, पुरुषार्थ जगाने के लिए है। पुरुषार्थ करने वालों ने अनंत-अनंत कर्मों का क्षय कर विजयश्री का वरण किया ऐसे एक-दो नहीं, कई-कई लोग हुए हैं। बाँधे हुए कर्मों का भी

संक्रमण होता है। दु:ख देने वाले, पीड़ा पहुँचाने वाले भी यदि अपने भावों में निर्मलता-पवित्रता लाएँ तो कर्मों का वर्तन हो सकता है, संक्रमण किया जा सकता हैं। कर्मों के भी अनेक कारण हैं। बढ़ी हुई स्थितियाँ घटाई जा सकती है। रसघात किया जा सकता है, संक्रमण किया जा सकता है, आने वाली वेदनाएँ कम की जा सकती हैं। आप प्रमोद भाव, मैत्रीभाव, क्षायिक भाव, क्षमोपशम भाव, उपशमभाव में क्या करते हैं?

चेतन का असर जड़ पर होता है। चेतन के कहे अनुसार जड़ क्रिया करता है तब समझना चाहिये आप स्व में स्थित हैं, अपने भाव में रमण कर रहे हैं। जड़ के प्रभाव में आकर क्रिया कर रहे हैं तो समझिये आप उदय भाव में हैं। जड़ के प्रभाव में बहना अथवा पुरुषार्थ करना उदयभाव का लक्षण है।

उदयभाव में अनंत प्राणी हैं। अच्छे-अच्छे ज्ञाता-दृष्टा कहलाने वाले भी उदयभाव में बह जाते हैं। जानते हैं, विश्वास करने की बात कहते हैं, आचरण की चमक धारण करके चलते हैं फिर भी धोखा देते हैं। क्रोध-मान-माया-लोभ-विषय-कषाय की लहर में अच्छे-अच्छे फँस जाते हैं। शास्त्र कह रहा है-मानव! जड़ के प्रभाव में आकर चलने के बजाय अपने आत्मस्वरूप में आत्मलक्षी बन पुरुषार्थ में क्रिया करना सीख ले तो अनंत-अनंत भवों के बंधन ढीले हो सकते हैं। यही बात उत्तराध्ययन सूत्र का 12वाँ अध्ययन कथन करता है। मथुरा नगरी के परम प्रतापी-प्रजावत्सल राजा शंख के जीवन में सत्संग-सेवा और संत-समागम का अवसर आया। उन्होंने वीतराग वाणी श्रवण की और एक बार के उपदेश से उनके जीवन में विरक्ति आ गई। आप भी वीतराग वाणी श्रवण कर रहे हैं। आपको वीतराग वाणी सुनते-सुनते लंबा काल हो गया, चार-चार महिने तक सुनना पुण्य का कारण

तो है ही परंतु आपको अब तक विरक्ति क्यों नहीं आई ? इस पर चिंतन करना चाहिये।

जब तक आप जड़ की पराधीनता में रहेंगे, उत्थान नहीं हो सकता पराधीनता में घर-परिवार का मोह नहीं छूटता। शायद, आप किसी काम के नहीं रहें, चलने-फिरने, उठने-बैठने, देखने-सुनने की आपकी सामर्थ्य समाप्त हो जाय ऐसे समय घर वाले कह सकते हैं-महाराज! इनको ले जाओ। जो स्वयं लकड़ी टेक-टेक कर चल रहा है वह संयम-साधना में कैसे पुरुषार्थ करेगा ? मैं कल कह गया, आज पुन: दोहरा रहा हूँ जब तक उदयभाव में रहोगे तब तक भव-भ्रमण मिटने वाला नहीं है। प्रार्थना करने वाले बोलते हैं-

अनुश्रोत की लहर में, दिन-रात बह रहा हूँ।
दे दिव्य दृष्टि भगवन्, प्रतिश्रोत में लगा दो।।

प्रार्थना करना सरल है। प्रार्थना कोई भी कर सकता है लेकिन आचरण का मौका आए तो कदम बढ़ाने वाले विरले ही मिलते हैं। पीछे कदम खींचने वालों की कहीं कोई कमी नहीं है। जरूरत है-शक्ति और सामर्थ्यानुसार कदम बढ़ाने की। कहने के बजाय करने वालों की महिमा है। आप चाहे स्वाध्यायी हैं अथवा किसी संस्था से जुड़े हुए हैं, करने का मौका आता है तो आपके कदम आगे बढ़ने चाहिये। कहने वाले कई हैं। ऐसा होना चाहिए, वैसा होना चाहिये, यह ठीक है, वह ठीक नहीं कहने वाले बहुत मिल जायेंगे, पर करने को कहा जाय तो····· ?

आप करना चाहो तो सब कुछ हो सकता है। आप ही क्या, पापी से पापी भी यदि चाहे तो वह जन्म-जन्मान्तर के कर्म काटकर मोक्ष मिला सकता है। पर कब ? जब वह जगे और पुरुषार्थ करे। आज जगने का दिन है। जो-जो जगे हैं वे पार हो गये।

राजा शंख के मन में विरक्ति आई, वे दीक्षित हो गये। साधना का मार्ग पकड़ा और पुरुषार्थ से आगे बढ़ गये। साधना के मार्ग में कोई नामवरी से तो कोई देखा-देखी से प्रवेश करता है पर लक्ष्य बनाकर दीक्षित होने वाले विरले ही होते हैं। जो संकल्पबद्ध होते हैं वे अटकते नहीं, भटकते नहीं। शंख मुनिधर्म में प्रव्रजित हो गये और गीतार्थ मुनि बन गये। जो मुनि ज्ञान में, तप में, जप में, सेवा में पुरुषार्थ करता है उसे लब्धि प्राप्त हो सकती है। शंख मुनि भी लब्धि संपन्न अणगार बन गये। उनके भीतर में ऐसी शक्तियाँ-लब्धियाँ उत्पन्न हुई की सर्दी, गर्मी में और गर्मी, सर्दी में तब्दील हो जाय। वैर-विरोध की भावना प्रेम में परिवर्तित हो जाय ऐसा उनकी साधना का बल था। यह चमत्कार न कर्मों का है, न उदयभाव का बल्कि साधना के सतत् पुरुषार्थ से लब्धियाँ प्राप्त हो सकती हैं।

महामुनि शंख विचरण करते-करते हस्तिनापुर पहुँचे। नगर में प्रवेश के साथ एक बड़ी हवेली दिखी, पृच्छा की-शहर में पहुँचने का सुगम-सरल रास्ता कौनसा है? पढ़े-लिखे सोमदेव ब्राह्मण ने हुतवह मार्ग बतला दिया। सोमदत्त ब्राह्मण ऐश्वर्यवान है, संपत्तिशाली और विद्वान् भी है। संपत्ति कई-कई लोगों के पास है। संपत्ति पा लेना और बात है तथा संपत्ति पाकर उसका सदुपयोग करना और बात है। कौन-कितना सदुपयोग कर रहा है? यह देखने योग्य बात है।

हस्तिनापुर नगर का हुतवह मार्ग उष्णपथ है। जिस पथ पर जूते पहन कर चलना कठिन होता है, उस मार्ग पर नंगे पाँव चलना कितना परीषह युक्त है, आप समझ सकते हैं। मार्ग किसी नासमझ या अज्ञानी ने नहीं बताया किंतु सोमदेव नामक पुरोहित ने जो पढ़ा-लिखा था, जानकार था उसने बताया।

आप क्या हैं? आप जानकार हैं या नहीं? आप अपने लड़के को

क्या शिक्षा देते हैं। कई हैं जो कहते हैं–देख, बेटा! मैं तो संसार में फँस गया, पर तू मत फँसना। एक पिता अपने पुत्र को रोज शिक्षा देता है–बेटा! कर्म के उदय के कारण तेरी माँ में और मेरे में रोज लड़ाई होती है, खिच–खिच चलती है, तू–तू, मैं–मैं होती रहती है इसलिए बेटा तू मेरा कहा माने तो शादी मत करना। शादी बर्बादी है यह बात पिता पुत्र को एक–दो बार नहीं, कई–कई बार कहता है। अनेक बार शिक्षा देने के पश्चात् पिता ने पुत्र से पूछा–बता, अब तेरे मानस में मेरी बात जमी है या नहीं?

लड़के ने सरलता से कहा–पिताजी, आपने जो कहा वह मेरे ध्यान में है।

पिता ने पूछा–ठीक है, तू अब शादी तो नहीं करेगा ना?

लड़के ने कहा–मेरा जब लड़का होगा मैं उसे यही बात कहूँगा।

लड़के के उत्तर से आप क्या अर्थ लगाते हैं? मतलब कहना और बात है, करना और बात है। आज आप कहने में आगे रहते हैं। कई नारे लगाते हैं–दीक्षा में लीला लहर है, संसार खारो जहर है। यह नारा ही तो है। यदि खारा होता तो आप यहाँ रहते? नारे जीवन में उतरें तो नारे लगाना ठीक है अन्यथा ऐसे नारों से कुछ भी लाभ नहीं होता।

महाराज शंख को सोमदत्त ने जो मार्ग बताया उस पर वे बढ़ गये। संसार में कई ऐसे मिलेंगे जिन्हें दूसरों को तड़फाने में, कष्ट पहुँचाने में मजा आता है। कई–कई तो कहते भी हैं–इसे राई–रती का भाव मालूम पड़ना चाहिये। साधक की भी परीक्षा लेने वाले हैं। यह कैसा साधक है? इस साधक में सहनशीलता है या नहीं। महाराज शंख को परीक्षा के निमित्त भेज तो दिया पर उस महामुनि की न चाल–ढाल में अंतर है, न विचारों में कोई उधेड़बुन। महाराज समत्वभाव में चल रहे हैं। पीछे–पीछे सोमदत्त ब्राह्मण

ध्यान से देख रहा है कि मुनिश्री मार्ग परिवर्तन करते हैं या नहीं? चलते-चलते उनके विचारों में कोई बदलाव तो नहीं आ रहा है।

तीर्थङ्कर भगवान महावीर चण्डकौशिक की बाम्बी की तरफ जा रहे थे। लोग मना कर रहे हैं-आप उधर मत पधारो। लोगों के आग्रह-अनुरोध के बावजूद प्रभु विषैले विषधर की ओर बढ़ रहे थे ठीक ऐसे ही शंखमुनि हुतवह नाम के उष्णपथ पर शांति के साथ अग्रसर हो रहे थे। पीछे चलने वाले ने देखा मुनिराज पर उष्णता का कोई प्रभाव नहीं। किसी को गलत रास्ते पर चलाना परीक्षा की दृष्टि से भी ठीक नहीं कहा जा सकता। सोमदत्त को मन-ही-मन खयाल आया कि मैंने ऋषि-महात्मा को कष्ट पहुँचाया है। अगर महामुनि मुझ पर टेढ़ी नजर कर दे तो मेरा अनिष्ट हो सकता है। संकट हो या कष्ट-पीड़ा उस समय भगवान याद आते हैं। मारवाड़ी भाषा में कहूँ-''डरता बाबजी केवे।''

आचार्य भगवन्त (पूज्य गुरुदेव श्री हस्तीमलजी म.सा.) जयपुर विराजमान थे। उस समय आठ ग्रह एक साथ हो रहे थे। ग्रहों के एकत्रित होने से कहीं कोई अनिष्ट न हो इस भावना से घर-घर में जाप चालू हो गया, आयंबिल की साधना भी शुरू हो गई और लोग पूजा-पाठ और स्मरण-भजन में लीन हो गये। वह स्मरण-भजन किसलिए? जप-तप का क्या मतलब? आयंबिल क्यों किये जा रहे हैं? साधना-आराधना के जितने भी उपक्रम किए जा रहे थे वे अनिष्ट के निवारणार्थ किए जा रहे थे। अशुभ को काटने के लिए शुभ है। पाप का घड़ा फूटे नहीं इसलिये धर्म है। यह भी उदयमान है, क्षायिक भाव नहीं।

सोमदत्त को पश्चात्ताप हुआ। वह मुनिराज के श्रीचरणों में उपस्थित हो बोला-भगवन्! मैंने आपके लिए बहुत बुरा किया मुझे प्रायश्चित प्रदान

करें। मुनिराज ने कहा–भाई! मेरे मन में आपके प्रति कोई विचार नहीं है। पाप धोने का एक ही मार्ग है, पाप छोड़ दें। गंदगी से बचना है तो उस रास्ते से होकर न जाएँ। ऐसे कई–कई दृष्टांत रखे जा सकते हैं। परदेशी के लिए कहा जाता है कि उसके हाथ खून से सने थे। आत्मा और शरीर एक मानने वाला राजा परदेशी बदला और एक भव करके मोक्ष गया। आपने राजा परदेशी का कथानक कई बार सुना है इसलिए उसे पुनः दोहराना उचित नहीं है लेकिन आप इतना जरूर समझ लें कि अशुभ की स्थितियाँ घटाई जा सकती हैं। भूख मिटाई जा सकती है, प्यास यदि है तो वह भी दूर की जा सकती है, ठीक ऐसे ही कर्म भी काटे जा सकते हैं।

आप प्रमाद कम करें, कषाय घटायें और आत्म विकास में तत्पर बनें। ज्ञान का सार विरति है। आप उदय में चलने के बजाय उपशम में और आत्म–विकास में पुरुषार्थ करें, इसी मंगल मनीषा के साथ·····

जोधपुर
10 नवम्बर, 1994

13

अहिंसा आचरण में उतरे

भारतीय संस्कृति अहिंसा की संस्कृति है। करुणा दया की संस्कृति है। यहाँ की प्रत्येक वृत्ति में हर एक प्रवृत्ति में, जीवन की हर गति में दया, करुणा और अहिंसा समाहित है। क्या खाना, क्या पीना, क्या रहना और जीवन चलाने तक की वृत्ति में यहाँ अहिंसा का समावेश है। कम-से-कम आरंभ से किस तरह रहा जा सकता है, अधिकतम हिंसा बचाकर जीवन कैसे चलाया जा सकता है और अपने आपको बचाने के साथ प्राणी मात्र का रक्षण कैसे किया जा सकता है? भारतीय संस्कृति में इस प्रकार के चिंतन की भावना रही हुई है। यहाँ के लोगों ने स्वयं अतृप्त रहकर दूसरों को तृप्त किया है, अपना सब कुछ लुटाकर दूसरों को सुखी करने का प्रयास किया है, अपना जीवन देकर भी दूसरों के जीवन-रक्षण का उपाय किया है। गरीब ही गरीब का दुःख समझ सकता है, दुःखी ही दूसरे का दुःख मिटाने का उपाय कर सकता है, ऐसी बात एक तरफा नहीं है। यहाँ के शासकों ने, वैभव-रिद्धि के भंडार वालों ने दूसरों को देकर संस्कृति को समझाया है।

श्रावक पूनिया जन्मजात बारह आने की पूँजी वाला नहीं था। कहते हैं-वह धनपति था, समृद्धिशाली था लेकिन सत्संगति से जीवन मोड़कर,

दीन-दु:खियों को देकर, स्वयं पूणी से निर्वहन करने वाला बना। पुराणों में राजा आप्तिदेव का नाम आता है। एक, दो, दस दिन नहीं, अड़तालीस दिन तक अन्न जल की कमी के कारण दूसरों को खिलाकर खाना यह उस राजेश्वरी की दया-करुणा की बात है। कहते हैं अड़तालीस दिन बाद खाने को बैठा इस बीच एक आवाज आई-मैं तीन दिन से भूखा हूँ, राजा ने अपने पास जो भी था वह उस भूखे को दे दिया। यह थी भारतीय संस्कृति। यह था करुणा प्रधान जीवन, सेवा की भावना का आदर्श। समर्थ होते हुए भी जो मदद नहीं करता उसका क्या अर्थ? राम दयालु बने। उन्होंने पक्षी की रक्षा की। कृष्ण दयालु बने। गोरक्षा के कारण लोक कृष्ण को गोपाल के नाम से पुकारने लगे। बुद्ध दयालु बने। मैं राम, कृष्ण या बुद्ध-महावीर की दयालुता का क्या वर्णन करूँ एक हाथी दयालु बनता है। दावानल के समय खाज खुजलाने के लिए हाथी ने टाँग उठाई, खाली जगह देखकर एक खरगोश उस जगह पर आ गया। हाथी ने पाँव नीचा नहीं किया। खरगोश की रक्षा के लिए स्वयं के प्राणों का संकट सहन कर लिया लेकिन शरण में आए छोटे जीव को कष्ट नहीं पहुँचाया इसीलिए भारत में अहिंसा परमोधर्म का घोष सुनाई पड़ता है। अहिंसा को हर धर्म, हर पंथ, हर मत में स्थान दिया गया है। अहिंसा सर्वमान्य सिद्धांत के रूप में मान्य है।

आज क्या स्थिति है? उस पर भी हमें चिंतन करना है। सम्मेलन बहुत होते हैं, लोगों की भीड़ भी बहुत जमा होती है, आने वाले दूर-दराज से आते हैं पर किसलिए आते हैं? शायद, यह बात मेरे दिगाम में नहीं आ रही है। सम्मेलन के नाम से आए, खाए-पीये, मिले और चल दिये। सम्मेलन में विचार श्रवण के बजाय घूमने वाले सैर-सपाटे में समय लगाने में संकोच नहीं करते।

अहिंसा के इस रूप को लेकर आज देश-देश नहीं, प्रांत-प्रांत ही नहीं, घर-घर में अलख जगानी चाहिये। स्वयं हिंसा नहीं करना एक रूप है और आर्त्त को, पीड़ित को दु:खी को दु:ख से हटाकर रक्षा करना अहिंसा का क्रियात्मक रूप है। एक संत भी एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक किसी जीव को पीड़ा नहीं पहुँचाने का संकल्प लेकर चलता है। वह सकारात्मक अहिंसा का पालन करने के लिए ही उपदेश करता है। उसकी क्रिया से बचाने की भावना है, वाणी में रक्षात्मक उपदेश देने की तड़प है, मन में नित्य नये चिंतन के माध्यम से बात रखने का प्रयास है।

जरूरत है अहिंसा को क्रियान्वित करने की। आज जैसे धन को आदर दिया जा रहा है उसके बजाय अहिंसा-अहिंसक को सम्मान दिया जाना चाहिये। संघ में ऐसे दयानिधान करुणार्द्र अधिकारी बनें, राज्य में भी उन्हें पद मिले, जो भारतीय संस्कृति के अनुकूल चिंतन करने वाले हों। आज भारतीय संस्कृति का चिंतन करने वाले कितने हैं जो स्वार्थवाद के पोषक कितने हैं? संसार के जीव मात्र में आज स्वार्थवाद घुसा हुआ है ऐसा कहूँ तो उसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है। सामने वाला सज्जन है या दुर्जन यह देखने की बजाय आपका जहाँ स्वार्थ पूरा होता है तो आप आँख मूँदकर चलने को तैयार हो जाते हैं। स्वार्थ की पूर्ति नहीं हो रही है तो वहाँ सज्जन की सहायता के लिए भी कोई तैयार नहीं होता। जरूरत है देश में बढ़ने वाले हिंसात्मक प्रयोगों को बंद करने के लिए एकजुटता की और जरूरत है जुड़कर प्रयास करने की।

कल एक भाई आया था। कहने लगा-महाराज! न्यायाधिपति ने अपने फैसले में कुछ शब्द लिखे। ''एक समय था जब भारत से दया, करुणा, मित्रता दूसरे-दूसरे देशों के लोग सीखते थे। पहले सद्गुणों का मनो निर्यात होता था, आज क्रूरता निर्यात होती है। एक समय था मानव पशु-पक्षियों के लिए अपने प्राण देता था। आज.....?'' आज व्यर्थ के

अर्थ को संग्रह करने में अमानुषिक-राक्षसी व्यवहार सामान्य मानव नहीं, देश के अधिकारी कर रहे हैं। निर्यात में आज जिन वस्तुओं की बहुलता है, उनमें प्राणियों के अंग हैं, मांस है और हिंसाजन्य पदार्थ हैं। चमड़ा, मांस, खून और जिंदे-मरे पशु-पक्षी निर्यात हो रहे हैं।

आज व्यक्ति को करुणा-दयादृष्टि से जगने-जगाने की जरूरत है। आचार्य भगवंत युवाओं को देखकर एक शेर कहा करते थे-

किस काम की नदी वह, जिसमें नहीं रवानी।
जो जोश ही न हो तो, किस काम की जवानी।।

युवा पीढ़ी में जोश होना चाहिये। वह जोश कहाँ है? जोश में युवा क्या कर रहा है? जोश-जोश में युवा, शक्ति का प्रदर्शन करता है, तोड़-फोड़ करता है, देश की संपत्ति नष्ट करने में भी संकोच नहीं करता। स्थान-स्थान पर हड़तालें, मार्ग अवरुद्ध करना और नारे लगाना ही मानो उनका काम रह गया है। रचनात्मक कार्यों में गति नहीं के बराबर है।

आज जरूरत है युवा शक्ति संगठित होकर सेवा करे। जीव रक्षण में योगदान करे। अभय-दान, सुपात्र दान, ज्ञान दान की सेवा में समर्पित रहकर आदर्श उपस्थित करे। प्रत्येक अहिंसक अपने जीवन में अहिंसा को उतारने का प्रयास करे। आज हिंसा में योगदान है उसे गिनाने की जरूरत नहीं है।

हिंसा चाहे खाने-पीने में हो, पहनने में हो, या चाहे उपयोग में लाने वाली वस्तुओं के लिए हो हिंसा, हिंसा है। आप अपने गौरवशाली अतीत को देखें, अपने बुजुर्गों के चिंतन को देखें उन्होंने हिंसात्मक धंधे के बजाय अहिंसक धंधा अपनाया। हिंसाजन्य वस्त्रों के बजाय अहिंसक वस्त्रों का व्यापार किया। दूसरे प्राणियों की पीड़ा के भागीदार नहीं बनें। आज रेशम एवं कृत्रिम वस्त्र का चलन बढ़ रहा है। रेशम की एक साड़ी में हजारों-हजार

जीवों की घात होती है। पुराने जमाने में लखपति-करोड़पति ही नहीं, अरबपति भी जिनके चालीस-चालीस हजार गायें थी वे भी मात्र दो-चार सीमित वस्त्र रखते। वस्त्र भी कपास से बने होते। आज अनर्थकारी संग्रह बढ़ रहा है, हिंसाजन्य वस्त्रों की भरमार बढ़ रही है। नारे अहिंसा के लगाने वाले भी वस्त्राभूषण कैसे पहन रहे हैं, विचार करने की जरूरत है।

हम गाँव-गाँव भ्रमण करते हैं। पूज्य गुरुदेव के पावन श्रीचरणों में विचरण करते हुए हमने सुना है कि आज जैन लोगों ने हमारा खाना-पीना महँगा कर दिया। जिन जातियों में शराब-मांस का प्रचलन था, वे आज ऊपर उठ रही हैं और जो शराब-माँस को छूने से परहेज करते थे, आज बेधड़क उपयोग कर रहे हैं।

आज घर-घर में दुरुपयोग का वातावरण है। पानी का कितना दुरुपयोग हो रहा है ? एक सेठ ने अपनी पुत्रवधू को इसलिये टोक दिया क्योंकि उसने दो घूँट पानी पीने के बाद नाली में डाल दिया। पानी पीना उपयोग है, व्यर्थ नाली में बहाना दुरुपयोग। घी से महँगा पानी है। पुत्रवधू ने केवल दो घूँट पानी नाली में डाला बात छोटी थी, पर आज लोगों का एक तरह का स्वभाव-सा हो गया कि वे खायेंगे, तो पीछे कुछ बचाकर छोड़ेंगे। पीयेंगे तो भी एक-दो घूँट गिलास में छोड़ेंगे। वे छोड़ना शान समझते हैं। हम भूखे थोड़े ही हैं, जो पूरा चटकर जायें। पूरा खाने वाला, पीने वाला भीखमंगा होता है यह बात कई लोगों के मन में घर कर गई है। एक-एक थाली में अच्छे-अच्छे पदार्थ झूठे मिल सकते हैं, चाहे वह घर हो, समाज हो, या संघ हो। लोग संपन्नता दिखाना चाहते हैं।

एक समय था जब बचपन में नानीजी कहा करती थी-बेटा! झूठा नहीं छोड़ना। वे थाली घोलकर पीने की बात कहती तो बच्चे थाली घोलकर पी जाते। संस्कार के लिए बुजुर्ग कहते लेकिन आज क्या स्थिति है ? आदर्श

के रूप में अहिंसा की बात करने वाले घरों में बहिनें रेशमी साड़ियाँ ओढ़ती हैं, तो उनका कहना कितना सार्थक है ? बहिनें धर्म प्रचार में जाती हैं, उनके पति यदि शराब पी रहे हों तो कैसा प्रचार ?

जब तक हम अपने-आप पर, घर पर, अपने परिवार पर इस बात को समझा नहीं पायें तब तक अहिंसा जीवन में नहीं आयेगी। तीर्थङ्कर भगवान महावीर तो कह रहे हैं- जिसके जीवन-व्यवहार में अहिंसा आ गई उसके जीवन में सारे धर्म आ गये। जैन दिवाकर श्री चौथमलजी म.सा. का कथन था, जिस घट में दया बैठ गई, उसमें सारे देवता और सद्गुण निवास कर जायेंगे। सारे सद्गुण हैं लेकिन दुर्गण एक भी है तो····· ?

जीवन में धर्म को अपनाने की जरूरत है। धर्म भी एक कला है। आज कलाओं का साम्राज्य चल रहा है। हर क्रिया में कला है। कपड़े भी कलात्मक हैं, खाना बनाना भी कलात्मक हो गया है। रहने का मकान भी कलात्मक है। शास्त्र कह रहा है-

''सव्वा कला धम्म कला जाणेहि''

संसार में कलाएँ लोकरंजन-जीविका निर्वहन का साधन हो सकती है। इलायची कुमार सुनाता है कि एक नर्तक सात घड़े इस हाथ में, सात घड़े उस हाथ में, सात माथे पर और वह भी डोरी पर नाच करता है। ऐसा नृत्य देखने वाले दंग रह जाते हैं, दाँतों तले अंगुली दबाते हैं।

बीकानेर नरेश द्वारा 1993 में सिल्वर जुबली मनाने के प्रसंग पर नाचने वालों को बुलाया गया। नृत्यकला में माहिर ऐसे नर्तक थे, जो पाटे पर नाचते-नाचते सरसों के ढेर पर नाचने लग गये। विशेषता यह कि सरसों के ढेर पर नाचते हुए सरसों का एक दाना खिसक कैसे जाय ? मैं इससे आगे बढ़ूँ। हमारे यहाँ स्थूलिभद्र की प्रेरणा से धर्म स्वीकार करने वाली कोशा के

लिए कहा जाता है कि वह सरसों के ढेर पर सुईयों की नोंके ऊपर करके नाचती थी, लेकिन सरसों का दाना नहीं हिलता। इस कला से एवं रूप से आकर्षित होकर तीरंदाज सुकेतु आता है, और एक बाण चलाकर उसकी सीध में आये, पत्ते-फूल सब गिरा देता है और दूसरे बाण से फूल को बींधकर बाणों से बाणों की रस्सी बनाकर बिना जमीन पर गिराये उस फूल को अपने हाथ में ले लेता है। उस कला को देखकर लोगों के मुँह से निकला हमने ऐसा तीरंदाज कभी नहीं देखा। कोशा ने नृत्य किया सुई के अग्र भाग पर, सरसों के ढ़ेर पर। सुकेतु ने कहा-न तेरी कला में दम है, न मेरी कला में। कला स्थूलिभद्र की है जो बारह वर्ष मेरे पास रहा लेकिन उसने विकार से कभी आँख उठाकर नहीं देखा। वह ब्रह्मचारी स्थूलिभद्र कलाकार है। मेघरथ कलावान है, जो कबतूर के पीछे अपना शरीर त्याग देता है। आप भी कला सीखना चाहते होंगे।

'सव्वा कला धम्मकला जाणेहि।' सब कलाएँ धर्मकला के आगे गौण हैं। युवक श्रेष्ठ मार्ग स्वीकार करना चाहता है, आगे बढ़ना चाहता है तो उसे अहिंसा-सत्य-शील-क्षमा की कला को ग्रहण करना चाहिये। आप अपने आपको धर्म के प्रति समर्पित कीजिये। संसारी कलाओं को जानने वाले कई हैं, नाचने-कूदने वालों की कमी नहीं है लेकिन संसारी कलाओं में कोई श्रेष्ठता नहीं है। प्रकृति से सुंदर कहलाने वाले मोर, जिसके नृत्य से मनमयूर नाच उठता है ऐसे प्राणी को मारने वाले भी हैं। आज तो जगह-जगह बुचड़खाने चल रहे हैं, हिंसा का नंगा नृत्य हो रहा है ऐसे समय में अहिंसा की जरूरत है।

संसार की कलाएँ तारने में सहायक नहीं हैं। ये कलाएँ डूबा सकती हैं। जरूरत धर्म की कला जानने-समझने और आचरण में उतारने की है। आप धर्म कला से जुड़ें। व्यक्ति-व्यक्ति से समूह बनता है।

बूंद-बूंद से सागर बनता है। इसी तरह व्यक्ति-व्यक्ति धर्म का आचरण कर अपने को, समाज को, राष्ट्र को उठा सकता है। कच्चे सूत के धागे को तोड़ने में कितना समय लगता है? वही धागा यदि रस्सी के रूप में गूँथ दिया जाय, तो हाथी तक को बाँधा जा सकता है। सूत के धागे में बल की जरूरत नहीं होती लेकिन रस्से को बल लगाकर भी तोड़ना चाहें तो टूटता नहीं। आप एक-एक व्यक्ति एक-दूसरे के साथ जुड़कर संगठित हो सकते हैं। जहाँ जुड़ाव है वहाँ मजबूती है। कच्चे धागे को सहजता से तोड़ दिया जाता है, वहीं रस्सा तोड़ना कठिन हो जाता है।

अहिंसा-सत्य-शील-क्षमा का संगठित बल समाज में सुधार ला सकता है। आप सब जैन हैं। आपके क्रियाकाण्ड अलग-अलग हो सकते हैं, लेकिन अहिंसा का स्वरूप एक-सा है। लोग जाति को, रंग-रूप को, वेशभूषा को भुलाकर एक झंडे के नीचे आ सकते हैं, तो वह है अहिंसा। जरूरत है अहिंसक लोगों को आगे लाने की। जरूरत है अहिंसा सिद्धांत से समस्या के समाधान की। रतिदेव के शब्द याद कीजिये-मैं स्वर्ग नहीं चाहता, मैं मोक्ष नहीं चाहता, मेरी कामना है कि मैं रहते हुए दु:खियों के दु:ख दूर करूँ। यही भावना आज आपको भानी है।

आप दयालु हैं, करूणार्द्र हैं, अहिंसक हैं तो एक संगठन बनाईये। जहाँ भी हिंसा होती है वहाँ प्रतिकार कीजिये। आज जरूरत है अहिंसा सिद्धांत को स्वीकार करके आगे बढ़ा जाय। जिस दिन इस लक्ष्य से नगर के, समाज के, देश के लोग आगे बढ़ेंगे वे हर मंजिल पर आगे बढ़ सकेंगे। खुद तिरने के साथ दूसरों को तारने में सहायक बनेंगे।

जोधपुर

13 नवम्बर, 1994

14

बुराई को जड़ मूल से काटें

तीर्थङ्कर भगवान महावीर ने अपनी अंतिम अनमोल वाणी में बंधन के हेतु हेय तत्त्वों को छोड़ने की प्रेरणा प्रदान की है। उसमें सबसे पहले दृष्टि शुद्ध करने की बात कही है। बंधन का बड़ा कारण विपरीत समझ है। यदि सारे बंधनों का मूल कारण विपरीत समझ कह दिया जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं है। प्रत्येक काल में, प्रत्येक क्षण में, धर्म-अधर्म, पतन-विकास, गिरने और चढ़ने का मार्ग रहा हुआ है। न कोई ऐसा काल आया, न आयेगा जिसमें मात्र धर्मी हैं, अधर्मी नहीं। ऐसा भी कोई समय नहीं रहा जिसमें मात्र अधर्मी रहे, धर्मी नहीं। हर काल में धर्मी रहे तो अधर्मी भी रहे। हमें क्या लेना है, यह दृष्टि की पवित्रता से आता है। छाजला बनने की बजाय चालनी बनने की बात कही जाती है। मारवाड़ी उक्ति है-एक सार छोड़ता है, दूसरो रोकता है। एक असार छोड़ता है, सार रोके रखता है। असार पाप है। असार प्रमाद है। विकृति में सराबोर करने वाला कषाय है। अनंत काल से यह जीव था, आज भी है। यदि दृष्टि परिवर्तित हो जाय तो अवगुण छूटते जायेंगे, गुण ग्रहण होते जायेंगे। हेय हटता जायेगा, उपादेय उपयोग में आता जायेगा। इसीलिए तीर्थङ्कर भगवंतों ने अव्रत, प्रमाद और कषाय के पहले मिथ्यात्व हटाने का नम्बर रखा।

सम्यग्दर्शन आना चाहिये। सम्यग्दर्श आ गया तो सब आ जायेगा। आपका कहिये-मेरा कहिये अनंतकाल से भटकने का एकमात्र कारण है तो वह है विपरीत दृष्टि। कहना अलग बात है, समझ लेना भी अलग बात है पर जीवन में उतार लेना दूसरी बात है। कहने, सुनने, समझने में श्रेष्ठ मार्ग है जीवन में उतारना। समझने की दृष्टि से राग खराब है, द्वेष खराब है, पाप खराब है, हिंसा खराब है, परिग्रह खराब है ऐसा सभी समझ रहे हैं। बुद्धि की दृष्टि से यह बात सबके जमी हुई है। जिस दिन यह तत्त्व हृदय में जम जायेगा उस दिन कहना, सुनना, समझना सारा सार्थक हो जायेगा। जब तक यह बात हृदय में नहीं उतरती, तब तक व्यवहार जगत् में सम्यग्दृष्टि श्रावक, साधक, धर्मी कुछ भी कहला लें आत्मा का कार्य सरा नहीं और सरने वाला नहीं। भगवान महावीर ने फरमाया है कि हाड़ और हाड़ की मिंजी में जमा हुआ विश्वास, श्रद्धा, हेय-ज्ञेय के प्रति ज्ञान जिस किसी में है उसके प्रत्येक व्यवहार में अंतर आ जायेगा। जीवन की हर क्रिया वह चाहे चलना हो, बैठना हो, उठना हो, बोलना या चिंतन करना हो यदि दृष्टि सम्यक् है, तो पाप कर्म का उतना बंधन नहीं होता जितना मिथ्या दृष्टि का होता है।

कभी साधक बनने के पश्चात् भी मन में विचार आता है-मैं ऊँचा हूँ, अमुक नीचा है। मैं बड़ा हूँ, वह हीन है। 12वें अध्ययन में इसी का विश्लेषण किया जा रहा है। पुरोहित सोमदेव एक ज्ञानी के, तपस्वी के, लब्धि संपन्न अणगार के शिष्यत्त्व को स्वीकार करके भी अपने-आपको बड़ा मानकर चल रहा है। जाति से चाहे कोई बड़ा है या छोटा है, खानदान से या कुल से ऊँचा या नीचा नहीं होता। साधक बनने के बाद कुल का अहंकार भी साधना के लिए बाधक है। रत्नाकर पच्चीसी की तरह आचार्य देव ने आलोचना पाठ में कहा-न जाने कितने वीतराग वाणी से, ध्यान से, साधना से अहंकार को धोने का प्रयास करते हैं, फिर भी वह धुलता नहीं, नतीजन स्वरूप संत जीवन स्वीकार कर लेने के बाद भी स्वपाक कुल में उत्पन्न होते हैं। शास्त्र का मूल पाठ है-

सोवाग कुल–संभूओ, गुणत्तरधरो मुणी
हरिएसबलो णाम, आसी भिक्खू जिइंदिओ ।।

आचार्य भगवंत के शब्दों में कहूँ–

चांडालवंश में था उद्भव, ज्ञानादि श्रेष्ठ गुण के धारी
हरिकेशीबल नाम भिक्षु, थे विजितेन्द्रिय संयमधारी ।।

कहते हैं–गंगा के तट पर रहने वाले बलकोट्ट नामक चांडाल की पत्नी गौरी की कुक्षि में जब सोमदेव पुरोहित के जीव ने प्रवेश किया तो उसे स्वप्न आया–फलयुक्त मंजरीयुक्त आम्रवृक्ष का। एक ओर पुण्यशालीनता की बात कही जा रही है, वहीं व्यवहार बिल्कुल विपरीत है। काला कलूटा शरीर, द्रोह–वैमनस्य युक्त जीवन। शायद, व्यवहार को देखकर अविश्वास हो जाय। कोई भ्रम था जो मैंने स्वप्न देखा। खयाल आया कि स्वप्न काल्पनिक था पर कोई साधक बालपन से अविनीत था। वह बात–बात में लड़ाई कर लेना, माता–पिता के समझाने पर उनका आदर–सम्मान नहीं होना ये सब विपरीतताएँ इसलिए लगती हैं–योग से शुभ संक्रमित होकर अशुभ हो जाती है। अशुभ शुभ हो जाती है। मारने–काटने वाला परदेशी भी बिना दु:ख पाये मुक्ति प्राप्त करता है। आदमी जीवन में कर्मबंध काटकर भी अशुभ का उदय है, तो भोगता है।

बसंत का महोत्सव आया। राजा, श्रेष्ठी और अनेक कुल वाले मानवों के साथ बालक भी खेल–कूद का कार्यक्रम लेकर चले पर हरिकेश को अलग बैठा दिया। तुम साथ नहीं खेल सकते। पूछा क्यों ? तो कहा तुम्हें बोलने का भान नहीं है। हरिकेश का चिंतन चला–सब खेल रहे हैं, मुझे मना क्यों किया जा रहा है ? अवस्था के साथ आत्मविकास का कोई मेल नहीं है। कोई जन्मजात भी युवा हो सकता है, तो कोई अवस्था पा लेने पर भी बचपन तुल्य हो सकता है। ज्ञान के विकास का संबंध अवस्था के साथ नहीं चल

सकता। एक साधु अलग बैठकर चिंतन में चल रहा है, इस बीच बगीचे के उस हिस्से में एक सर्प निकला। जिसने भी देखा, पीछे हट गया। क्यों? तो देखने के साथ समझ में आ गया कि यह सर्प डस सकता है। सर्प को जान लेवा बताने वाले उस बात पर विचार तक नहीं करते कि यह जान लेवा है या आदमी? पशु बिना सताये नुकसान नहीं करता। सर्प जैसा जानवर भी डरता है, वह डर के मारे कभी किसी को काट सकता है। हाँ, कभी किसी के पूर्वकृत कर्म है, बैरानुबंध है वह बात तो अलग है वरना क्रूर से क्रूर प्राणी अपनी मस्त में रहता है, दूसरों को प्राय: नुकसान नहीं पहुँचाता।

क्रूर कौन? बिना सताये, मारने वाला कौन? जानवर या आदमी? इस धरती पर रहने और चलने का जैसे आदमी को अधिकार है वैसे ही चाहे सर्प हो, बिच्छू हो, शेर या चीता हो सब चलते-फिरते हैं। आचार्य भगवंत (पूज्य गुरुदेव श्री हस्तीमलजी म.सा.) ने एक बार फरमाया-जल में अनेक प्रकार के विरोधी जानवर विचरण करते हैं, बिना भूख के कोई किसी को न तो सताता है, न मारता ही है, पर मानव एक ऐसा प्राणी है जिसे भूख नहीं भी है तो भी वह जानवरों की हत्या करने में विचार तक नहीं करता जीव-जंतुओं को बिना मतलब मारने से डरता तक नहीं। अप्रयोजन हिंसा जितनी मनुष्य करता है, दूसरे-दूसरे जानवर उतनी हिंसा नहीं करते। ज्यादा हिंसा करने वाला मनुष्य श्रेष्ठ कैसे? कैसे है वह बुद्धिमान? कैसे कहें मानव को विचारवान?

आपके मन में चिंतन चले या नहीं, हरिकेश के मन में चिंतन चला। उसने साँप को मारते देखा तो मन-ही-मन हरिकेश का संकल्प-विकल्प चलने लगा। इस बीच एक दुमुही निकली। दुमुही को मारवाड़ में बोगी कहते हैं। दुमुही छ: महिने तक एक मुँह से फिर छ: महिने दूसरे मुँह से चलती है, कुछ लोगों का ऐसा कथन भी है। दुमुही के निकलने पर वहाँ जमा लोगों में से किसी ने कोई ध्यान नहीं दिया। दिखने में जैसा साँप है वैसी दुमुही है, फिर दोनों के व्यवहार में भेद क्यों? हरिकेश चिंतन करने लगा-साँप को लोग

भगाना चाहते हैं, दुमुही के पास से निकलने पर भी कोई डर नहीं, उसे कोई भगाता भी नहीं। चिंतन करते-करते समय में आ गया कि साँप विष वाला है, दुमुही विषहीन है।

आप रोज सुनते है। सुनने वाले बहुत लोग हैं वे सुन लेंगे पर सुनने वाले जीवन में कितना उतारते हैं। जीवन में उतारने वाले विरले हैं। आप करीब चार माह से बराबर सुन रहे हैं इस अवधि में न जाने कितने-कितने सूत्र सुने हैं, अच्छी-अच्छी शास्त्रीय गाथाएँ सुनी हैं, जीवन-निर्माण में सहायक सुभाषित वचन सुने हैं, खूब सुना है, पर कल्याण कब होगा ?

आप जानते हैं विषय वाला सर्प मारा जाता है, निर्विष दुमुही से किसी को कोई अड़चन नहीं। सैंकड़ों बच्चे खेल रहे हैं, किन्तु हरिकेश को नहीं खिला रहे हैं। क्यों ? मेरी बोली में विष है, मैं लड़ता हूँ-झगड़ता हूँ, अवगुण और दोष प्रकट करता हूँ इसलिए मुझे अलग कर दिया है। मैं अपने स्वभाव को बदल दूँ तो····· ? मैं बिना बुलाये नहीं बोलूँ तो लोग मुझे पूछेंगे। चिंतन चला कि मेरे कलुषित विचार, कलहकारी वचन और मेरा व्यवहार शायद उन्हें पसंद नहीं, इसलिए वह वहाँ से चल दिया और संत की संगति में पहुँच गया।

संत चरण में पहुँचकर जिज्ञासा रखी कि क्या मैं साधु बन सकता हूँ ? अर्जुनमाली भी जब सावचेत हो गया तो सेठ सुदर्शन से पूछा-क्या मैं भी भगवान महावीर के समवशरण में चल सकता हूँ ? सेठ सुदर्शन के हाँ करने पर अर्जुन भगवान के चरणों में पहुँचा और जीवन समर्पित कर दिया। आज कई सुनने वाले हैं, कई समझने वाले भी हैं लेकिन बुराई को जड़ मूल से काटने वाले विरले है। शास्त्र में वर्णन आता है-राजा-महाराजा, सेठ-साहूकार जिस पथ पर आगे बढ़ते हैं, चांडाल कुल में जन्म लेने वाला हरिकेश भी बढ़ सकता है। श्रेष्ठ गुणों को हर व्यक्ति धारण कर सकता है। साधक बनने में किसी, जिसको एक इन्द्रिय तक का संयम नहीं था, वह जितेन्द्रिय बन सकता

है। साधना का मार्ग सबके लिए खुला है। साधक के लिए आपने सुना होगा कि वह यदि सत्य, हित और मित बोलता है तो बोलते हुए भी एक प्रकार से मौनी है। जो हित-मित और सत्य के विपरीत बोलता है, उसकी मौन साधना भी मौन नहीं है।

साधना में लगने के बाद साधक को विचार करना चाहिए कि मैं साधना में लगा, ज्ञान पाया और ज्ञान पाने के साथ समिति-गुप्ति का और कषाय-विजय का कैसे पता चले? परीक्षा कब होती है? अभी आप सब दयालु हैं। कब तक? जब तक यहाँ बैठे हैं। यहाँ बैठे-बैठे दया और करुणा का पता नहीं चलता, लेकिन आप क्यों खाते हैं? किसके साथ कैसा व्यवहार करते हैं? आप अपने जीवन में किन-किन वस्तुओं का प्रयोग करते हैं? तब आपकी दयालुता का पता चलता है। अभी आप धर्मस्थान में बैठे हैं, धर्म शास्त्र की बात सुन रहे हैं इसलिए धर्मी हैं, पर वस्तुतः धर्मी हैं या नहीं, व्यवहार जगत् में उसकी परीक्षा हो सकती है।

हरिकेश बल के जीवन की परीक्षा हुई। तीव्र प्रकृति वाला हीन कुल वाला वह साधक बन गया। एक जातिवान-कुलवान-खानदान वाला है, वह दयालु है, निर्व्यसनी है, विनीत है, संस्कारवान है उसके जीवन में सरलता-नम्रता-दयालुता हो सकती है लेकिन जो हिंसा करता है, मद्य-मांस का सेवन करता है और जिसे गाली बोलते विचार तक नहीं आता, उसका जीवन बदल जाना वास्तव में बहुत कठिन है पर आचरण में उतारने वाला मोक्ष-मार्ग का राही बन सकता है। आपको साधना में आगे बढ़ने में उतनी दिक्कत नहीं है, जरूरत है सद्गुणों को जीवन में उतारने की। जो भी आचरण में गुण उतारेगा उसके जीवन में आनन्द ही आनन्द है।

जोधपुर

14 नवम्बर, 1994

15

छंदं निरोहेण उवेइ मोक्खं

तीर्थङ्कर भगवान महावीर की आदेय-अनमोल वाणी कर्म-बंधन से बचकर चलने की प्रेरणा करती है। वीतराग वाणी ने धन को प्रधानता नहीं दी। धनिकों के बजाय गुणियों को महत्त्व दिया। भारतीय संस्कृति में गुणियों के सम्मान के गीत गाये गये हैं। नीति का कथन है-

राजा-जोगी दोनों ऊँचा,
ताम्बा-तुम्बा दोनों सच्चा।
ताम्बा डूबे तुम्बा तिरे,
इण कारण राजा जोगी के पाँव पड़े।।

राजा ताम्बा अर्थात् धन-मुद्रा का उपासक होता है, योगी तूम्बड़ी से जीवन जीता है। पानी में ताम्बा डूब जाता है, किन्तु तूम्बड़ी तैरती रहती है। इसलिए कहा गया कि राजा योगी के पैरों में नतमस्तक हो जाता है। महत्त्व धन का नहीं, संसार से अनासक्ति का है। धन की अपेक्षा गुणों का महत्त्व है। जिस व्यक्ति में ज्ञान है, उसका धन नहीं होने पर भी सम्मान-सत्कार होता है। उसका जीवन प्रतिष्ठा योग्य माना जाता है।

यह तो आज के युग में एक विकृति है कि लोग गुणों के बजाय पैसों को महत्त्व दे रहे हैं। न्याय-नीति और ईमानदारी से जीवन चलाने वाले आज के युग में कायर समझे जा रहे हैं। कई हैं जो ईमानदार लोगों को डरपोक की संज्ञा देते हैं। कहते है उनमें साहस नहीं, हौंसला और हिम्मत नहीं। अन्याय-अनीति से, डरा-धमका कर, लूट-खसोट करने वाले अपने-आपको मर्द बताते हुए कहते हैं कि धन का उपार्जन मर्दानगी से होता है ऐसे लोग सत्य मार्ग पर चलने वालों को कायर, बुजदिल, कमजोर और न जाने क्या-क्या बतलाकर अपनी अलग पहचान बनाने की चेष्टा करते हैं। किन्तु उनकी यह सोच ठीक नहीं, क्योंकि पाप का फल अवश्य मिलता है।

शास्त्र का उद्घोष है-पाप संताप देने वाला है। चोरी विश्वास घटाने के साथ बंधन में बाँधने वाली है। मैं कल कह गया-इतनी यातनाएँ, इतनी पीड़ाएँ और मर्मस्थलों के भेदन के दुःख झेलकर भी चोर चोरी क्यों करता है? चोर चोरी करना नहीं छोड़ता। तीर्थङ्कर भगवान विद्यमान थे, फिर भी रोहिणेय चोर चोरी किए जा रहा था। उसके पिता ने जीवन भर चोरियाँ की और मरते समय अपने पुत्र से कहा-बेटा चोरी करना अपनी कुल परम्परा का आचार है, तुम कुल परम्परा को निभाना। चोर चोरी करने को भी धर्म कह सकता है। मोची जूते गाँठने को, धोबी कपड़े धोने को, नाई बाल काटने को धर्म कहता है। मरते समय रोहिणेय चोर को पिता सीख दे रहा है कि तुझे राजा से, प्रजा से, सेनापति से डरने की जरूरत नहीं है। इस दुनियाँ में तुम्हारा जानी दुश्मन कोई नही, कोई है तो वह है महावीर। तुम महावीर के कभी निकट मत जाना। कभी भूल से वे सामने आ जायें तो उनको नहीं देखना। रोहिणेय चोर के पिता ने अपनी अंतिम सीख दी और सदा-सदा के लिए आँखे मूंद लीं। यह बात अलग है कि रोहिणेय चोर के पाँव में काँटा लग जाने से वह दौड़ नहीं सकता और उसके कानों में भगवान महावीर के कुछ शब्द चले गए। उन शब्दों से रोहिणेय चोर का जीवन बदल गया। चोरी का कार्य छोड़कर वह मुनि बन

गया। चोरी, बेईमानी को व्यक्ति तब तक सही मानता है, जब तक वीतराग वाणी अन्दर की गहराई तक नहीं पहुँचती।

चोरी करना अनाचरणीय है और सद्गृहस्थ अनाचरणीय से धन संगृहीत करना पाप समझता है। हेमचन्द्राचार्य ने कहा–जो सद्गृहस्थ अपनी कमाई देखकर खर्च करने वाला है, उसे कभी विपरीत आचरण करने की जरूरत नहीं पड़ती। इतना धर्मोपदेश सुनते हैं, इतने धर्म गुरू हैं, इतने धर्मस्थान हैं, इतने धर्मग्रन्थ हैं, फिर पाप क्यों बढ़ रहे हैं, इस पर चिन्तन करने की आवश्यकता है।

आज चोरी करने के अनेक कारणों में सबसे बड़ा कारण है–आदमी आवश्यकता से अधिक खर्च करता है। कमाई सौ की है और खर्चा चार सौ का है, तो फिर न चाहते हुए भी उसे चोरी करनी पड़ती है। आवश्यकता अलग है, आदत अलग है। पेट भरने के लिए रोटी चाहिए, यह आवश्यकता है। पेट की ज्वाला शान्त करने की आवश्यकता हर शरीरधारी को है, वह चाहे पशु हो या मानव। पेट भरने के लिए दाल–रोटी चाहिये, पर आदत से मजबूर को चार सब्जियाँ चाहिये, चटनी चाहिये, आचार चाहिये, नमकीन और मिठाई चाहिए। आवश्यकता है–शाक–रोटी की। आदत है व्यंजनों की, पकवानों की। जब तक आदत में परिवर्तन नहीं होगा, चोरी छूटना मुश्किल होगा।

शायद आपने सुना होगा, बुजुर्गों ने देखा होगा कि कुछ वर्षों पूर्व करोड़पति–अरबपति लोग भी सामान्य मकान में अपने भाइयों के साथ रहने, खाने–पीने का ध्यान रखते थे। आज पूँजी है या नहीं अधिकांश लोग चाहते हैं कि उनका अपना बंगला हो। बंगला भी सजा–सँवरा हो, मार्बल और ग्रेनाइट लगा हो, अटेच्ड बाथरूम हो और न जाने आज के व्यक्ति को क्या–क्या सुविधाएँ चाहिये? आप जानते हैं, मुझे कहने की जरूरत नहीं। ये इच्छाएँ

आपकी सुख-भोग की आदत में शुमार है। आज बड़े-बड़े बंगले और शो-रूम बनवाये जा रहे हैं। बंगले में अलग-अलग बेडरूम हैं, डाइनिंग रूम हैं, ड्रेसिंग रूम हैं। सारे रूम हैं, पर सामायिक रूम का पूछूँ तो····· ? घर में स्टोर रूम हैं, किचन है, बाथरूम न जाने कितने हैं, पर साधना के लिए सामायिक रूम विरले बंगलों में होगा। सामायिक जो आत्मा का पोषण करती है, दुःख में सुख का साधन बनती है, उसके लिए आपका कोई चिंतन नहीं। शौचालय-स्नानघर सामान्य हो तो भी काम चल सकता है, लेकिन देखा देखी के कारण आज घर-घर में हर कमरे में अटेच्ड बाथरूम बनवाये जा रहे हैं। एक-एक बाथरूम पर लाखों खर्च किए जा रहे हैं। घर की स्थिति है या नहीं, पर मकान में शान-शौकत चाहिये। घर में रूखी खाते हैं, पर जब भी बाहर निकलते हैं तो पोशाक राजकुमार-सी चाहिये। आज होड़ा-होड़ी गोड़े फोड़ने वालों की कमी नहीं है। एक-दूसरे को देखकर जितना-जितना खर्च बढ़ रहा है, उतना-उतना भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी और अनैतिकता बढ़ रही है।

पूनिया श्रावक मात्र बारह आने की पूँजी में काम चलाता था। उस श्रावक के लिए कोई अंगुली निर्देश करने वाला नहीं था। काम सीमित साधनों से चल सकता है। कई करोड़पति हैं जो मर्यादित वस्त्रों से काम चलाते हैं। मर्यादित-संयमित जीवन जीने वालों के गुण-स्मरण किए जाते हैं। इस दृष्टि से जोधपुर के श्रावक कीरतमल जी का जीवन प्रेरणादायी रहा। वे पडिमाधारी श्रावक थे। पुष्कर के श्रावक छोगमल जी जिन्होंने अपना मकान धर्मस्थान के लिए दिया, वे व्रत-प्रत्याख्यानों की प्रभावना के लिए जो अधिक प्रत्याख्यान करता, उसके घर भोजन करते। उनके पास खर्च करने लिए द्रव्य नहीं था, फिर भी उनकी इज्जत थी, प्रतिष्ठा थी। आवश्यकता से जीवन चलाने वाले और आवश्यकता को सीमित करके चलने वाले गलत रास्ते पर नहीं जाते।

आज प्रतिष्ठा के पीछे आदमी पागल बना हुआ है। पड़ौसी के पास

विदेशी कार है तो मुझे भी चाहिये। पड़ौसी का लड़का अमुक कॉनवेंट स्कूल में पढ़ता है तो मैं क्या कम हूँ। खाना-पीना, रहन-सहन सब में देखा-देखी। इस झूठी प्रतिष्ठा के लिए आय से अधिक खर्च करके भी आदमी अपने आपको गौरवान्वित समझता है। बढ़ते खर्चे की पूर्ति के लिए अनैतिक आचरण का सहारा लेते हुए भी जब आवश्यकता पूर्ति नहीं होती तो व्यक्ति उल्टे-सीधे काम करता है। **भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, अन्याय-अनीति से सुख, शांति और समाधि न कभी मिली है, न मिलने वाली है।** शास्त्र तो यहाँ तक कहता है कि ऐसे व्यक्तियों के गुण गौण हो जाते हैं। वह घर-परिवार, संघ-समाज और राष्ट्र में अप्रासंगिक हो जाता है, सम्मान-प्रतिष्ठा खो बैठता है।

आचार्य भगवन्त (पूज्य श्री हस्तीमलजी म.सा.) के चरणों में सरकारी अधिकारी भी उपस्थित होते। वे कभी-कभी बातचीत के प्रसंग में अपनी मजबूरी रखते हुए कहते-क्या करें ईमानदारी से चलने की भावना है, लेकिन आज तो कुएँ में जैसे भांग पड़ी हुई है, ऊपर के अफसर भी कुछ-न-कुछ चाहते हैं। अगर हम कुछ नहीं करें तो हमें इधर से उधर कर दिया जाता है। ऊँचे अधिकारी यह कहने में झिझक तक नहीं करते कि तुम इस पोस्ट के लायक नहीं हो। ईमानदार अफसर का ट्राँसफर जल्दी होता है। ऊपर के अधिकारियों की हाँ में हाँ मिलाने वाले, खाने-खिलाने वाले वर्षों एक जगह जमे रह सकते हैं। आज काम की नहीं, चिंता है तो स्वार्थ पूर्ति की है। बहुत से कर्मचारी तो हवा का रूख देखकर जमाने के साथ चलने में अपनी भलाई समझते हैं। उन्हें सच्चाई और ईमानदारी के बजाय स्वार्थपूर्ति का हित इष्ट लगता है। इस गलत सोच को दूर करने की जरूरत है।

भगवान महावीर ने उत्तराध्ययन सूत्र के चौथे अध्ययन में मुक्ति के कारण में स्वच्छन्दता-निरोध को लेकर कहा है-

छंदं णिरोहेण उवेइ मोक्खं, आसे जहा सिक्खियवम्मधारी।
पुव्वाइं वासाइं चरेप्पमत्तो, तम्हा मुणी खिप्पमुवेइ मोक्खं।।

–उत्तराध्ययन सूत्र अ. 4 गाथा 8

आचार्य भगवंत (पूज्य गुरुदेव श्री हस्तीमलजी म.सा.) ने अपने पद्यानुवाद में कहा है–

स्वच्छन्द–रोध से मुक्ति मिले, ज्यों शिक्षित अश्व कवचधारी।
पूर्ववर्ष तक अप्रमत्त चल, शीघ्र मुक्त हो महाव्रतधारी।।

'छन्दं निरोहेण' यानी अपनी स्वच्छन्दता से, मन से, इन्द्रियों की विषय–लालसा से जब व्यक्ति चलना छोड़ देता है तो वह मोक्ष प्राप्त करता है। उदाहरण के रूप में कहा है–घोड़ा मालिक की आज्ञा में चलता है, तो वह अपनी मंजिल पर पहुँचता है, संग्राम में विजयी होता है। वह चाहे बूढ़ा है, लेकिन मालिक के इशारे पर चलने वाला है तो वह विरोधियों के रहते हुए भी मंजिल प्राप्त कर लेता है। सीखे–पढ़े घोड़े की कीमत बढ़ जाती है। कुत्ता भी सीखा–पढ़ा है तो वह मूल्यवान है। एक गली का कुत्ता है और एक पुलिस के पास प्रशिक्षित कुत्ता है। दोनों कुत्तों में बहुत अन्तर होता है। सीखे–पढ़े कुत्ते का खाना–पीना और रहना अलग है। प्रशिक्षित कुत्ते की जितनी सार–संभाल की जाती है शायद उतनी आदमी की नहीं होती। सीखे–पढ़े कुत्ते का आदमी से ज्यादा विश्वास किया जाता है। एक मुनीम जिसे हजारों की पगार दी जाती है उस पर भरोसा हो न हो, लेकिन कुत्ते पर पूरा भरोसा रहता है। कुत्ता जानवर है और जानवर कभी धोखा नहीं देगा, मालिक के साथ दगा–बाजी नहीं करेगा। आदमी जिससे पढ़ा है, हुनर सीखा है, उसके साथ भी धोखा कर सकता है, दगाबाजी कर सकता है।

जंगल में एक बार पशु–पक्षियों की सभा हुई। तोता, मैना, कौआ, कोयल जैसे पक्षी थे, वहीं बन्दर, लोमड़ी, खरगोश जैसे जानवर भी थे। बन्दर

ने सर्वप्रथम प्रस्ताव रखा कि इस दुनिया में मानव से बढ़कर कोई नहीं है। किसी एक जानवर ने समर्थन किया कि यह ठीक है। हम जानवर तो पेट भरने तक का काम करते हैं, जीवन निर्माण का कोई काम नहीं करते। मैना ने विज्ञान के चमत्कारों को मानव की देन बताया। कोयल कहने लगी–वर्षों का हिसाब–किताब मानव बता सकता है। एक–एक कर पशु–पक्षी मानव की श्रेष्ठता का बखान करने लगे। पशु–पक्षियों का न तो स्वागत होता है, न बहुमान, लेकिन मानव का स्वागत–अभिनन्दन किया जाता है। सारे पशु–पक्षी बोल गये तब कौआ कैसे चुप रहता, वह भी काँव–काँव करने लगा। कोयल ने कहा–तुम चुप रहो। कौआ बोला–मैं कैसे चुप रहूँ? मेरे में और तेरे में क्या फर्क? तू भी काली, मैं भी काला।

ये पशु–पक्षियों के विचार हैं, मानव के नहीं। मेरी मान्यता है कि मानव अच्छों में अच्छा भगवान रूप है तो वह नीच–से–नीच अधम रूप दानव भी है। मानव जितना दगाबाज होता है, उतना दूसरा कोई प्राणी नहीं। नीतिशास्त्र के अनुसार पक्षियों में कौआ चांडाल होता है और पशुओं में सूअर को निम्न माना गया है। मनुष्यों में पापी को चांडाल कह दिया जाता है।

उधर पशु–पक्षियों की चर्चा समाप्त हो गई। मीटिंग के पश्चात् वे अपने–अपने स्थान पर चले गये। इतने में अचानक एक आदमी दौड़ा–दौड़ा आता दिखाई दिया। वह पेड़ के निकट आया और पेड़ पर चढ़ गया। कुछ अंतराल पश्चात् एक शेर आदमी का पीछा करता हुआ वहाँ आया। शेर पेड़ के नीचे खड़ा हो गया। पेड़ पर एक बन्दर भी बैठा हुआ था। शेर ने बन्दर से कहा–भाई! हम तो जंगल के जानवर हैं। मैं भूखा हूँ तुम कुछ मेरी मदद करो। मेरा एक काम है तुम पेड़ पर बैठे आदमी को धक्का देकर नीचे गिरा दो। बन्दर ने शेर की बात सुनी और विचार करने लगा कि घर आया और माँ जाया बराबर होता है। घर पर आने वाले का स्वागत–सत्कार किया जाता है,

इसलिए आदमी को धक्का देकर गिराना मेरे से नहीं होगा। बन्दर की सुस्ती देख शेर बोला–देख, अभी तू मन ही मन आदमी को घर आया मेहमान समझ कर उसके साथ सद्व्यवहार की बात सोच रहा है, पर यही आदमी तेरे को दगा देगा। आदमी के साथ तेरी कोई रिश्तेदारी तो है नहीं। तू नाहक इसकी भलाई सोच रहा है। मैं फिर से चेता रहा हूँ इसी आदमी के कारण तुझे कहीं प्राणों से हाथ धोने की नौबत न आ जाय, इसलिए मेरी बात मान ले। तू नींद बेचकर ओजका मत ले।

शेर वहीं जम गया। बोला–'मैं यहीं बैठा हूँ तुम कहाँ जाओगे?' बन्दर ने सुनी अनसुनी कर दी और पेड़ पर सो गया। बन्दर को सोता देख शेर ने आदमी से कहा–'भाई! तेरे पीछे घर–परिवार के लोग हैं, लेकिन इस बन्दर के न कोई आगे है, न पीछे। तू एक धक्का देकर बन्दर को नीचे गिरा दे। मैं उसे खाकर अपनी भूख मिटा लूँगा और फिर यहाँ से चल दूँगा।'

आदमी का चिन्तन चला कि उसे क्या करना चाहिये? उसका मन डोलने लगा। शेर ने फिर आवाज लगाई–'देख! मैं यहाँ से भूखा जाने वाला नहीं हूँ। तू ऊपर कब तक बैठा रहेगा? मैं तुझे खाकर ही जाऊँगा। तू आज उतरे कल उतरे, उतरना तो पडेग़ा ही। तू जब भी उतरेगा मैं तुझे खाऊँगा और अपनी क्षुधा शान्त करूँगा। मेरा कहा मानकर तू बन्दर को धक्का देकर गिरा दे, मैं उसको खाकर अपनी भूख मिटा लूँगा, तेरे प्राण बच जायेंगे।'

आदमी विचार करने लगा बात तो ठीक है। उसने गफलत में सोये बन्दर को धक्का दिया। एकाएक धक्के का अनुभव कर बन्दर चौंका और फुर्ती से कूद कर दूसरी डाल पकड़ ली। डाल पर लटके बन्दर ने सोचा–मैंने भलाई की इसलिए मेरा कुछ नहीं बिगड़ा। बन्दर बच गया, यह देखकर शेर ने फिर बन्दर से कहा–''तू मानव को गिरा दे।'' बन्दर ने कहा–''मैंने किसी को धोखा देना नहीं सीखा।''

आपसे मेरा प्रश्न है–आपने क्या सीखा? बन्दर का आपसे कोई रिश्ता–नाता नहीं है, लेकिन आपके लिए माता–पिता ने बहुत कुछ किया है। माता–पिता ने आपका लालन–पालन किया, शिक्षक ने ज्ञान अर्जित कराया है। आपका उनके प्रति कितना आदरभाव है?

शेर के कई बार कहने पर भी बन्दर ने मानव को गिराने से मना कर दिया। पशु नहीं बदले, पक्षी नहीं बदले। पशु–पक्षियों ने जान देकर भी स्वामी भक्ति का परिचय दिया, लेकिन आज के मानव की स्थिति विचित्र है। मानव जिस थाली में खाता है उसी थाली में छेद करने में संकोच नहीं करता। मानव जिस गोद में पलता है, उसी को अधिक सताता है। भगवान महावीर कह रहे हैं–'छंदं निरोहेण।' मानव अपनी कृतघ्नता को, बेईमानी को, कर्त्तव्यहीनता को दफन करके शास्त्र के वचनों पर, सत् पुरूषों की सीख पर चलने का प्रयास करेगा तो मुक्ति दूर नहीं है। एक भव करके मोक्ष जाने वाले आज भी हो सकते हैं, आपको आश्चर्य नहीं होना चाहिये। इक्कीस हजार वर्ष बीतते–बीतते भी एकभवी मिलेंगे। जो साधु–साध्वी, श्रावक–श्राविका, एकभव करके मोक्ष जायेंगे उनके इस जीवन में भी सच्चाई–सरलता होगी। इस जीवन को दैदीप्यमान बनाने के लिए हमें इन्द्रियों की दासता समाप्त कर सज्जन पुरूषों की संगति करनी होगी। जो सज्जनों की संगति करेगा सुख–शांति प्राप्त कर सकेगा।

जोधपुर
1994 के चातुर्मास का प्रवचन।

16

सुख–शान्ति के लिए समाचारी की पालना जरूरी

किसी भी कार्य के सम्पादन में साधनों की उपलब्धि आवश्यक है। तीर्थङ्कर प्रभु महावीर ने उन साधनों को दो भागों में विभक्त किया है। एक है अंतरंग, तो दूसरा है बहिरंग। एक को भीतरी योग्यता कह सकते हैं, तो दूसरा कारण है बाहर के साधनों की उपलब्धि। एक उपादान है, दूसरा निमित्त। उपादान मूल है–भीतर का है, वस्तु के अन्दर में रहा हुआ है। ''उप'' और ''आ'' उपसर्ग पूर्वक दा धातु से ल्युट् प्रत्यय लगा कर बना शब्द उपादान है। उप अर्थात् समीप और आदान अर्थात् ग्रहण करना। अर्थात् जो नजदीक से ग्रहण किया जाय–जिस द्रव्य की शक्ति द्रव्य से उत्पन्न होती है वह है–उपादान कारण। बाहर के साधन, सामग्री, संगति सब निमित्त में सम्मिलित है।

घड़े के निर्माण में चाक भी आवश्यक है, चाक घुमाने का डंडा भी चाहिये तो अग्नि, कुम्हार आदि की उपयोगिता भी कम नहीं है। ये सभी बाहर के कारण हैं। मैं आपसे पूछूँ–क्या खेत, टीले या नदी के तट पर पड़ी मिट्टी स्वयं घड़ा बन सकती है? आप जानते है मिट्टी में घड़ा बनने की योग्यता अन्तर्निहित है फिर भी जब तक बाहर के कारणों का योग नहीं मिलता तब तक घड़ा नहीं बन सकता।

जीवन निर्माण में भी निमित्त और उपादान दोनों साधनों की आवश्यकता है। छोटी-से-छोटी वस्तुओं का निमित्त अथवा संयोग पाकर अनेक सुप्त आत्माएँ जागृत हो गई। आप में से कइयों के मस्तक पर श्वेत केश आ गये, अरे बाबा इनका तो पूरा माथा सफेद हो गया। श्वेत केश जगने का निमित्त है किन्तु आप जाग नहीं रहे। सिर के बाल सफेद देखकर रानी ने कहा दिया- ''यमदूत आ गया।'' राजा दशरथ का उपादान तुरन्त जग गया और वे जीवन निर्माण के लिये साधना पथ पर बढ़ गये।

'मेरे ऊपर भी कोई नाथ है' क्या आप इस बात को नहीं जानते? पर इतना सा निमित्त शालिभद्र को जगा गया। विपरीत निमित्त को अनुकूल बनाकर कर्मों के कचरे को सदा-सदा के लिए भस्मीभूत करने वाले अनेक साधकों की जीवन-गाथाएँ आपने अनेक बार सुनी हैं। सिर से लेकर पैर तक चमड़ी उतारी जा रही है, खोपड़ी खिचड़ी की तरह खदबद कर सीझ रही है फिर भी समता का ऐसा सागर लहरा रहा कि तन का संबंध छोड़कर ध्यान आत्मा की ओर, आत्मचिंतन की ओर बढ़ा। शुक्ल ध्यान में लवलीन हो, उन्होंने केवल ज्ञान प्राप्त कर लिया। सिद्ध-बुद्ध मुक्त हो गये। उपादान और निमित्त की उपादेयता कविवर बनारसीदासजी के शब्दों में इस प्रकार कही गई है-

गुरु उपदेश निमित्त बिन, उपादान बलहीन।
ज्यों नर दूजे पाँव बिन, चलने का आधीन।।

एक चक्र से रथ गतिशील नहीं रह सकता, एक हाथ से ताली नहीं बजती, एक पैर से लक्ष्य तक पहुँचना अशक्य है ठीक वैसे ही कार्य की सिद्धि में उपादान के साथ निमित्त भी आवश्यक है। कभी-कभी निमित्त उपादान में सहायक बन जाता है। प्रभु महावीर ने 'उत्तराध्ययन सूत्र' के प्रथम अध्ययन में कहा-

अणासवा थूलवया कुसीला, मिउं पि चण्डं पकरंति सीसा।
चित्ताणुया लहु दक्खोववेया, पसायए ते हु दुरासयंऽपि।।

अर्थात् मृषा बोलने वाला, कुशील, क्रोधी शिष्य मृदु गुरु को भी कुपित कर देता है तो इसके विपरीत गुरु के अनुकूल प्रवृत्ति करने वाला विनीत शिष्य कठोर गुरु को भी प्रसन्न कर देता है। क्रोधी शिष्य के निमित्त ने शान्त गुरु को भी क्रोधी बना दिया, उनकी साधना को विपरीत कर दिया, गुरु को विराधक बना गति बिगाड़ दी, मनुष्य से तिर्यञ्च में ले गया-चण्डकौशिक सर्प बना दिया। एक ओर ऐसा उदाहरण है तो दूसरी ओर चण्डरूद्राचार्य जैसे क्रोधी गुरु का मृदु शिष्य के संयोग से क्रोध ही दूर नहीं हुआ अपितु उन्होंने अनन्त ज्ञान प्राप्त कर लिया।

जीवन स्थिर करना भी हाथ में है, अस्थिर करना भी हाथ में है। अन्तर के उपादानों को जगाने के लिए प्रभु महावीर ने अपनी अन्तिम वाणी 'उत्तराध्ययन सूत्र' के 26वें अध्ययन में समाचारी का कथन किया है। यह समाचारी भी बाहर का कारण है-निमित्त है जो कि साधक के उपादान को जगाने, शुद्ध बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। साधक के विकास में, जीवन निर्माण में समाचारी अत्यधिक उपयोगी है। समाचारी असंयम से हटा कर संयम की ओर बढ़ाने वाली है, सिद्धि दिलाने वाली है। समाचारी का पालन करने वाला शान्त और समाधिवान शिष्य कठोर स्वभाव वाले गुरु को भी स्थिर कर देता है।

स्थिर होना हाथ में है-अस्थिर होना भी हाथ में है। जंगल में मंगल करना भी हाथ में है तो मंगल में दंगल करना भी हाथ में है। आप चाहे घर में हैं तो समाचारी का पालन कर घर को स्वर्ग बना सकते हैं। आप साधक हैं तो समाचारी के सम्यक् पालन से साधक सिद्धि को प्राप्त कर सकता है। प्रभु महावीर ने अपनी अनुपम अन्तिम वाणी में कहा है-

पढमा आवस्सिया णामं, बिइया य णिसीहिया।
आपुच्छणा य तइया, चउत्थी पडिपुच्छणा।।2।।

पंचमी छंदणा णाम, इच्छाकारो य छट्ठओ।
सत्तमो मिच्छाकारो य, तहक्कारो य अट्ठमो।।3।।

अब्भुट्ठाणं च णवमं, दसमी उवसम्पया।
एसा दसंगा साहूणं, सामायारी पवेइया।।4।।

–उत्तराध्ययन सूत्र 26 अध्ययन गाथा 2, 3, 4

पहली समाचारी है–'**आवस्सही।**' उपाश्रय से बाहर जाते समय गुरु या बड़े मुनि से अर्ज करे कि मुझे उक्त कार्य के लिए बाहर जाना जरूरी है। बाहर जाते–'आवस्सही' कहे। गुरु भी धर्म स्थान से बाहर गमन करे तो भी 'आवस्सही' का प्रयोग करके निकले जिससे उनके भी जाने की बात मालूम रहे। गुरु को किसी की आज्ञा की आवश्यकता नहीं फिर भी स्थान से बाहर जाने के साथ 'आवस्सही' शब्द का प्रयोग करके जाय, यह समाचारी है।

घर का कोई सदस्य घर से बाहर जाये तो कह कर जाये कि मैं अमुक काम के लिए जा रहा हूँ। अमुक व्यक्ति से मिलने जा रहा हूँ, ऐसा कहकर जाने से उसके जाने के बाद उसके लिए यदि का कोई पूछे तो घर का कोई सदस्य जबाब दे सकता है कि वह अमुक स्थान पर गया है। यदि वह किसी को कह कर नहीं गया, मनमर्जी से निकल गया, कब लौटेगा इसका भी पता नहीं तो घर के सदस्य क्या जबाब दें ? जो घर पर कहकर नहीं जाते उनके लिए घर वाले भी कभी–कभी आवारा कह दें तो बड़ी बात नहीं। अगर घर का सदस्य घर वालों से कहकर जायेगा या पूछकर जायेगा तो घर की व्यवस्था सुन्दर रहेगी, घर में उसका आदर रहेगा, घर के एक–दूसरे सदस्य को एक–दूसरे के प्रति विश्वास बना रहेगा। ऐसा घर स्वर्ग–तुल्य हो सकेगा।

घर का सदस्य अपने जाने की बात घर के अन्य सदस्यों से कहकर जाता है तो उसकी मान-मर्यादा तो बढ़ती ही है, घर की प्रतिष्ठा भी बढ़ती है। एक सेठ का लड़का जिसके लिए समाज के चार व्यक्तियों ने आकर सेठ से कहा कि आपके लड़के को हमने उकरड़ी पर देखा है। सेठ साहब बोले- वह मेरा पुत्र है, मैं उसकी प्रकृति जानता हूँ। मेरा लड़का उकरड़ी पर जा नहीं सकता और यदि गया भी तो उसके पीछे कोई विशेष कारण रहा होगा। कुछ देर पश्चात् लड़का घर लौट आया और अपने पिता को कचरे में मिले रत्न की बात कही। घर का बच्चा पूछकर गया तो पिता उसकी खातरी दे देगा और यदि लड़का मन-मर्जी से बिना कहे-बताये जाता है तो पिता को बहम रहेगा और पूछने पर भी उसका समाधान नहीं दे सकेगा। गृहस्थ के घर में कई तरह के काम होते हैं, अनेक मिलने-जुलने वाले आते हैं अगर घर में पूछकर जाने की व्यवस्था है तो घर, घर रहेगा।

तीर्थङ्कर प्रभु महावीर ने शास्त्र की बातें केवल साधुओं के लिए कही है, ऐसा नहीं है। तैंतीस बोल महाराज याद करें, हम सीखकर क्या करेंगे? भगवन् के उपदेश सबके लिए है। 'आवस्सही'-'निस्सही' प्रत्येक व्यक्ति के लिए है चाहे वह साधु हो, साध्वी हो, गृहस्थ हो या अधिकारी हो। इस आदर्श नियम की सभी को जरूरत है। कहकर जाने वाले का पता किया जा सकता है परन्तु बिना कहे जाने वालों का पता करना चाहें तो भी कठिनाई होती है। कहकर नहीं गया और यदि उसका कहीं अपहरण हो जाय तो कहाँ ढूँढे? आकस्मिक दुर्घटना होने पर भी उसे ढूँढा नहीं जा सकता। कब? जबकि वह कहाँ गया, यह कहकर नहीं गया। गृही जीवन के चिन्ता मुक्त रहने के लिए कहकर जाना आवश्यक है।

दूसरी समाचारी है-**निस्सही।** निस्सही अर्थात् बाहर से पुनः स्थान पर लौटने के साथ गुरु अथवा बड़े सन्त से कहे कि मैं अपने कार्य से निवृत्त

होकर आ गया हूँ। प्राचीन परम्परानुसार धर्म-स्थान में प्रवेश करने पर मन-वचन-काया के सावद्य व्यापार को छोड़कर निवृत्त होकर आया है ऐसा प्रदर्शित करने को तीन बार निस्सही-निस्सही-निस्सही····· शब्द का प्रयोग का सुन्दर रूप था। निस्सही कहने पर गुरु अथवा संघाड़ा पति सन्त या महासतीजी को यह ध्यान में आ जाता है कि शिष्य अमुक समय अमुक कार्य हेतु अमुक स्थान पर गया था, वह लौट कर आ गया है। कितना समय लगा, कार्य हुआ या नहीं इसकी जानकारी गुरु को रहेगी तो व्यवस्था रह सकेगी। यदि शिष्य स्थान पर लौटकर आने के बाद भी गुरु को नहीं कहे और चुपचाप आकर बैठ जाय तो गुरु को कार्य पूर्ति की जिज्ञासा जानने की बात स्वाभाविक है और 'निस्सही' शब्द के प्रयोग नहीं करने पर हो सकता है गुरु उसी कार्य के लिए किसी दूसरे को न कह दे।

शास्त्र में स्थान-स्थान पर समाचारी का उल्लेख है। समाचारी का यह नियम केवल साधु-साध्वियों के लिए ही है, ऐसा नहीं। पुराने समय में राज-पुत्र, राज्य के उच्च अधिकारी, राजदूत से लेकर सामान्य कर्मचारी कार्य सम्पादन के बाद आज्ञा वापिस लौटाते थे, ऐसा रूप देखने को मिलता था। आज भी प्रशासन में इस रूप को देखा जा सकता है। प्रशासन में ही क्या सुंदर घर की जहाँ भी व्यवस्था है वहाँ पर इस रूप को देखा जा सकता है। विवेकवान आज्ञा पालन करके पुनः आज्ञा वापस करता है।

घर की मर्यादा बनाए रखने के लिए आज्ञा पालन जरूरी है। घर में प्रेम-वृद्धि भी तब हो सकेगी जब कि घर का सदस्य पूछ कर या बता कर जाये और वापस लौटने पर कार्य सम्पादन हुआ या नहीं बतावे। घर के सदस्यों के लिए ही क्या देवता भी कार्य सम्पादन के पश्चात् आज्ञा वापस लौटाते थे। प्रथम स्वर्गाधिपति शक्रेन्द्र ने हरिण गमेषी देव को तीर्थङ्कर भगवान महावीर के जीव को देवानन्दा की कुक्षि से महारानी त्रिशला की कुक्षि में परिवर्तन का

आदेश दिया। हरिणगमेषी देव ने आज्ञानुसार कार्य सम्पादन कर आज्ञा वापिस लौटाई। मर्यादा का यह रूप भगवान ने सबके लिए बतलाया है। अगर हर घर में मर्यादा का यह सुन्दर रूप प्रतिष्ठित हो जाय तो घर के सदस्यों में परस्पर टकराव नहीं होगा। कार्य का सुन्दर विभाजन समय पर कार्य निष्पादन और आपसी प्रेम के कारण घर की व्यवस्था सुचारू बनी रह सकेगी।

धर्म का मूल विनय है। आपुच्छणा में विनय का अद्वितीय रूप रहा हुआ है। मोक्ष मार्ग की साधना में आरूढ़ साधक को स्वाध्याय करना है, तप करना है, वैयावृत्त्य करना है। इन सब श्रेष्ठ क्रियाओं को करने के लिए गुरुदेव से पूछना समाचारी है। 'आपुच्छणा' में 'आ' का अर्थ है मर्यादा के साथ और 'पुच्छणा' का अर्थ है पूछना। मर्यादा के साथ पूछना। आप सोचेंगे बाहर जाने के लिए पूछना तो ठीक है पर एक-एक कार्य के लिए पूछना कहाँ तक ठीक है? क्या यह गुलामी का प्रतीक तो नहीं? पाश्चात्य सभ्यता के पुजारी तथाकथित शिक्षित युवक-युवतियाँ अपने कार्य में, अपनी वेशभूषा में, अपने खान-पान में और यहाँ तक कि विवाह-शादी में बड़ों की सलाह लेना आवश्यक नहीं समझते। हो सकता है कुछ लोग इसे मूर्खता समझते हों अथवा पुरानी पीढ़ी की मानसिकता। कुछ लोग हर काम पूछकर करना उचित नहीं मानते हैं। ऐसे लोगों के बारे में आज पूछने की नहीं, समझने की जरूरत है।

'आपुच्छणा' समाचारी का पालन विनयवान करता है। विनयहीनता के दुष्परिणाम सामने हैं। गुटके का अधिक प्रयोग हानिकर है, इससे श्वास नली में रूकावट आती है, गले में कैंसर हो सकता है। वैधानिक चेतावनी लिखे होने पर भी खाने-पीने की आदत वाले भाई खाए जा रहे हैं..... खाए जा रहे हैं। शराब खराब है फिर भी इसका सेवन होता है, क्यों? मतलब यह कि जिन्हें खान-पान, रहन-सहन, वेश-भूषा के मामले में मन मर्जी से चलने की आदत है, वे अनुभवियों का मार्गदर्शन नहीं लेते। आज जरूरत है,

अनुभवियों का मार्गदर्शन लिया जाय। यह समाचारी केवल साधु-साध्वियों के लिए ही नहीं, सबके लिए है। अनुभवियों के मार्गदर्शन से तन-मन-धन तीनों का सदुपयोग किया जाय तो घर में-परिवार में-समाज में शान्ति कायम रह सकती है।

आप कहते है-''ओल्ड इज गोल्ड।'' अनुभवियों के अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। आपुच्छणा से अनुभवियों का लाभ मिलता है। संयमी साधक के लिए तो श्वास और पलक झपकने के सिवाय प्रत्येक कार्य गुरु की आज्ञा में करना हितावह कहा गया है। शिष्य इस समाचारी का पालन करेगा तो कार्य दक्षता का अहंकार उसे नहीं होगा और कदाचित कार्य सम्पादन न भी हुआ तो हीनता के भाव नहीं आऐंगे। गुरु से पूछकर शिष्य काम करें, पिता या अभिभावक से पूछकर पुत्र काम करें, सासू से पूछकर बहू काम करे तो उसे न अहंकार होगा और न ही हीनता के भाव आएँगे।

अनुभवियों के मार्गदर्शन में कार्य करने से अहंकार और हीनता के भाव नहीं आते। हाँ, यदि शिष्य या पुत्र बिना मार्गदर्शन के चलता है तो गुरु या पिता के मन में हीनता के भाव आ सकते हैं। जहाँ भी उपेक्षा के भाव होंगे हीनता आ सकती है। गुरु, पिता या अभिभावक सोचेगा ठीक है, जैसा चल रहा है चलने दो। प्रायः अधिकतर कमाऊ पूत बुजुर्गों को सुख देने के बजाय तिरस्कृत करते हैं इसीलिए आज घर-घर में अशान्ति देखी जा सकती है। कई स्थानों पर तो वृद्धों का पिछला जीवन दूभर हो जाता है। भगवान, अब 'तेरा ही आसरा है, मेरी गाड़ी पार लगा देना' ऐसे बोल कब सुनने को मिलते हैं?

समाचारी का चौथा रूप है-**'पडिपुच्छणा।'** पडिपुच्छणा अर्थात् अपने कार्य के लिए जाते समय यदि किसी दूसरे संत-सती ने कोई कार्य कहा तो उसके लिए भी गुरु से पुनः पृच्छा करें। देखिये-ज्ञानियों का कितना महत्त्वपूर्ण चिन्तन है? कभी कोई संत गुरुदेव के किसी आवश्यक कार्य हेतु

चला, इस बीच किसी दूसरे संत ने कोई काम कहा, तीसरे ने भी कोई और काम बता दिया ऐसी स्थिति में शिष्य यदि पडिपुच्छणा करता तो उसे उपालम्भ नहीं मिल सकता।

आप ज्ञानियों के चिन्तन को समझें। कभी-कभी कोई शिष्य सेवाभावी कहलाने के लोभ से एक-दो नहीं और संतों के काम करने की भावना से चला गया, गुरु को ज्ञात नहीं तो उसे सेवाभावी का पदक तो नहीं मिलेगा और हो सकता है, उसे अनुशासनात्मक वचन सुनने पड़े। दो-चार के एक साथ काम ले लेने पर ऐसा भी हो सकता है कि गुरु ने जिस काम के लिए कहा वह भूल जाय। 'पडिपुच्छणा' समचारी के पालन से शिष्य को न ताड़ना-तर्जना मिलेगी और न ही गुरु के विश्वास में कमी आयेगी।

मैं आपसे कह रहा था कि समाचारी केवल साधकों के लिए ही नहीं है, यह सबके लिए है। गृहस्थ जीवन में घर के एक से अनेक सदस्य अपना-अपना काम बता सकते हैं। बाजार जा रहा है तो मेरे लिए अमुक चीज लेते आना, तू उधर जा रहा है तो रास्ते में यह समाचार कह देना। यदि घर में बुजुर्ग को अन्य-अन्य काम की जानकारी दी जा चुकी है तो मुखिया से देर से आने का उपालंभ नहीं सुनना पड़ेगा।

एक भुलक्कड़ भाई किसी काम के लिए निकला और दूसरे-दूसरों के काम तो कर दिये पर स्वयं जिस काम के लिए गया था, उसे भूल गया। पडिपुच्छणा का परिपालन नहीं होने से ऐसा हो सकता है। सेवा जैसे कार्य के लिए भी शिष्य, गुरु से पडिपुच्छणा करे। इस समाचारी के पालन से न तो कार्य का महत्त्व कम होगा न ही कार्य में रूकावट आयेगी।

प्रभु महावीर ने साधना की अनुपम विधि प्रतिपादित की है। अपनी आवश्यकता की पूर्ति करते हुए, अपने निमित्त प्राप्त वस्तु के भी त्याग और

समर्पण की भावना द्योतित कर रही है समाचारी 'छंदणा'। यह समाचारी साधक के मन में वीतराग वाणी का यह दिव्य सन्देश गुंजित करती है- 'साहू हुज्जामि तारिओ।' कृपा करो····· अनुगृहीत करो। अपने लिए अपने निमित्त से प्राप्त वस्तु अपने स्वधर्मियों को, रत्नाधिक गुरु भगवन्तों को निमंत्रित करके साधक प्रसन्न होता है। आहार आदि में अपने हिस्से की प्राप्त सामग्री स्वधर्मी साधकों को निमंत्रित कर प्रतिलाभ देने का निवेदन करना भी समाचारी का रूप है।

आपने सुन रखा है कि पितृ वचन की अनुपालना में मर्यादा पुरूषोत्तम राम भरत के लिए राज्य त्याग चुके हैं तो अपने अधिकार में प्राप्त राज्य का समर्पण राम चरणों में करने वाले भरत अपने भाई को लौटाने का आग्रह कर रहे हैं। चित्रकूट का राम-भरत का संवाद आप जानते हैं। राम-भरत का आदर्श आज भाई-भाई में हो तो·····।

परस्पर प्रेम और सौहार्द्र बढ़ाने के लिए 'छंदणा' की आवश्यकता है। एक गुरु अपने शिष्य के विनय गुण के कारण अथवा सेवाभावी संत होने की योग्यता से कोई शास्त्र, वस्त्र या अन्य वस्तु दे, अपने निमित्त से प्राप्त वस्तु को वह यदि सहयोगी संतों को ग्रहण करने की प्रार्थना करता है तो आपसी सौहार्द्र बढ़ता है। गृहस्थ जीवन में भी ऐसे उदार विचार और विनय रूप निमंत्रण से सौहार्द्र बढ़ेगा।

अपने निमित्त की वस्तु अपने लिए काम आ रही है या बेकार पड़ी है तब भी ममत्व के कारण से वह प्रतिलाभ से वंचित रहता है तो ईर्ष्या बढ़ती है। आज भाई-भाई में, देवराणी-जेठाणी में, ननद-भोजाई में, पिता-पुत्र में ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य बढ़ रहा है उसके पीछे मूल कारण यह है कि उसके जीवन में समाचारी पालन की भावना नहीं है। यह समाचारी प्रेम बढ़ाने वाली है, स्नेह और सद्भावना बढ़ाने वाली है। इसके पालन से लगाव कम होता है, ममत्व घटता है।

शास्त्र या भगवत् वाणी सुनने का मतलब है हमारा आचरण शुद्ध बनें। व्यक्ति की योग्यता, पुण्यशालिता, बुद्धिमता कोई छीन नहीं सकता लेकिन जिनमें उदारता होती है वे अपने निमित्त की वस्तु को परस्पर विनिमय कर, बाँटकर, देकर जहाँ कलह-वैमनस्य-ईर्ष्या घटाते हैं वहीं प्रेम, स्नेह, सौहार्द्र बढ़ाते हैं। समाचारी का पालन हम साधुओं के लिए है, आपके लिए भी है।

आचार्य, उपाध्याय या वाचना प्रदाता ज्ञानी गुरुदेवों से निवेदन करे कि आपके साता हो, अनुकूलता हो और समय हो तो कृपा करके मुझे भी ज्ञान का दान दीजिए। समाचारी का रूप देखिये ज्ञान सीखने के लिए भी पूछते समय कैसी भाषा का प्रयोग हो यह शिक्षा समाचारी से मिलती है। समाचारी साधक के मन में विनय बढ़ाती है, श्रद्धा जगाती है और आदर के भाव पैदा करती है। वीतराग वाणी में ज्ञान पिपासु शिष्य कैसा हो इसके लिए कहा है कि जिस शिष्य के मन में आदर और श्रद्धा भाव हो, वचनों में विनययुक्त मधुर वाणी हो और काया से मस्तक नवाकर करबद्ध होकर गुरु से नीचे आसन पर बैठकर एकाग्रता से ज्ञान लेने वाला शिष्य सूत्र-अर्थ का विपुल ज्ञान प्राप्त करता है।

'इच्छाकारोय सारणे'। समय पर प्रतिक्रमण, प्रतिलेखन, स्वाध्याय, भिक्षाचारी आदि आवश्यक कार्यों का स्मरण कराना भी इच्छाकार है। साधक हर कार्य गुरु की इच्छा से करता है। आवश्यक कार्यों के अलावा भी यदि कोई प्रश्न करना है अथवा शंका का समाधान करना है तो भी गुरु या बड़ों के पास जाकर निवेदन करें कि आपके अनुकूलता और सुख समाधि हो तो कृपया मेरी जिज्ञासा का समाधान फरमावें। समाधान पाना भी 'इच्छाकार' है।

मानव मात्र भूल का पात्र है। छद्मस्थ अवस्था में जाने-अनजाने में भूल हो जाना स्वाभाविक है। कभी जाना कहीं होता है अन्यमनस्क होकर

चला कहीं ओर जाता है, बोलता क्या है–बोल कुछ जाता है, चिन्तन में कभी अशुभ पापकारी विचार आ सकते हैं, इसकी निन्दा–गर्हा हेतु 7वीं समाचारी है–मिच्छाकार। कभी स्वार्थ के वशीभूत अन्यथा आचरण हो सकता है, कभी राग–द्वेष–कषाय से प्रेरित होकर नहीं करने योग्य कार्य कर सकता है ऐसी भूल स्वाभाविक है। इस तरह हुई भूल की धूल को साफ करने का उपाय है खेद। 'मिच्छामि दुक्कडं' क्या है? भूल हो जाय तो खेद प्रकट करे, पश्चात्ताप करे और फिर से ऐसी भूल नहीं करने का संकल्प ले।

शल्य से विंधा हुआ मानव भाग–दौड़ मचाता है। शल्य की बात अभी छोड़िये आँख में फूस, पैर में काँटा, दाँत में तृण जैसे शरीर को बेचैन करता है उसी तरह मन–वाणी और काया की भूल भी साधक को बेचैन, अशान्त बनाती है। भूल का परिमार्जन करना इस समाचारी का उद्देश्य है। यह समाचारी साधकों के लिए है ऐसे ही मानव मात्र के लिए है। जब भी गलती का भान हो स्वयं गुरु के पास जाये और प्रायश्चित्त करे। गलती का प्रायश्चित्त कर भविष्य में ऐसी गलती फिर न हो इस तरह के संकल्प से शांति मिलती है, समाधि बढ़ती है।

भूल का परिमार्जन जरूरी है। अपनी गलती का ज्योंही भान हो स्वयं शिष्य है तो गुरु के पास जाये और गृहस्थ है तो बड़ों के पास जाये। आपको कपड़े पर लगा कीचड़ नहीं सुहाता, आपका कपड़ा कहीं अटककर फट गया तो आप बिना किसी और की प्रेरणा से स्वयं आगे होकर कपड़े का कीचड़ साफ करते हैं, फटा कपड़ा ठीक कराते हैं। जैसे आप शरीर की या कपड़े की गन्दगी पसन्द नहीं करते ठीक वैसे ही आपको भूल की धूल झाड़कर शुद्धि करनी चाहिए। ऐसा करना शांति का कारण है, समाधि का कारण है और अगर भूल को भूल नहीं माना गया तो वह स्वयं अशांत रहेगा, एक भूल को

छुपाने के लिए सौ भूलें करेगा। भूल हो जाना स्वाभाविक है पर भूल का ज्ञान होने पर उसका परिमार्जन नहीं किया जायेगा तो आपकी प्रतिष्ठा नहीं रहेगी, आपका आदर कम हो जायेगा और आप सम्मान के पात्र नहीं रहेंगे।

एक भूल अनजाने में होती है। एक भूल क्षणिक उत्तेजना में स्वार्थ-कषायादि भावों से अथवा विकारों के वशीभूत होती है। एक भूल संकल्पपूर्वक योजनाबद्ध तरीके से षड्यंत्र के साथ पाप प्रवृत्ति रूप होती है। भूलों के निराकरण हेतु जैन परम्परा में मिच्छाकार समाचारी का कथन कहा गया है प्रतिक्रमण-प्रायश्चित्त ये सब पाप मल को धोने के लिए हैं, आत्म शुद्धि के लिए है।

गुरु वचनों को तहत् कहकर स्वीकार करना 'तहक्कार' समाचारी है। बड़ों के पुकारने पर तत्काल प्रत्युत्तर देना शिष्टता है। तत्काल उत्तर से बड़ों को इस बात की तुरन्त जानकारी हो जाती है कि मेरी बात सुन ली गई है। प्रत्युत्तर के अभाव में गुरु या बड़ों को पुनः पुकारना या कहना पड़ता है। कभी-कभी प्रत्युत्तर नहीं मिलने से भ्रम भी हो सकता है कि शिष्य है भी या नहीं? और अगर है तो निद्राधीन तो नहीं है? कभी शिष्य दूर हो तो उसको न भी सुनाई पड़े यह दूसरी बात है किन्तु सुनने के साथ तत्काल प्रत्युत्तर देना आवश्यक है।

बड़ों की आज्ञा स्वीकार कर चलना तहक्कार है। अनुकूल या मनगमती आज्ञा तो सभी मानकर चलते हैं। आज्ञा में अनुकूलता-प्रतिकूलता नहीं देखी जाती। आज्ञा, आज्ञा है। आज्ञा अनुलंघनीय है। मन माने, न भी माने आज्ञा पालन करना ही होता है यदि आज्ञा का पालन नहीं किया जाये तो फिर उसका महत्त्व ही क्या?

एक संत सेवाभावी है उसे तप रुचिकर नहीं लगे, एक तपस्वी है उसे व्याख्यान का काम करने पर हो सकता है मन नहीं माने, एक व्याख्यान देने वाला है वह पढ़ने-पढ़ाने या सीखने-सिखाने का काम कर सकता है लेकिन सेवा का काम कह दिया जाये तो हो सकता है उसकी रुचि नहीं हो परन्तु आदेश वचन इन सबके ऊपर है। आज्ञा पालन समाचारी है।

आज्ञा की पालना तहत् के साथ होनी चाहिए। मेरे अनुकूल हो तो आज्ञा पालन, प्रतिकूल हो तो बहानेबाजी का यह रूप नहीं होना चाहिए। रोगी को दवा अच्छी नहीं लगती फिर भी वह दवा लेता है या नहीं ? जैसे बातूनी को पढ़ना अच्छा नहीं लगता, वह तो इधर-उधर घूम-घाम कर समय बिताना चाहता है पर आप सजग हैं तो उसकी आदत में सुधार हो, इसलिये प्रयत्न करते रहते हैं। साधक जीवन निर्माण के लिए साधना के क्षेत्र में आता है उसकी प्रतिष्ठा तभी बनी रहेगी जबकि वह आज्ञा की परिपालना करे। अपनी अनुकूलता-प्रतिकूलता, रूचि-अरूचि का खयाल छोड़कर आदेश वचन का पालन करता है वह शिष्य प्रतिष्ठा अर्जित करते हुए साधना-पथ पर विकास करता है। बड़ों की आज्ञा में चलने पर लड़का सुशील होगा, उसकी प्रतिष्ठा बढ़ेगी।

अपने से बड़ों के आने पर खड़ा होना, हाथ जोड़ना, उन्हें आसन निमंत्रण करना 'अभ्युत्थान' समाचारी है। जिस घर में बड़ों का सम्मान और छोटों पर स्नेह है वह घर स्वर्ग की भाँति है। बड़ों से नीचे बैठना, घर की सभ्यता है। बड़ों का सत्कार-सम्मान हमारी सांस्कृतिक पहचान है। ऐसे घर में रहने वाला हर सदस्य प्रसन्न रहता है। आने वाले अतिथियों को ऐसा घर देखकर प्रमोद होता है। भगवन् ने समाचारी का कथन संसार सागर से तिरने के लिए किया है। गृहस्थ में रहकर इसका पालन किया जाये तो घर में शांति

रह सकेगी और संयम धर्म में रहकर इसका पालन किया जायेगा तो समाधिभाव बढ़ेगा।

जितने भी महापुरूष हुए हैं उन सबके जीवन का ऐसा आदर्श रूप रहा है। तीर्थङ्कर भगवान महावीर, भगवती मल्लि जैसे चौसठ इन्द्रों के पूजनीय वे भी घर में रहते अपने माता-पिता को नमस्कार करते थे। प्रातः शय्या त्याग के साथ बड़ों को नमस्कार करना हमारी संस्कृति है। मर्यादा पुरूषोत्तम राम का भी ऐसा ही आदर्श था। तुलसीदास जी ने कहा-

प्रातःकाल उठिव रघुनाथा, मात-पितु-गुरु नावहि माथा।

अभ्युत्थान समाचारी मन की श्रद्धा और मन में रहे आदर भाव को प्रदर्शित करती है। 'अब्भुट्ठाणं गुरुपूज्या' अर्थात् मन में श्रद्धा रखना, वचनों में मधुरता पूर्वक गुरु स्तुति करना और काया के अनुकूल व्यवहार से सेवा-सुश्रुषा करना गुरु आराधना है, गुरु भक्ति है। कई व्यक्ति मन में अश्रद्धा रखते हैं और बाहर में सत्कार-सम्मान प्रदर्शित करते हैं ऐसा रूप नहीं होना चाहिए। अभ्युत्थान समाचारी की पालना में मन की श्रद्धा और व्यवहार में आदर दोनों होंगे।

उवसंपया का मतलब समीप रहना। गुरु से सूत्रार्थ लक्ष्मी पाने के लिए समीप रहे। गुरु के पास रहने वाला साधक सहज में कई प्रकार के ज्ञान प्राप्त कर सकता है। आचार्य, उपाध्याय आदि बड़े संतों के चरणों में कई प्रकार की जिज्ञासाएँ होती है, शास्त्र के गहन विषयों की चर्चाएँ होती हैं, पास रहने वाला सहज ज्ञान प्राप्त कर सकता है और पास रहने पर सेवा-सुश्रुषा का भी अधिक लाभ मिलता है।

गुरु के चरण सरोजों में बैठने वाला शिष्य कई बुराइयों से बचा रह

सकता है। घर में भी जो बड़ों के पास बैठते हैं उनका सहज विकास हो सकता है। बुजुर्गों से ज्ञान मिलेगा। हास्य-परिहास में समय नष्ट नहीं होता। बड़ों के पास बैठने से विश्वास प्रतीति बढ़ती है। पिता समय-समय पर अपने अनुभवों से पुत्र को लाभान्वित कर सकता है। कब? जबकि पुत्र पिता के पास रहे। ऐसे ही शिष्य गुरु के पास रहेगा तो गुण बढ़ते जायेंगे। अनुभवियों-बुजुर्गों-ज्ञानियों के आदर और सम्मान भी पास बैठने वाला पाता है।

समाचारी का पालन संयमी साधकों के लिए परम आवश्यक है, आपके लिए भी जरूरी है। समाचारी के पालन से बुराइयों से बचा जा सकता है। शान्ति और समाधि के लिए समाचारी का पालन होना चाहिए। समाचारी जीवन में क्रियात्मक रूप से उतरे। यह धर्म का प्रवेश द्वार है। घर को स्वर्ग बनाना है, साधक को सिद्धि पाना है तो समाचारी का पालन आवश्यक है। जो भगवान की बतलाई समाचारी का पालन करेंगे वे सुख, शान्ति का आनन्द पा सकेंगे।

जोधपुर
1994 के चातुर्मास का प्रवचन

17

प्रमाद त्यागें : पुरुषार्थ करें

तीर्थङ्कर भगवान महावीर की अनमोल वाणी दो तत्त्वों–चेतन और जड़ का विस्तार से विवेचन करती हुई, चेतन को जड़ से मुक्त करने अर्थात् आत्मा को कर्मरहित बनने के लिए प्रेरित करती है। यह वाणी संसार–सागर से तारने वाली है, पर इसके लिए चेतन को चेतन एवं जड़ को जड़ समझना होगा। चेतना जागृति के लिए संत–भगवंतों के माध्यम से वाणी आप तक पहुँच रही है, पर कितने प्राणी ऐसे हैं जिन्हें यह वाणी अंतर में लगती है? हजारों–लाखों में कोई एक भाग्यवान प्राणी मिलता है, जो इस परम पावन जिनवाणी को हृदय में उतार कर जीवन में ग्रहण करता है। प्रश्न है कि उस एक को छोड़कर शेष क्यों नहीं ग्रहण कर पाते हैं उसे? उत्तर सीधा–साधा है– जीवन में प्रमाद की बहुलता है। धर्म के लिए पुरुषार्थ से आप जी चुराते हैं, मुँह फेरते हैं, परिणामस्वरूप आज धर्म की वृद्धि एवं जिनशासन का विस्तार नहीं हो रहा है।

हम जंगल जा रहे थे। सहसा एक घर की ओर निगाह गई। बड़ा–सा बंगला, हरा भरा लॉन, सुन्दर बगीचा, कितनी ही तरह के रंग–बिरंगे फूल,

अनेक गमले और प्रत्येक में सुंदर पौधा। नीचे स्कूटर लेकर खड़ा दूध वाला आवाज लगा रहा था, ऊपर से एक बाई रस्सी से लटका कर लोटा नीचे गिराती है। दूध वाला उसमें दूध डालता है। बहिन रस्सी से ऊपर खींचती है। रस्सी से बँधा लोटा ऊपर जा रहा है। दूध लेने के लिए नीचे आने का श्रम नहीं करना चाहती वह बहिन। आलस्य का रोग ऐसा लगा कि सीढ़ियाँ उतरना भारी हो गया है। जिन्हें घर की सीढ़ियाँ उतरने में प्रमाद है तो फिर संवर, सामायिक, निर्जरा की साधना कैसे संभाव्य होगी ? आध्यात्मिक विकास में वे कैसे पुरुषार्थ कर पायेंगे ? जीवन में आगे बढ़ने में वे कैसे सफलता प्राप्त कर सकेंगे ?

आज ज्ञान का विस्तार हो रहा है। विशेष ज्ञान हो रहा है। स्पेशलिस्ट बनते जा रहे हैं पर ये सारी स्पेशलिटीज बन रही हैं भौतिक विकास में। आत्म-विकास और आध्यात्मिक विकास की तो जब भी बात करो यही प्रत्युत्तर मिलेगा-अभी समय नहीं है। युवकों से संवर-करणी की बात करते हैं तो उनकी रुचि ही नहीं बनती। अभी उनसे कहा जाए कि अमुक जगह खाने-पीने में जाना है तो तत्काल तैयार हैं। सामायिक-स्वाध्याय का कहो तो गालियाँ निकालेंगे, बहाने बनायेंगे।

मानव का मुख्य लक्ष्य, चरम एवं परम् लक्ष्य आत्म-विकास है। जो पीढ़ी आध्यात्मिक-विकास के नाम पर किसी धार्मिक क्रिया में आगे नहीं आ सकती, वह पीढ़ी क्या तो देश-सेवा करेगी और क्या समाज-सेवा करेगी ?

आज मूल आवश्यकता इस बात की है कि व्यक्ति अपनी मर्यादाओं में दृढ़ रहकर अपना, अपनी आत्मा का विकास करे, दूसरों का भी रक्षण करे। अपने को अभय दे, दूसरों को भी अभय दे। आज तो शरीर को सुख देने का लक्ष्य प्रधान बन गया है जबकि पहले आत्मा को सुख देने, उसे सुखी बनाने का लक्ष्य ही प्रमुख था। शरीर को कष्ट देकर, शरीर के लिए आए

कष्टों को भी सहन कर आत्म-विकास का लक्ष्य रखना ही साधक के लिए श्रेयस्कर है। परीषह के रूप में समभाव पूर्वक कष्ट सहन करने का विषय आपके समक्ष है।

पूज्य श्री शोभाचंद्र जी महाराज मोती चौक, पेटी के नोहरे (जोधपुर) में विराजमान थे, गुरुवर्य पूज्य श्री हस्तीमलजी म.सा. उस समय केवल 12 वर्ष के थे। प्रासुक, अचित्त जल के लिए उस उम्र में वे सुनारों की घाटी पर जाते। आज अवस्था तरुण है, सामर्थ्य भी है पर पुरुषार्थ कमजोर हो रहा है। पुरुषार्थ करने की मनोभिलाषा समाप्त होती जा रही है। श्रमण का, श्रावक का जीवन मर्यादाओं के घेरे में घिरा होता है। मर्यादा-पालन में रहनी चाहिए दृढ़ता। आचार-पालन में आवश्यक है सात्त्विकता की। आज न मर्यादा है, न सात्त्विकता।

विक्रम सम्वत् 1707 का प्रसंग। पीपाड़ का राता उपाश्रय। यति हीरजी के संग उनके शिष्य बनकर यति जीवराज जी घूमते-घूमते पीपाड़ पहुँचे। राता उपाश्रय में विराजमान हुए। ज्येष्ठ कृष्णा पंचमी का दिन था। यति जीवराजजी के उपवास था। आकाश में सूरज आग बरसा रहा था, धरती का कण-कण जैसे सुलग रहा था। हवा स्थिर, जैसे वह विद्यमान थी ही नहीं। उपाश्रय पुराने पत्थरों से निर्मित, दीवारें शीघ्र और तेज गर्म हो गई। उपाश्रय के नीचे का हिस्सा उमस, तपिश, गर्मी से जला जा रहा था। जीवराज जी यति को प्यास लगी, प्यास बढ़ने लगी, होठ सूखने लगे। कंठ जैसे बाहर आने को हो गया, जी बहुत अधिक घबरा गया। वे अपने गुरु के पास पहुँचे और बोले-''गुरुदेव! जी घबरा रहा है, कंठ सूख रहा है, प्राण कंठ में आ रहे हैं। बताइए मैं क्या करूँ?''

आठ कर्मों में सबसे सबल है मोह। सभी कर्मों का राजराजेश्वर मोह है। त्यागियों को भी चेले-चेली का, श्रावक-श्राविकाओं का मोह है। गुरु भी

आ गए चेले के मोह में। सोचा-''यह मेरा शिष्य प्रज्ञावान है, पुण्यवान है, शासन को दिपाने वाला है। इसे रात्रि में प्यास लग गई है। हमारा नियम रात्रि में चौविहार-त्याग का है, पर यदि इसके प्राण निकल गए तो·····।'' यही सब विचारते-चिंतन करते गुरु ने शिष्य से कहा-''यदि प्यास सहन करने की सीमा से बाहर हो गयी है तो जा और कहीं से पानी पी आ। सवेरे सूर्योदय हो तब प्रायश्चित्त ले लेना। भूलना मत।''

प्यास के मारे बुरा हाल, गुरु-आज्ञा, फिर क्या था? शिष्य चला पानी पीने। चलने से पूर्व चिंतन प्रारम्भ हुआ, कदम उठकर उपाश्रय से बाहर निकले, तब तक तो चिन्तन पराकाष्ठा पर। मैं साधु, पंचमहाव्रतधारी, रात्रि में आहार-पानी का त्यागी। मैं छः काया का प्रतिपाल, कुव्यसनों का त्यागी, शुद्ध ब्रह्मचर्य-पालक। मैं बाह्य और आभ्यंतर तप को धारण करने वाला, अठारह पापों का त्यागी, बावीस परीषहों को समभावपूर्वक सहने वाला। प्यास भी तो परीषह ही है। धिक्कार है मुझे जो मैंने अवांछित की वांछा की। मेरे गुरूदेव भी तो कैसे हैं? कहते हैं-'जा, पानी पी ले।' कहीं व्रत-भंग करके पानी पिया जा सकता है। यह कैसी आज्ञा? फिर तो कभी भविष्य में कुछ और परिस्थिति उत्पन्न होने पर आचार की शिथिलता में समय नहीं लगेगा। इस तरह चिंतन की धारा बह निकली। सूर्योदय होने से पूर्व प्रतिक्रमण किया। सूर्योदय के पश्चात् अपने वस्त्र-पात्र समेटे। गुरु के समीप आया। विनम्रतापूर्वक कहा-''गुरुदेव! मैं जा रहा हूँ।''

''कहाँ जा रहे हो, जीवराज?''

''कहीं भी चला जाऊँगा। आपको सदा-सदा के लिए छोड़ रहा हूँ।''

''अरे! यह एकदम मुझे छोड़ने की बात कहाँ से आ गई? क्या हो गया है तुम्हें?''

आपको मैंने गुरु बनाया। आपने संयम पालन के लिए मुझसे मेरा घर छुड़वाया, परिवार छुड़वाया। आज तीव्र प्यास की स्थिति में आप जल लाने की बात कह कर मेरी मर्यादा तुड़वाना चाहते हैं, व्रत-भंग करवाना चाहते हैं। मैं संयम-भ्रष्ट बनूँगा, मेरा आत्म-विकास अवरूद्ध हो जाएगा। मेरा दुर्लभ मानव-जन्म बिगड़ जाएगा। मैं संयम, नियम छुड़ाने वाले, जन्म बिगाड़ने वाले गुरु के पास नहीं रहना चाहता।

''गुरुवर! आपको तो यह चाहिए था कि आप मुझे धर्म में, संयम-नियम में दृढ़ करते। आपको तो कहना चाहिए-हे शिष्य! मानव जीवन कितनी बार मिला है, कितनी ही बार मिलेगा। यह धर्म, यह संयम, यह चारित्र, यह आराधकपन अति दुष्कर है। प्राण भले ही जाएँ, पर धर्म से, नियम से डिगो मत। सिद्धान्तों, मर्यादाओं को छोड़ो मत। जिस पथ पर कदम रखा है, घबराकर उससे विचलित मत होओ।''

''गुरुवर! प्यास का कैसा दुःख? दुःख तो मैंने क्या-क्या नहीं देखे? तिर्यंच गति में कितनी-कितनी प्यास सहन की है? बचपन में छोटा था, सर्दी में ओढ़ने का कपड़ा हट गया वह भी दुःख देखा।''

''आपको तो कहना चाहिए था-जीवराज! घणी गई, थोड़ी रही, अब तो लगभग तीन घंटे ही रात बाकी है। थोड़ा समय ध्यान में लगा, थोड़ा स्व-चिंतन, स्वाध्याय कर और रात्रि व्यतीत कर दे।''

यह कहकर जीवराज जी यति उस राता उपाश्रय से निकल आए। उन्होंने सदा-सदा के लिए अपने गुरु को और यति मान्यता को छोड़ दिया। आगे जाकर वे महान् क्रियोद्धारक आचार्य बने। यह है परीषह-जय की बात। आत्मशांति के लिए परीषह-विजयी बनना आवश्यक है, इसके लिए पूर्ण पुरुषार्थ करना पड़ेगा, स्वावलम्बन के पथ पर अग्रसर होना होगा।

कल एक भाई आया। वन्दना की। मुँह में गुटखा था। मैंने पूछा–यह क्या ? बोला–''बाबजी ! संगत का फल है, जर्दा खाने लगा, अब यह छूटता नहीं है। रोटी तो छूट सकती है, जर्दा नहीं छूट सकता।'' समझाया उसे, योग सुंदर था, मान गया। जर्दा नहीं खाने का संकल्प ग्रहण किया। बाद में कभी दर्शन करने आया तब बोला–गुरु कृपा से जर्दा छूट गया।

जर्दा ही क्या, उस कृपा से घर भी छूट सकता है। अनेक का छूटा है, अनेक छोड़ रहे हैं और अनेक का छूटेगा। अगर नहीं छूटेगा तो जिनशासन चलेगा कैसे ? बुरी आदतों, कुव्यसनों को छोड़िए। नए-नए नियम ग्रहण कीजिए। संयम के प्रति, संसार छोड़ने के प्रति अपने पुरुषार्थ में बढ़ोतरी कीजिए। यदि ऐसा करेंगे तो चरम एवं परम लक्ष्य की ओर बढ़ सकेंगे।

18

धर्मशीला नारियों का गुरुतर दायित्व

तीर्थङ्कर भगवान महावीर की आदेय-अनुपम वाणी संसार सागर से तारने वाले धर्म को दो प्रकार का बताती है-

धम्मे दुविहे पण्णते तं जहा सुय धम्मे चेव चारित्त धम्मे चेव।

धर्म दो प्रकार के हैं-एक श्रुत धर्म और दूसरा चारित्र धर्म। एक विचारों में पवित्रता लाता है, दूसारा आचार को निर्मल बनाता है। एक अपने समान दूसरों को समझने की प्रेरणा करता है तो दूसरा सबके प्रति समता भावना की वृद्धि करता है। एक स्वाध्याय रूप है तो दूसरा सामायिक रूप।

आज तक जितने महापुरुष गाये गये हैं, स्मरण किए गए हैं और भविष्य में जितने भी स्मरण किए जायेंगे; वे धन से नहीं, रूप से नहीं, सत्ता से नहीं, सुन्दरता से नहीं, बल्कि इसी सामायिक से, समता से, साधना से याद किये जा रहे हैं, याद किए जायेंगे।

आज इसी साधना का सम्मेलन है। आप आज के सम्मेलन को श्राविका सम्मेलन कह रहे हैं। मुझे कहना है-यह साधना का सम्मेलन है।

इकट्ठे होने से सम्मेलन नहीं कहलाता। इकट्ठे तो जानवर भी होते हैं। उनका इकट्ठा होना 'समूह' कहलाता है, झुण्ड भी कह सकते हैं, किन्तु सम्मेलन नहीं। क्यों ? तो सम्मेलन गुणों का होता है। जिस समूह में ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप की वृद्धि हो वह सम्मेलन है।

आप नारी हैं। आप अपने अतीत को जानें तो ज्ञात होगा कि इस अवसर्पिणी काल में मोक्ष का उद्घाटन करने वाली माता मरुदेवी भी एक नारी थी। नारी ने ही मोक्ष जाने में पुरुष से पहले भूमिका निभायी। इसलिए कहा जाता है कि नारी पुरुष से पीछे नहीं, आगे है। माता मरुदेवी अतीर्थ सिद्धा कहलाती है, क्योंकि तीर्थङ्कर ऋषभदेव के द्वारा तीर्थ की स्थापना करने से पूर्व ही वह सिद्ध बन गई थी। इन्हीं गुणों के कारण देव-देवेन्द्रों के द्वारा तीर्थङ्करों के पहले तीर्थङ्करों की माता को नमस्कार किया जाता है। तीर्थङ्करों की जन्मदात्री होने से भी उन्हें नमस्कार किया गया है। नारी अपने गुणों के कारण वन्दनीय है, स्मरणीय है।

नारी जगत्-जननी है, विश्व-विधात्री है, शक्ति सम्पन्न है। वह वात्सल्य और ममता की मूर्ति है। उसके एक नहीं अनेक रूप हैं। वह माता के रूप में भी है, पत्नी के रूप में भी है, बहन के रूप में भी है, सासू और बहू के रूप में भी है। उसके कितने ही रूप हैं। वह देवी के रूप में भी है तो राक्षसी और नागिन के रूप वाली भी है। लक्ष्मी, चक्रेश्वरी, पद्मावती जैसी देवियाँ शक्ति का स्रोत हैं तो कैकेयी जैसी माता द्रोह एवं ईर्ष्या का पुंज है।

वात्सल्य और ममता के कारण कोई नारी माता का रूप धारण करती है तो वह पति की धर्मसहायिका बनकर पत्नी का रूप ग्रहण करती है। नारी में दुर्गा का प्रचण्ड रूप भी है तो सरस्वती जैसी भद्रता भी। झाँसी की रानी भी एक नारी थी, राजीमती भी एक रानी थी। राजीमती ने पथभ्रष्ट होते रथनेमि को संयम में दृढ़ किया था। वह युद्ध की वीरांगना भी है तो संयम पथ की

नायिका भी। ऐसी भी नारियाँ हुई हैं, जिन्होंने पुत्रों को पालना झुलाते-झुलाते वैराग्य का उपदेश दिया। मदालसा जैसी माताएँ इसका उदाहरण रही हैं। एक माता भद्रा थी, जिसने अपने पुत्र अरण्यक को संयम मार्ग से विचलित होता देखकर उसे संयम मार्ग में स्थिर किया। गोरां धाय, पन्ना धाय जैसी माताओं ने उच्च मूल्यों के लिए त्याग एवं समर्पण किया। चन्दनबाला एवं उसकी माता जैसी नारियों ने सतीत्व की रक्षा के लिए प्राणों की परवाह नहीं की। कहते हैं इस अवसर्पिणी काल में 16 सतियाँ हुई हैं। इनका सतीत्व प्रसिद्ध रहा है। सतीत्व का पालन करने वाली नारियों की कमी नहीं। ऐसी भी पतिव्रता नारियाँ हुई हैं जिन्होंने नरक में जाते हुए पति को धर्म का साज देकर स्वर्ग का अधिकारी बना दिया। मदनरेखा का नाम आपके ध्यान में है। पत्नी-मोह में उलझे युगबाहू को मदनरेखा ने कितनी सुन्दर बात कही-

''न मैं आपकी थी, न हूँ। इस समय आपका कोई साथी है तो वह धर्म है वीतराग देव, निर्ग्रन्थ गुरु आपके सहायक हैं। मेरे रूप के कारण आपको तलवार का वार झेलना पड़ा।''

मैं किस-किस नारी की बात करूँ। माता रूपादेवी ने बालक हस्ती को, माता सुंदर देवी ने अमरचन्दजी को वैराग्य का संदेश दिया। मैं सबका नाम नहीं गिना सकता; जिनशासन की सेवा में माताओं का बड़ा योगदान रहा है। अनेक नारियाँ स्वयं साध्वाचार के मार्ग पर आरूढ़ हुई हैं।

आज श्राविका सम्मेलन हैं। आप शीलवती हैं, सदाचारी हैं, संस्कारित हैं तो आपका जीवन सार्थक है।

मैं ये बातें इसलिये याद दिला रहा हूँ कि आप अपने गौरवशाली अतीत को सुनकर अपने स्वरूप को समझें। यह तन खाने-पीने के लिए नहीं है, यह तन ऐश-आराम के लिए नहीं है, यह तन संसार के भोग भोगने के लिए

नहीं है। घर संभाल लेना, आँगन धो लेना, पोंछे लगा लेना, बर्तन चमका लेना ही आपका काम नहीं है। यह तन जीवन निर्माण के लिए है। यह तन गुण उत्पन्न करने के लिए है। यह तन आत्मा की, धर्म की और वीतराग शासन की सेवा के लिए भी है। आप चाहे सेठ-साहूकार की पत्नी हों, या मंत्री की, इससे कोई अंतर नहीं आता। चक्रवर्ती की पत्नी बन जाय तो नरक में जाना पड़ता है। धन से, आभूषण से, परिवार से, नारी की महिमा नहीं है। चक्रवर्ती की पत्नी की एक हजार देवता सेवा करते हैं, परंतु क्या वह इतना पाकर भी अपना नरक बचा सकती है ?

आपका तन शादी करने, सन्तान उत्पन्न करने और भोग भोगने के लिए नहीं है। आपने तन पाया है तो सामायिक, स्वाध्याय, साधना और सेवा करके जीवन को शुद्ध-बुद्ध और मुक्त बनाना है। आपको शील का महत्त्व समझना है। शील के साथ रहने से हनुमान जैसा पुत्र पैदा हो सकता है। आप शील धर्म की रक्षा में सजग रही तो ईर्ष्या नहीं होगी, पड़ौस में जाकर लड़ाई-झगड़ा नहीं करेंगी। शील के कारण आपका नाम पुरुष के आगे लिखा जाता है जैसे राधेश्याम, सीताराम आदि।

मैंने बचपन में सुना है-सूखने को समुद्र सूख जाता है, किन्तु माँ की ममता नहीं सूखती। जन्म नहीं दिया फिर भी देखने मात्र से ममत्व के कारण माता के दूध की धारायें छूट गईं। आप याद करें देवानंदा को। उसने महावीर को जन्म नहीं दिया, पाला-पोसा नहीं, परंतु ममत्व एवं वात्सल्य भाव उसमें मौजूद था। इसीलिए दूध की धारा छूटी। आगे बढ़ूँ-यही ममता समता में परिवर्तित हो गई। देवानंदा ने संयम ग्रहणकर लिया। देवानंदा एवं देवकी की बात आपने सुनी है। है कोई ऐसी माता जो पुत्र को संयमी देखकर स्वयं संयम धारण कर ले। अगर आप माता हैं तो अपने लाल को अच्छे संस्कार दें। उसे

समता सिखायें। संस्कार धारिणी ने दिये थे–'बेटी! तुम्हारा लक्ष्य मोक्ष है। मोक्ष पाना चाहो तो संयम श्रेष्ठ मार्ग है।'

आज आप अपने बच्चों को कैसे संस्कार दे रही हैं, इस पर जरा चिन्तन करिए। ऐसी–ऐसी माताएँ है जो गोद में रही बच्ची से पूछती हैं–बेटी! तेरे दूल्हा काला लाऊँ या गोरा? मैं पूछता हूँ, क्या वे माताएँ उस बच्ची के जीवन को संस्कारित कर रही हैं? आप मातृशक्ति हैं तो अपने बच्चों को ज्ञान–दर्शन–चारित्र का महत्त्व समझायें। 'जननी जने तो ऐसा जन, के दाता के शूर।' आपके लाल आपको पूजादें, ऐसे संस्कार दें। माता त्रिशला ने संयम नहीं लिया, परन्तु भगवान महावीर गाये जाते हैं। उन्हीं के कारण माता त्रिशला को भी याद किया जाता है। जो राम को याद करेंगे वे कौशल्या का भी नाम लेंगे।

आप शीलवती हैं तो तिरने–तारने में अपनी भूमिका निभा सकती हैं। आपने पुत्र उत्पन्न किया, पर उसे संस्कारित नहीं किया तो आपका पुत्र कहीं आपकी नाक काटने वाला न बन जाये, इस पर जरा विचार करें। वह कहीं आपकी प्रतिष्ठा पर धब्बा लगाने वाला न बन जाये। इसलिए रोज गहनों को चमकाने की बजाय अपने इन चेतन रत्नों को संस्कार देने की कोशिश में पीछे नहीं रहें। आपने अगर अपने एक भी लाल को संस्कार दे दिये तो आपका सम्मेलन सार्थक हो जायेगा। अन्यथा होंठ लाल करने से, नाखून लाल करने से, रंग–बिरंगे कपड़े पहनने से और आगे बढ़कर कहूँ तो माटी की गणगौर की तरह से सज जाने मात्र से आपकी पूजा नहीं होगी। आपको अपनी प्रतिष्ठा बढ़ानी है तो शील से शृङ्गार कीजिये।

आज पुरुष आपका जितना दुश्मन नहीं उससे अधिक नारी ही नारी की दुश्मन है। आज क्यों नारी आत्म–हत्या करने पर विवश है? तुम अपने

घर से क्या लायी ? ऐसा कहने वाली भी नारी है। आज जितनी प्रतिशोध की भावना उत्पन्न हो रही है, उसके पीछे भी नारी का हाथ अधिक है। आप आगे बढ़ना चाहें तो संस्कारों में आगे बढ़ें, गुणों में आगे बढ़ें, व्रत-नियमों में आगे बढ़ें, शील में आगे बढ़ें। आपका यह सम्मेलन, आपका यह मिलन जागरण का कारण बने।

गुणों से आत्मा की शोभा है। आप अगर क्रोध में आ गई तो आपको राक्षसी कहा जायेगा। वासना में आ गई तो आप नरक का द्वार कहलायेंगी। माया में आ गई तो मिथ्यात्व में चली जायेंगी। दुर्गुणों से आपका अपना पतन तो होगा ही, किन्तु पीहर और ससुराल दोनों को बदनाम करने वाली भी बन जायेंगी।

आप घर के आँगन को चाहे जितना धोलें उसमें रज आने ही वाली है। आँगन में पैर ही रखे जायेंगे। आप चाहे जितने इत्र के फुहारें लगा लें, कानो में ठेठी ही निकलेगी।

श्राविकाओं से, माताओं से, नारियों से मेरा कथन है कि आप हमेशा धर्म में आगे रही हैं। महावीर प्रभु के शासन में सन्त कितने और साध्वियाँ कितनी ? श्रावक कितने और श्राविकाएँ कितनी ? सन्तों से साध्वियों की एवं श्रावकों से श्राविकाओं की संख्या अधिक ही रही है। सन्त 14 हजार थे तो साध्वियाँ 36 हजार। श्रावक 1 लाख 59 हजार थे तो श्राविकाओं की संख्या 3 लाख 18 हजार थी। भगवंत की भाषा में कहूँ-मिथ्यात्वी को सम्यक्त्वी बनाने वाली भी माताएँ हुई हैं। शिकार करने वाले श्रेणिक को महासती चेलना ने रास्ता बताया। प्राण लेने वाले कोणिक को संस्कार देकर पिंजरा तुड़वाने वाली भी माता ही थी।

आप श्राविका सम्मेलन में आई हैं तो खुद ज्ञानार्जन में आगे बढ़ें।

स्वयं को ज्ञान होगा तो आप अपने बच्चों को ज्ञानाभ्यास में आगे बढ़ा सकेंगी। कहीं किसी बात का खण्डन-मण्डन करना हुआ तो कर सकेंगी। आप ज्ञान का बल बढ़ायेंगी तो आपका जीवन बनेगा और आपके कारण घर-परिवार में संस्कार सृजित होंगे।

आप माता हैं, तो धर्मपत्नी भी हैं। धर्मपत्नी हैं तो अपने पति को धर्म-मार्ग में आगे बढ़ाने वाली भी आप ही हैं। भगवंत फरमाते थे-कई ठकुराइनों ने ठाकुरों का माँस खाना छुड़वा दिया। आप धर्म की एवं नीति की ज्योति परिवार में जगा सकती हैं। सौ गुरुओं की शिक्षा से भी अधिक शिक्षा एक माता दे सकती है।

आपका सम्मेलन गुणों का सम्मेलन बने। आपका सम्मेलन श्रद्धा का सम्मेलन बने, विनय का सम्मेलन बने। आप गुणों के वर्धन की दिशा में प्रयास करें और संस्कार देने की ओर आगे बढ़ें तो स्वयं में शान्ति का अनुभव होगा तथा परिवार, समाज एवं राष्ट्र में भी शान्ति आ सकेगी।

मदनगंज-किशनगढ़
12 सितम्बर, 1998

19

श्रावक सम्मेलन : रत्नत्रय का सम्मेलन बने

तीर्थङ्कर भगवान महावीर ने अपनी आदेय-अनमोल वाणी में संसार के जीवों का विभाग करते हुए एक सर्वश्रेष्ठ बोल रखा-

'एगे आयंभरेवि परं भरेवि'

कुछ प्राणी ऐसे हैं जो अपने आपका आत्मज्ञान से विकास करते हैं और दूसरों को भी उस विकास मार्ग में आगे बढ़ाते हैं। अनंत प्राणी ऐसे हैं जो अपने आपके बारे में भी चिंतन नहीं बना पाये हैं। वे न स्वयं के लिए चिंतन करते हैं न दूसरों के लिए ही। कुछ ऐसे हैं जो अपने आपके लिए तो सोचते हैं, किन्तु दूसरों के लिए चिंतन नहीं करते। कुछ ऐसे हैं जो दूसरों का चिंतन करते हैं, परंतु अपने आपको भूल जाते हैं।

श्रेष्ठ और सर्वोत्तम वे हैं जो अपने आपका विकास करने के साथ दूसरों को इस मार्ग में जोड़ते हैं। ऐसे ही श्रावकों का आज सम्मेलन होने जा रहा है। आपके संघ का नाम है-'रत्न हितैषी श्रावक संघ।' आप सम्मेलन के प्रयोजन से एकत्रित हुए हैं तो इसके नाम के एक-एक पद का चिंतन करिए।

'रत्न' क्या है ? 'हितैषीपन' क्या होता है ? 'श्रावक संघ' क्या है ? संसार के रत्नों से तो आप परिचित हैं। आध्यात्मिकता के रत्न हैं-ज्ञान, दर्शन और चारित्र।

आज आपको चिंतन करना है-ज्ञान में आप कितना विकास कर पाये हैं ? गत वर्ष से लेकर इस वर्ष तक में ज्ञान का कितना अर्जन किया ? क्या नया ज्ञानाभ्यास किया ? सीखे ज्ञान पर कितना आचरण हुआ ? आपको इस पर चिंतन करना चाहिये।

आप श्रावक हैं, श्रावक सम्मेलन में भाग लेने आए हैं। श्रावक कौन ? श्रावक वह भी होता है जो अपने ज्ञान के माध्यम से एक नहीं अनेक संतों को समझा कर सही मार्ग पर ले आए।

मैं आज देखता हूँ-सुज्ञ श्रावक छोटे संतों के पास आते हैं। मांगलिक तो माँग लेते है, परंतु कितने श्रावक ऐसे हैं जो छोटे संतों के पास बैठकर पूछते हैं-''महाराज! आप क्या सीख रहे हैं ? जिन्हें आप नमनीय-वन्दनीय मान रहे हैं, क्या आप उनकी ज्ञान-साधना में सहयोगी हैं ?''

आचार्य भगवन्त ने सामायिक-स्वाध्याय का आघोष किया। विक्रम सम्वत् 2002 से इस आघोष की दुन्दुभि बज रही है। मैं हितैषी श्रावक से पृच्छा करूँ-52 वर्षों से आपके धर्माचार्य-धर्मगुरु जिस उद्घोष का नाद कर रहे हैं क्या आपने उस स्वाध्याय को जीवन में अपनाया है ? यदि नहीं तो आप उनके भक्त कैसे ? कैसे हैं आप श्रावक ?

आज श्रावक-सम्मेलन है और उसमें भाग लेने के लिए आप यहाँ आये हैं, इसलिए आपको चिंतन करना है कि आप हितैषी श्रावक संघ के सदस्य किस प्रकार हैं। आपका यह सम्मेलन राजनैतिक पार्टी का सम्मेलन नहीं, अर्थनीति का सम्मेलन नहीं, रिश्तेदारों से मिलने का सम्मेलन भी नहीं, और न

यह शादी-विवाह जैसा कोई सामाजिक सम्मेलन है। आपका सम्मेलन श्रावकों का सम्मेलन है। ज्ञान-दर्शन-चारित्र में कितना विकास हुआ, कितने आगे बढ़े, भावी योजना क्या है, इन बातों पर चिंतन-मनन करने का सम्मेलन है।

अभी प्रमोदमुनिजी ने संघ क्या होता है, उसकी कुछ रूपरेखा आपके समक्ष रखी। आप व्यक्तिगत रूप से क्या कर रहे हैं, इसके साथ ही संघ के लिए क्या कर रहे हैं, यह चिन्तन भी आवश्यक है। आप यहाँ आकर खाने-पीने की चर्चा करें, वेश-भूषा की चर्चा करें तो कहना चाहिये, अभी आपने संघ और उसके स्वरूप को समझा ही नहीं। आप सैंकड़ों की संख्या में यहाँ उपस्थित हुए हैं। आप हितैषी संघ के सदस्य हैं। अतः प्रतिज्ञा कीजिये-आप स्वयं अपनी दिनचर्या स्वाध्याय से प्रारम्भ करेंगे और चतुर्विध संघ में ज्ञान-दर्शन-चारित्र बढ़ रहा है या नहीं इसका चिन्तन करेंगे। आप स्वयं ज्ञानवान बनिये, श्रद्धावान बनिये और चारित्र में चरण बढ़ाने को तत्पर रहिये। ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना के प्रति आप में रुचि होगी तो आप संत-सतीवृन्द के श्रीचरणों में उपस्थित होने पर उनसे पृच्छा कर सकेंगे एवं अपने ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र में भी अभिवृद्धि कर सकेंगे। आप संतों के जीवन में सहयोगी तब ही बन सकेंगे जबकि आप स्वयं सिद्धान्तों के जानकार होंगे। अगर सिद्धान्तों की आपको जानकारी नहीं होगी तो आप संघ का एवं अपना हित नहीं कर पायेंगे।

जिस महापुरुष (आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा.) ने जैनधर्म का इतिहास रचा, एक-एक निक्षेप को लेकर सिद्धांत की बात सामने रखी और कहा कि हम गादी के पुजारी नहीं हैं, हम वेश के पुजारी नहीं हैं, हम नाम के पुजारी भी नहीं हैं, हम गुणों के पुजारी हैं। आप इस सिद्धान्त को जानेंगे ही नहीं तो सिद्धांत-रक्षण में सहभागी कैसे बनेंगे ? सिद्धांत नहीं जानने के कारण यहाँ आने वालों में कहने वाले कह देते हैं-महाराज ! हम निमाज जाकर आए

हैं। क्या था वहाँ ? क्यों गये ? क्या वहाँ कोई ज्ञान की प्रेरणा देने वाला था ? मैं ठीक कह रहा हूँ–अगर आपने स्थान–विशेष को महत्त्व दिया तो संतों का महत्त्व घट जायेगा। नाम के प्रति या स्थान के प्रति श्रद्धा होगी तो फिर संत श्रद्धा के पात्र नहीं रहेंगे। आप स्वाध्याय के माध्यम से ज्ञान का अर्जन कीजिये। श्रावक सुबुद्धि ने जितशत्रु राजा को जगा दिया। किसके बल पर जगाया ? कहना होगा–उसके पास ज्ञान का बल था। पुद्गल परिवर्तनशील है। उसके वर्ण, गंधादि बदलते रहते हैं। उसमें सुगन्ध भी है, दुर्गन्ध भी है। संत जगायें इसमें कोई आश्चर्य नहीं, श्रावक जगा सकता है। कब ? जब उसमें ज्ञान का बल हो।

जरा चिंतन करें। आप सम्मेलन में एकत्रित हुए हैं तो ज्ञान के साथ क्रिया का रूप भी सामने रखें। आपने इस विषय पर चिन्तन–मनन नहीं किया तो फिर सम्मेलन किस बात का ? क्या सम्मेलन केवल आय–व्यय का हिसाब करने के लिए है ? आप श्रावकरत्न हैं। आपका एक–एक रत्न क्या–क्या कर रहा है उस पर भी इस सम्मेलन में कुछ विचार किया जाना चाहिये। **सिद्धांत–रक्षण में संघ के प्रत्येक व्यक्ति का समर्पण होना चाहिये। जब तक ज्ञान का विकास नहीं होगा, तब तक सिद्धांत–रक्षण नहीं होगा और जहाँ सिद्धांतों का रक्षण नहीं होगा वहाँ मिथ्यात्व का पोषण रहेगा।** आप हितैषी श्रावक संघ के सदस्य हैं इसलिए आप संकल्प करें कि चौबीस घंटों में पन्द्रह मिनट स्वाध्याय के लिए जरूर निकालेंगे।

मैं आपको अति आवश्यक कर्त्तव्य कह रहा हूँ। आज भी ऐसी परम्पराएँ हैं ऐसे गाँव हैं, ऐसी जातियाँ हैं जहाँ बिना स्वाध्याय किए अन्न–जल ग्रहण नहीं किया जाता। आचार्य भगवन्त ने अनुभव किया–**संत कम रह गए हैं तो सन्तों की पूर्ति स्वाध्यायी करें, समाज में ज्ञान की ज्योति प्रज्वलित होती रहे। क्या उस ज्ञान की ओर आपका चिंतन चल रहा है ?** आप

गर्दन तो हिला रहे हैं। मात्र गर्दन हिलाने से काम नहीं चलने वाला। आपको कुछ संकल्प करके चलना होगा।

दूसरा रत्न है 'श्रद्धा' का। आप सम्यग्दृष्टि बनें, सम्यक् श्रद्धावान बनें। **आप स्वयं अपने जीवन का निरीक्षण-परीक्षण करें कि हम श्रद्धा में कितने दृढ़ हैं? जब तक श्रद्धा में दृढ़ता नहीं होगी मिथ्या मान्यताएँ चलती रहेंगी।** श्रद्धा नहीं तो दिया तले अंधेरा है। आज दूसरों की बात क्या कहूँ, खुद के सपूत को समझाना कठिन हो रहा है। आचार्य भगवन्त ने एक-एक श्रावक को प्रेम से संघ के प्रति समर्पित रहने की सीख दी।

आप उस महापुरुष की सीख पर खरे उतरें। आपका संघ सदा राजनीति से दूर रहा है। कुर्सी का रत्नसंघ में कोई लालच नहीं है। राजनीति के विषय में आप खूब जानते हैं। कैसे कुर्सी हथियाई जाती है? कभी किसी को शराब पिलाकर, कभी किसी को लोभ-लालच देकर और यहाँ तक कि मरे हुए का वोट डलवा कर, पेटियाँ छीनकर भी राजनेता अपना रुतबा मानते हैं। वे उस कुर्सी के योग्य हैं या नहीं, इसकी तरफ उनका ध्यान नहीं जाता।

कुछ लोग अत्यन्त स्वार्थी होते हैं। वे अपने तक सीमित रहते हैं। ऐसे स्वार्थी लोग माता को माता, पिता को पिता, भाई को भाई और पुत्र को पुत्र भी नहीं समझते हैं। ऐसे लोग कभी सम्यग्दर्शनी नहीं हो सकते। आप तो श्रावक हैं, सम्यग्दर्शी हैं और श्रावक सम्मेलन में आए हैं तो जरा चिंतन करें- सम्यग्दर्शी कौन? **'आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पश्यति।'** अर्थात् जो अपने समान दूसरों को समझता है, महत्त्व देता है, वह सम्यग्दर्शी है।

तीर्थङ्कर भगवान महावीर कह रहे हैं-अपनी आत्मा के तुल्य सब जीवों को समझो-'आयतुले पयासु।' आप अपने आपको ही नहीं समझ रहे हैं तो सब जीवों के प्रति सर्वभूतेषु का भाव कैसे जगेगा? पहले आप अपने आपको

समझें। स्वयं को समझने वाला दूसरे जीवों के प्रति दया-करुणा का व्यवहार भी भली-भाँति कर सकता है। कबूतरों और गायों के लिए अन्न डालने वाले बहुत हैं, पर अपने ज्ञानादि गुणों की वृद्धि करते हुए आत्मिक विकास करने वाले कितने हैं? क्या महावीर प्रभु के श्रावक ऐसे ही होते हैं? जिसको आत्महित या स्वहित का ध्यान नहीं वे संतों के चरणों में आकर कभी-कभी कहते हैं- महाराज! अब तो मर भी जाऊँ तो कोई चिंता नहीं। ऐसी निश्चिंतता कैसे हुई? पूछा जाय तो कहते हैं-चार लड़के थे, सबका विवाह कर दिया, सबका व्यापार है, पत्नी के लिए पर्याप्त बैंक बैलेंस है, पुत्रियों की शादी कर दी, मैं अब निवृत्त हूँ। ऐसा कहने वाले श्रावक यह नहीं सोचते कि संसार के इन कार्यों से तुम्हारी आत्म-साधना में क्या मिला? आपने लड़के-लड़कियों के व्यापार-व्यवसाय के कार्य कर दिए। इससे आपको क्या मिला? क्या आपने अपनी आत्मा के विकास के लिए कभी कुछ सोचा है?

जब अपने आत्मिक गुणों के विकास के लिए आपका चिंतन गया ही नहीं तो आप श्रावक कैसे हुए? और आप श्रावक ही नहीं तो फिर सम्मेलन कैसा? दौलत रूपचन्द जी भण्डारी कहते थे-एक कम्पनी का विज्ञापन निकला। अमुक डिग्री वाला जिसे बीस साल का अनुभव हो वह आवेदन करे। एक व्यक्ति पहुँचा। उससे पूछा गया कि आपके पास डिग्री है? उत्तर में वह बोला-'मेरे पास डिग्री तो नहीं है। अनुभव भी नहीं है। साक्षात्कार लेने वाले ने पूछा-फिर क्यों आये? उसने जवाब दिया-'मैं तो आपसे यह कहने आया हूँ कि आप मेरे भरोसे मत रहना।'

आपसे मैं पूछूँ-आप श्रावक सम्मेलन में भाग लेने आए हैं तो आप क्या करेंगे? किसी व्रत के प्रति, नियम के प्रति, चारित्र के प्रति जब आपकी निष्ठा ही नहीं हो तो ज्ञान-दर्शन-चारित्र का प्रचार-प्रसार कैसे करेंगे?

मैं आपको विमुख होने के लिए नहीं कह रहा हूँ। मुझे कहना है-

आप श्रावक हैं और श्रावक सम्मेलन में भाग लेने आए हैं तो आपके मन में व्रत-नियम ग्रहण करने की भावना जगनी चाहिये। अगर आप ज्ञान का अर्जन नहीं करेंगे, श्रद्धावान नहीं बनेंगे, आचरण में कदम नहीं बढ़ायेंगे तो यह दिया तले अंधेरा वाली बात होगी। आप चाहे जिस पद पर बैठ जायें, ज्ञान-दर्शन-चारित्र के प्रति रुचि नहीं होगी तो सार्थक प्रयास होने वाले नहीं हैं। आप श्रावक संघ के सदस्य हैं मजबूरी में रात्रि को खाना पड़े वह बात अलग है, मगर श्रावक के मन में रात में खाने की भावना नहीं होती।

यह सम्मेलन ज्ञान बढ़ाने का है। व्रत-नियम की प्रेरणा करने का है। श्रद्धा बढ़ाने का है। संघ है तो वह गुणों का समूह होना चाहिये। आपका मिलना सार्थक तभी है जबकि आप अपने आत्मिक गुणों के साथ वीतराग भगवन्तों के वचनों पर दृढ़ रहें। मिलने को तो राजनैतिक दल भी मिलते हैं, सामाजिक संस्था के सदस्य भी मिलते हैं और मनुष्य ही नहीं जानवर तक भी मिलते हैं। मिलने को बन्दर भी मिलते हैं, हाथी भी मिलते हैं, पशु-पक्षी भी मिलते हैं उनका मिलना संघ नहीं, समूह कहलाता है।

मैं आज कुछ श्रावकों के दृष्टांत रखना चाहता था, परन्तु समय काफी हो चुका है। आप श्रावक हैं, श्रावक अनार्य को भी संस्कारित कर सकता है। चित्त-सारथी श्रावक था। उसने परदेशी जैसे अनार्य का जीवन बना दिया। एक समय था। जब दादा-दादी पोते-दोहिते को साथ बैठाते थे और उन्हें संस्कार देते थे। आज ऐसे बुजुर्ग मिल जायेंगे जो बच्चों के साथ बैठकर स्वयं टी.वी. देखते हैं। लगता है आपको अपने रत्नों का जीवन बनाने के लिए समय नहीं है।

पूज्य प्रवर्तक स्वामी श्री पन्नालालजी महाराज, स्वामी श्री चौथमलजी महाराज बचपन में, धर्म क्या होता है, जानते नहीं थे, पर श्रावकों का सहयोग पाकर उनके संस्कार विकसित हुए और उन्होंने संयम जीवन अंगीकार कर

अपने को ही नहीं, अन्य-अन्य लोगों को भी कल्याण मार्ग की ओर आगे बढ़ाया। मैं डूंगरवाल परिवार, सुराना परिवार आदि कई परिवारों की बात रख सकता हूँ, जिन्होंने संघ की उन्नति के लिए दलाली की। आप श्रावक हैं तो ज्ञान के लिए, श्रद्धा के लिए एवं चारित्र के लिए अपने कदम बढ़ायें। आपका आदर्श जीवन देखकर सन्तों को स्वतः प्रेरणा मिलेगी। आप संत-सतीवृन्द का अहंकार बढ़ायें, यह आपके लिए उचित नहीं।

आप कृष्ण और श्रेणिक की तरह दलाली कीजिये। आप सच्चे श्रावक हैं तो सन्त को चमत्कार की दृष्टि से नहीं, संत की दृष्टि से देखें। भगवान महावीर के संघ के चारों सदस्य तीर्थ हैं। तीर्थ तिरने वाला और तारने वाला होता है। आप स्वयं तिरने-तिराने में मददगार बनें। धन-परिवार-रूप-सत्ता से नहीं, गुणों से विकास करें। आप अगर गुणों से विकास नहीं करेंगे तो कहना होगा आपका सम्मेलन श्रावक सम्मेलन नहीं, धन का सम्मेलन है। संघ में वात्सल्य बढ़े, व्रत-नियमों के प्रति भावना जगे और सबको साथ लेकर गुणों में विकास करने की रुचि पैदा हो, तब तो आपका मिलना और सम्मेलन करना कुछ सार्थक कहा जा सकेगा। आप सुज्ञ हैं अतः चिन्तन-मनन के साथ आचरण का रूप सामने लायें, यही अपेक्षा है।

मदनगंज-किशनगढ़
13 सितम्बर, 1998

20

स्वयं साधना करें एवं साधकों के सहयोगी बनें

वीतराग वाणी में जितनी परम्पराएँ व सम्प्रदायें हैं वे सब आत्माभिमुखी हैं, आत्मचिंतन के लिए हैं, अपने-आपकी खोज के लिए हैं। आप सुनते हैं और जानते हैं कि बाहर में जो भी कलुषता है, राक्षसीपन है अथवा जो विपरीत प्रवृत्तियाँ नजर आ रही है वे विभाव दशा के कारण हैं। जितनी भी बुराइयाँ हैं वे बाहर के संयोगों से प्राप्त हैं, स्वयं आत्मा की विकृति की नहीं।

पानी शीतल है, स्वच्छ है, निर्मल है। वही पानी गंदा दिखाई दे तो कहना होगा-गंदगी का कारण बाहर का संयोग है। पानी में जितना-जितना बाहर का संयोग होगा, पानी उतना-उतना गंदा होगा।

पानी चाहे जैसा गंदा हो उसे किसी बर्तन में अलग से रख दिया जाय तो कचरा स्वतः धीरे-धीरे तल पर जमा हो जायेगा और कदाचित् पानी में सूखी पत्तियों का चूरा है, लकड़ी का बुरादा है, कोई हल्की वस्तु हैं तो वह पानी के ऊपरी तल पर एकत्रित हो जायेगी।

पानी गंदा क्यों हुआ ? कहना होगा-बाहर का संयोग पानी की गंदगी

का कारण है। पानी का सहज स्वभाव शीतलता है। शीतल पानी गर्म किया जा सकता है। पानी गर्म करने के लिए भी बाहर का संयोग आवश्यक है। चाहे सूर्य का ताप हो, चाहे भट्टी की ज्वाला हो अथवा चूने आदि पदार्थों के माध्यम से पानी गर्म हो जायेगा। बिना निमित्त के पानी गर्म नहीं होता। इसी तरह बिना कर्म के यह जीव गंदा नहीं होता।

इस जीव में जो भी कमजोरियाँ है, विकृतियाँ है, दुर्बलताएँ है उसके लिए बाहर के संयोग कारण हैं, अन्यथा जीव का अपना स्वभाव नहीं कि उसमें विकृतियाँ पनपें। लोग कहते हैं पानी ने जला दिया। क्या पानी जलाता है? पानी बुझाता है, जलाता नहीं। गर्मागर्म खोलता हुआ पानी भी है, उसे अग्नि पर डाला जाय तो अग्नि शांत हो जायेगी। 'पानी जलाता है' कहने पर आश्चर्य होता है। पानी की बात आपकी समझ में आती है। मुझे पानी के लिए नहीं, इस जीव के लिए कहना है।

कभी-कभी सुनते हैं-अमुक ने अमुक को मार दिया। आपने ऐसा कई बार सुना होगा, पर कभी किसी को आश्चर्य नहीं हुआ। किसी ने किसी को ठग लिया। ठगा किसने? आदमी सरलता वाला हैं, शांति वाला है, संतोष वाला है वह किसी को क्यों ठगेगा? क्या चोरी, डकैती, हत्या और लूटपाट आदमी कर सकता है?

आप बोल नहीं रहे। कोई बात नहीं। जवाब भी मैं ही दूँ? आदमी में विकृति है तो वह चोरी और डकैती ही नहीं, हत्या तक कर सकता है। आज विकृत मानसिकता वाले कई हैं। मैं कह गया बिना कर्म के यह जीव गंदा नहीं होता। विकृति के लिए संयोग जिम्मेदार है।

आपके घर का दरवाजा खुला है। घर में रूपये ही नहीं, सोने-चाँदी और हीरे-जवाहरात पड़े हैं, क्या कोई जानवर उन्हें ले जायेगा? खाने की

वस्तु होगी तो शायद जानवर मुँह मार सकता है अन्यथा जानवर उधर झाँक कर नहीं देखता। जब जानवर उधर नहीं झाँकता तो चौरासी लाख जीवयोनि में श्रेष्ठ कहलाने वाला और अनंत-अनंत पुण्यवानी से दुर्लभ संयोग मिलाने वाला अगर मानव चोरी करे, ठगे या हत्या कर दे तो उसे क्या 'मानव' कहना ? जानवर जिन निंद्य कामों को नहीं करता, मनुष्य क्यों करता है ? क्या यह मनुष्य का स्वभाव है ?

मानव का स्वभाव चोरी करना नहीं है। वह तो उसका विभाव है। विभाव है तो उसे हटाया जा सकता है, घटाया जा सकता है, समाप्त किया जा सकता है। मैं विभाव हटाने की बात क्या कहूँ, आप चाहें तो उससे भी आगे वीतरागता प्राप्त कर सकते हैं।

आपके भीतर जो भी गंदगी है उसे निकाल बाहर करो। आपने यदि भीतर की गंदगी बाहर निकाल दी तो क्या होगा ? आज आपको बाहर की गंदगी बुरी लग रही है, उसे हटाने के लिए आपका प्रयास चल रहा है। इसके लिए चाहे जितनी हिंसाएँ हों आपको विचार तक नहीं आता। मैं सफाई पसंद लोगों से पूछना चाहूँगा कि हिंसा, झूठ, चोरी, मिलावट, क्रोध, मान, माया, लोभ, अहंकार और वासना क्या आपको गंदी नहीं लगती ? आपको आँगन स्वच्छ चाहिये, कपड़े स्वच्छ चाहिये पर आत्मा स्वच्छ चाहिये, इस ओर कितनों को ध्यान है ?

आपकी नजर आत्मा की गंदगी की ओर नहीं जा रही। क्या शरीर, कपड़े आँगन की सफाई ही सब कुछ है ? मैंने कई ब्राह्मणों को देखा है जो मुँह की सफाई किए बिना पानी की एक बूँद मुँह में नहीं डालते। उनकी रसोई में प्रवेश करना हो तो स्नान करके प्रवेश किया जाता है। मैं आपसे पूछूँ-आप दाँतों और मुँह की रोज सफाई करते हैं। मंजन करने वाले मंजन से, टूथ ब्रश वाले ब्रश से सफाई करते हैं। आप एक बार नहीं, पाँच बार सफाई कर

लीजिये, पचास बार कुल्ले कर लीजिये, फिर किसी पर थूँकिए, क्या होगा ? लड़ाई तो नहीं होगी ? अरे आपने इतनी बार कुल्ले किए, फिर कैसे आपका मुँह पवित्र नहीं हुआ ?

आप चाहे जितनी सफाई कर लीजिये इस शरीर की विचित्र स्थिति है। यह शरीर गंदगी से निर्मित है, गंदा ही रहेगा। शरीर जड़ है। जड़ कहलाने वाला शरीर रक्त-माँस-वीर्य भीतर रखता है और गंदगी बाहर निकालता है। आप देख लीजिये-कान से ठेटी निकलेगी, आँख से गीड़ निकलेंगे। नाक से श्लेष्म, मुँह से पित्त, शरीर से पसीना और नीचे के भाग से मल-मूत्र निकलेगा। यह जड़ शरीर रक्त-रस-वीर्य रखता है और गंदगी बाहर निकालता है तो यह चैतन्य जीव कषाय का कचरा अपने में क्यों रखता है ? शायद चार दिन पहले क्या खाया वह याद नहीं, पर यदि बीस साल पहले किसी ने गाली दी वह आज तक नहीं भूले हैं।

याद क्या रहना चाहिये ? 'अहिंसा परमो धर्मः, सत्यमेव जयते, शीलं पर भूषणं, मातृदेवो भव' ऐसे न जाने कितने सुभाषित हैं, कितने सुन्दर वचन हैं, वे दीवारों पर लिखे तो मिल सकते हैं, जीवन में उतरे हुए शायद नहीं मिलेंगे।

हमारा लक्ष्य क्या ? क्या याद रखना चाहिए ? आप इतना सुनते-सुनते भी क्या अन्तर्मुखी बने हैं ? क्या भीतर की स्वच्छता की ओर लक्ष्य गया है ? आप चिन्तन करें कि आप बाहर में अटके हुए तो नहीं हैं ? बाहर में अटके हैं इसलिए भटक रहे हैं।

भगवान की वाणी में तीन महान् उपकारी हैं, जिनकी जीवन भर सेवा करके भी ऋण नहीं उतारा जा सकता। ठाणांग सूत्र में वर्णन आता है, आपने कभी सुना होगा कि माँ का ऋण कभी नहीं चुकाया नहीं जा सकता। मैं पूछूँ-आपमें से किसी ने अपनी माँ को छोड़ा तो नहीं ? मारवाड़ी भाषा में कहूँ-माँ रे

छाती रा छोडा तो नहीं उतारिया ? आपके कारण माँ की आँखों में कभी आँसू तो नहीं आये ?

हम आत्माभिमुखी दर्शन वाले हैं। हमारा ध्येय आत्मा से परमात्मा बनना है। इस अविचल ध्रुव की प्राप्ति के लिए आस्रव और बंध के जितने हेतु हैं, उन्हें छोड़ने की जरूरत है। आप पूरी तरह नहीं छोड़ सकते तो हम जो छोड़े हुए हैं उनको तो सहयोग दीजिये। मैं बालकेश्वर संघ से सहयोग की माँग कर रहा हूँ। आपसे पूरी तरह हिंसा नहीं छूट सकती है, तो जिन्होंने हिंसा छोड़ रखी है उनको 'अहिंसा परमो धर्मः' निभाने में सहयोग कीजिये। आपको मेरी बात अटपटी लग सकती है, किसी को बुरा भी लग सकता है। क्यों, तो आपमें से कई हैं जिन्हें गर्मी बर्दाश्त नहीं होती उन्हें मेरा कथन भारी लग सकता है।

यह साधना का मंदिर है, स्थानक है। धर्मस्थान के कुछ नियम होते हैं, कुछ मर्यादाएँ होती हैं। हम मर्यादा पालन में कमजोर हो जायेंगे तो भीतर की ओर झाँक कर क्या देखेंगे ? कुछ हैं जिनको सामायिक करते शर्ट उतारने में शर्म आती है तो क्रोध-मान-माया-लोभ अपने मन से कैसे निकालेंगे ? जब द्रव्य परिवर्तन का मन नहीं बना तो भाव परिवर्तन कैसे होगा ? भीतर में परत पर परत आये हुए कर्म को हटाने में कई अवरोधक हैं, बाधक कारण हैं जिन्हें काटने और गलाने में जोर जायेगा।

मैं एक बात और कहूँ-आप कमजोर नहीं है। भगवान की भाषा में कहूँ तो कहना होगा-''सिद्धा जैसो जीव है, जीव सो ही सिद्ध होय।'' आप शक्ति सम्पन्न हैं। जरूरत है-कर्म काटने के लिए तत्परता की। प्रयत्न कीजिये, आवरण हटाइये, इसी बात के साथ यह कहकर मैं अपनी बात समाप्त करूँ-कायरता की जितनी-जितनी बातें हैं वे हमारी नहीं है। जीव में कायरता नहीं हो सकती। यह जीव एक समय में तीन लोक पार करके उसके अग्र-भाग पर जा सकता है। चौदह राजू प्रमाण तक कौन जाता है ? यही जीव ना ?

जीव में कितनी शक्ति है, मैं सुनी-सुनाई नहीं, देखी बात कहता हूँ। मुम्बई के लोग ट्रेनों में जाते हैं, क्या वे ट्रेन में तकलीफ सहन नहीं करते ? उन्हें धर्मस्थान में कुछ कष्ट सहना भी पड़े तो भारी क्यों लगता है ? व्यवहार में आप कष्ट को कष्ट नहीं समझते, उसे सहन करते हैं तो आत्मा से परमात्मा बनने के इस मार्ग में क्यों नहीं उसे सहन करते ? ट्रेनों की क्या हालत है ? शायद बकरे भी इस तरह नहीं भरे जाते। वहाँ आपको सहन करना भारी नहीं लगता, यहाँ क्यों लगता है ?

भगवान महावीर ने कहा-''धर्मस्थान में सचित्त वस्तु नहीं आनी चाहिए। यह पाप छोड़ने का स्थान है। क्या यहाँ एक घंटे बैठने के लिए पंखा आवश्यक है ? इतनी विवशता क्यों ?''

मैं चिन्तन का विषय दे रहा हूँ। जब हम सेल की घड़ी वाले को छूने के लिए मना करते हैं तो बिजली के लिए आपको स्वयं सोचना है। वायुकाय के जीवों की विराधना न हो इसके लिए मुँहपति और इधर पंखा चले तो क्या यह नाटक नहीं ? ऐसा करना धर्म की धज्जियाँ उड़ाना तो नहीं ? ऐसा करके हम दूसरों की नजर में धर्म को गिरा तो नहीं रहे ? आप चिन्तन कीजिये-धर्मस्थान, पापस्थान नहीं होना चाहिये।

कदाचित् इतनी सूक्ष्मता से आप अपना जीवन न ढाल सके तो भी हमको सहयोग दीजिये। क्यों, तो गृहस्थ के सहयोग के बिना संयमी का संयम-जीवन नहीं चल सकता। हमारी साधना में आपका सहयोग होगा तो हम साधना कर पायेंगे। आपने निर्णय करके संतों को निमंत्रित किया है तो उनकी साधना की निर्मलता में सहयोग चाहिये। ऐसा करके आप शासन की प्रभावना में योगदान कर सकते हैं और आप भी निर्जरा के भागी बन सकते हैं।

बालकेश्वर-मुम्बई
18 जुलाई, 2002

21

बुभुक्षुत्व है व्यसनों का कारण

तीर्थङ्कर भगवान महावीर की आदेय-अनमोल वाणी में संसार के समस्त जीवों के दो भेद किये गये। एक-आठ कर्मों का क्षयकर ध्रुव-शाश्वत स्थान पर विराजमान सिद्धों का तो दूसरा-कर्म-बंधन में भव-भ्रमण करने वाले संसारी जीवों का। संसारी जीवों में भी दो भेद किये गये। एक वे प्राणी हैं जो मुमुक्षु हैं तो दूसरे वे प्राणी हैं जो बुभुक्षु हैं।

'मुमुक्षु' शब्द की परिभाषा है-**मोक्तुं इच्छुः**, जो बंधन काटकर मोक्ष की इच्छा वाले हैं उन प्राणियों को मुमुक्षु कहा गया। मुमुक्षु प्राणी विनयशील होते हैं। 'विनय' एक ऐसा गुण है जो दानवी वृत्ति हटाकर मनुष्य में दैवी भावना जागृत करता है, अनपढ़-मूर्ख को ज्ञान प्राप्त करने योग्य बनाता है, धर्म से पिछड़े व्यक्तियों को धर्म की राह दिखाता है। जैसे मेघ खारे पानी को ऊपर उठाकर मीठा बनाता है, जैसे गाय घास खाकर उसका दूध रूप में निर्माण करती है, जैसे इक्षु का ठूँठ-डंठल पानी की बून्द को मीठे रस में परिवर्तित करता है, ठीक इसी तरह जड़-अनपढ़-अबूझ-अयोग्य प्राणी को विनय योग्य बनाता है। विनय के सात प्रकार आपके सामने रखे गए। ज्ञान

विनय, दर्शन विनय, चारित्र विनय, मन विनय, वचन विनय, काय विनय और लोकोपचार विनय। विनय मन से, वचन से और काया से किया जाता है। मुमुक्षु के लिए सबसे बड़ी आवश्यकता है–विनय की। उत्तराध्ययन सूत्र के प्रथम अध्ययन में ही विनय की चर्चा है। शास्त्र के माध्यम से रखूँ–

ण पक्खओ ण पुरओ, णेव किच्चाण पिट्ठओ।
ण जुंजे उरुणा उरुं, सयणे णो पडिस्सुणे।।18।।

पद्यानुवाद की भाषा में कहूँ–

गुरुजन के आगे–पीछे ना बाजू में अड़ कर बैठे।
ना शय्या पर से उत्तर दे, ना जाँघ सटाकर ही बैठे।।18।।

विनयशील कैसे बैठे ? गुरुओं के समीप में बैठने का कौनसा तरीका होना चाहिये ? तेंतीस बोल जानने वाले जानते हैं कि शिष्य को चलना है चाहे गुरु के आगे, चाहे पीछे, चाहे बराबर वह अविनय से नहीं चले। सटकर बैठना, गोडे से गोडा अड़ाकर बैठना, अभिमान सूचक आसन से अकड़ कर बैठना अविनीत शिष्य के लक्षण हैं। वह चाहे गुरु के पीछे बैठा है, या कभी मार्ग में आगे चलने का मौका आए वह आगे चलते हुए भी गुरु की तरफ पीठ करके नहीं चले। कभी ऐसे भी प्रसंग आते हैं–गुरुदेव की नजर में कमजोरी है, काँटे–कंकड़ ठीक तरह से दिखाई नहीं देते तो शिष्य काँटे–कंकड़ हटाते हुए भी विनयपूर्वक झुका हुआ आगे चले। उसे चाहे आगे चलना हो या पीछे, वह पूरे विनय के साथ चले। कभी कोई पीछे चल रहा है, गुरुदेव किसी कारण से रुक जाये तो पीछे चलने वाला, इतना पीछे भी नहीं चले कि गुरुदेव के रुकने के साथ वह भिड़ जाय। विनय के चार सूत्र कहे हैं–

णेव पल्हत्थियं कुज्जा, पक्खपिंडं च संजए।
पाए पसारिए वा वि, न चिट्ठे गुरुणंतिए।।19।।

बैठे नहीं बाँध कर पालथी, पक्ष पिण्ड से भी न कहीं।
गुरुजन के सम्मुख अविनय से, मुनि पाद प्रसारण करें नहीं।।19।।

कहते हैं–गुरु के समक्ष कपड़े से घुटने बाँधकर बैठना, पाँव पसार कर बैठना भी अविनय है। बिना विशेष स्थिति के गुरु नीचे और चेला ऊपर नहीं बैठे। हाँ कोई लाचारी है, मजबूरी है, शारीरिक विशेष कारण है वह बात अलग है। गुरु–चरणों में निष्कम्प, दृढ़ आसन से चंचलता रहित होकर बैठे। धर्मस्थान में प्रवेश करने वाला भी हाथ जोड़कर प्रवेश करता है तब शिष्य को तो नम्रता से करबद्ध होकर बैठकर विनयशीलता का परिचय देना चाहिए। मैंने ऐसे–ऐसे शिष्य भी देखे हैं, जो जब तक गुरु से कुछ श्रवण करते रहेंगे, हाथ जोड़े–जोड़े ही घंटे भर बैठे रहेंगे। शिष्य चाहे सामने हैं, पीछे या आजू–बाजू में है झुककर बैठता है तो आने–जाने वालों को सहज ज्ञात हो जाता है कि गुरु कौन है और शिष्य कौन? आने वालों को बड़ा–छोटा पूछने की जरूरत नहीं पड़ती। यह कब होता है? जब भीतर में विनय हो।

संसार में अविनय की स्थिति का वर्णन करने की जरूरत नहीं। आप जानते हैं, देखते भी हैं कि पिता कहाँ, पुत्र कहाँ, शिक्षक कहाँ, विद्यार्थी कहाँ, मालिक कहाँ, नौकर कहाँ? अचम्भा आता है जब लोगों को अपना नाम पहले और पिता का नाम बाद में कहते सुनता हूँ। महाराष्ट्र में यही रिवाज है। यहाँ बेटे का नाम पहले है, बाप का बाद में। ऐवन्ता जब गौतम से पूछता है–भगवन्! आप कौन? जवाब क्या था? यह नहीं कहा कि मैं चौदह पूर्व का ज्ञाता, चार ज्ञान का धारक, छत्तीस हजार साधुओं का मुखिया हूँ। गौतम स्वामी ने कहा–मैं तीर्थङ्कर भगवान महावीर का अन्तेवासी शिष्य इन्द्रभूति गौतम हूँ। इसमें क्या झलकता है? यह तो मैं मुमुक्षुओं की बात कह रहा हूँ।

आज रविवार है। आपमें मुमुक्षु भाव जगे इस हेतु विनय की बात बता गया। मुमुक्षु के अलावा अधिकतर जीव बुभुक्षु होते हैं। बुभुक्षु कौन?

भोक्तुं इच्छुः बुभुक्षुः ।

इसका अर्थ किया जाय तो जो भोगने की इच्छा वाला है वह बुभुक्षु है। एक दृष्टि से कहूँ-संसार के सारे जीव भोगी हैं। भोक्तुं इच्छु : अर्थात् जिनके भोगने की इच्छाएँ असीम हैं। खाने वाला कितना खायेगा ? पाव-दो पाव। कोई मथुरा का चौबे भी है तो सेर खा लेगा, पाँच सेर खा लेगा। फिर भी सवेरे भूखा ही मिलेगा, पर शास्त्र कह रहा है कुछ ऐसे भोगी हैं, जिनकी तृप्ति होती ही नहीं। तीन बातें कही गईं-

न शयानो जयेन्निद्रां, न भुंजानो जयेत्क्षुधां ।
काम्यमानो न कामान्, लोभेनेह प्रशाम्यति ।।

अर्थात् सोते रहने से नींद-जय नहीं होती। खाते रहने से भूख को जीता नहीं जा सकता। इच्छाओं को बढ़ाने वाला उन पर जय नहीं पा सकता तथा लोभ के रहते शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती। अधिक मात्रा में सोकर भी नींद घटती नहीं, बढ़ती है। राजस्थानी कहावत है-नींद घटाया घटती है, बढ़ाया बढ़ती है। कुछ लोग हैं जो तीन घंटे सोकर भी अपनी दिनचर्या करते हैं। मुम्बई में राजेन्द्र बाबू लोढ़ा न्यायाधिपति हैं। एक दिन उनसे बात करने का मौका आया। आप न्याय करने वाले हैं फैसला करने वाले हैं, आपको तो समय मिलता होगा ? कहा-महाराज ! मैं मुश्किल से चार घंटे सोता हूँ। नौ घंटे न्यायालय में काम है, छः घंटे अध्ययन करता हूँ और चार घंटे नींद लेकर काम चलाता हूँ।

राजस्थानी भाषा में कहा जाता है-बच्चे की आठ घंटे, जवान की छः घंटे और बूढ़े की पाँच घंटे की नींद होती है। इतना सोकर कोई भी सहज रूप से अपना काम कर सकता है। सोने से नींद जीती नहीं जा सकती। इसी तरह खाने से भूख लगना कम नहीं होता। शाम को खाकर भी व्यक्ति सुबह भूखा देखा जाता है।

इसी तरह जो कामना-वासना वाले लोग है। वे भोगों से तृप्ति करना चाहते हैं उनकी कभी तृप्ति हुई नहीं और होगी नहीं। जैसे ईंधन डालने से अग्नि तृप्त नहीं होती, अधिक बढ़ती है उसी तरह भोगने से भोग की कामना बढ़ती है। आगे बढ़कर कहूँ-जीवन में एक बार भोग करने वाले भी हैं। जिनका कथन है-संतानाय च मैथुनं। कुल परम्परा रखने के लिए भोग करके जीवन चलाने वाले हैं। वर्ष में एक बार भोग करने वाले हैं, महीने में एक बार भोग करने वाले हैं। कई हैं जो एक पत्नी से सीमित समय में गुजारा करते हैं। कुछ की उससे भी तृप्ति नहीं हुई। दो, चार, पाँच, आठ, पचास, सौ, हजार कइयों के सोलह हजार तो कइयों के अठारह हजार पत्नियाँ थी। कई पत्नियाँ होते हुए भी रावण को सौन्दर्य की वासना की भूख थी, इसलिए उसने सीता का हरण किया। रावण आज छोटे-छोटे बच्चों के द्वारा दशहरे के दिन मारा जाता है। इसलिए वासना को व्यसन के रूप में कहा गया है।

'व्यसन' शब्द का अर्थ क्या? **व्यसनं विपतिः** अर्थात् व्यसन ही विपत्ति है। **व्यस्यति पुरुषं श्रेयसः इति व्यसनं।** अर्थात् जो आदमी को सत्पथ से, न्याय मार्ग से, श्रेय मार्ग से गिराता है वह है व्यसन। दूसरा अर्थ किया-**विपरीतं असनं व्यसनं।** जो भक्ष्य पदार्थों को छोड़कर अभक्ष्य पदार्थों का सेवन करता है वह भी व्यसन है। खाद्य छोड़कर अखाद्य खाता है, शाकाहारी होकर भी····। आगे बोलने की जरूरत नहीं, आप समझ गये हैं।

कुछ दिन पहले इस पर भी कहा गया था। जितने भी माँसाहारी प्राणी होते हैं, उनकी रात में आँखें चमकती हैं। शाकाहारी की आँखें रात को काम नहीं करती। शाकाहारी के दाँत चपटे होते हैं जबकि माँसाहारियों के दाँत नुकीले होते हैं। जितने भी माँसाहारी प्राणी हैं, वे जीभ बाहर निकाल कर लप-लप करते पानी पीते है। शाकाहारी होंठ से पानी पीते हैं। गाय, भैंस, बकरी देख लीजिये, आदमी कैसे पीता है? माँसाहारी प्राणियों के शरीर से

पसीना नहीं आता, जबकि शाकाहारियों को पसीना आता है। माँसाहारियों के पैरों के नाखून तीखे होते हैं, जबकि शाकाहारियों के चपटे। न जाने कितने प्रकृतिगत चिह्न हैं।

आचार्य भगवन्त कहते थे–जितने व्यसन हैं वे सब अन्याय से उपार्जित द्रव्य से होते हैं। जितने विकार हैं, प्रदर्शन हैं, आपाधापी है, बुराईयाँ हैं ये सब किसमें है ? जिनका उपार्जन न्याय सम्पन्नता से नहीं है, उनके जीवन में अनेक विपत्तियाँ आती हैं।

मैं समझने की एक बात कह रहा हूँ। कोसाना में आचार्य भगवंत (पूज्य श्री हस्तीमल जी म.सा.) ने एक बात कही–एक अंक है आठ का। आठ के अंक को गुणा किया जाता है या उसका पहाड़ा बोला जाता है तो संख्या बाहर में बढ़ती दिखाई देती है और भीतर के योग में घटती जाती है। आठ का पहाड़ा बोलें–एक आठ, आठ। दो आठ सोलह। सोलह क्या ? एक और छः, दोनों का योग सात। तीन आठ चौबीस। दो और चार–छः। चार आठ बत्तीस, तीन और दो–पाँच। पाँच आठ चालीस। योग चार रह गया। आपने देखा बाहर में बढ़ती हुई भी भीतर में संख्या घटती जाती है।

इसी तरह अन्याय से उपार्जित धन बाहर में तो बढ़ता दिखता है, कारें, गाड़ियाँ, बंगले पर भीतर की शांति, समाधि, रस कम होता जाता है। आज लोग धन के पीछे पड़े हुए हैं। दूसरे शब्दों में कहूँ–सात पीढ़ी खाये उतना धन है, फिर भी वही हाय–हाय। लाभ से लोभ बढ़ता जाता है उससे कभी संतुष्टि नहीं होती। लोभ का कहीं अन्त नहीं है। परिग्रह आरम्भ बढ़ाता है। आरम्भ और परिग्रह दोनों मिलाकर नरक में ले जाते हैं। वे भले ही रीति–रिवाज निभाने के लिए धर्मस्थान में आ जायें पर उनका मन कहाँ ? उनका रस कहाँ ? उनका मन, धन में है, उनका मन लोभ में है, उस लोभ में जो अन्याय से उपार्जित है।

भारत स्वतंत्र हो गया, पर लोगों को रोटी और मकान की चिंता है। आप रोटी-मकान की आवश्यकता से सहमत है, पर रोटी और मकान से भी अधिक चारित्रिक निर्मलता की आवश्यकता है। नीति है, न्याय है तो ठीक, अन्यथा चाहे जितनी सेना बढ़ जाये, सीमाओं को बढ़ा लें, उससे शांति नहीं होगी। विचार करने की बात है कि आपका चारित्र बढ़ रहा है या घट रहा है ?

मैं पुरानी पढ़ी बात कह रहा हूँ-मैंने चीन के पर्यटक फाह्यिान ह्वेनचांग के लिए पढ़ा। वे विदेशी, चीन से भारत भ्रमण का लक्ष्ण लेकर आये थे। उन्होंने अपने संस्मरण में लिखा-भारत में हमने तीन विशेषताएँ देखी। जवाहरात की दुकान पर भी यहाँ ताले नहीं लगते थे। दूसरी-सभ्य लोग जो गाँव या नगर में रहते थे उनमें कोई शराबी नहीं था, माँसाहारी नहीं था, सिवाय चांडालों के। चांडाल जो खराब खाना खाते थे वे गाँव के बाहर रहते थे। शराब और माँस के लिए भगवन्त की भाषा में कहूँ-दारूड़ा, मारूड़ा के चक्कर में राजाओं के राज्य चले गये।

भारत में सोने की नगरी या तो लंका थी या द्वारिका। लंका का विनाश पर नारी के कारण हुआ तो द्वारिका शराब के कारण नष्ट हुई। रावण हजार विद्याओं का स्वामी था और श्रीकृष्ण वासुदेव की सेवा में 16 हजार देवता थे, फिर भी लंका और द्वारिका को वे बचा नहीं सके।

शराब बुराइयों की जड़ है। अच्छे-अच्छे लोग कहते है इसमें क्या, यह तो पानी है। मैंने सुना-बैल पर लकड़ी का ठसका लगाया जाता है तब वह आवेश में आकर तेज चलता है। घोड़ा चाबुक से गति बढ़ाता है, हाथी अंकुश से सही मार्ग पर चलाया जाता है तो शेर हंटर के डर से आग में से भी निकल जाता है, विद्यार्थी शिक्षक के भय से अधिक पढ़ता है, आप संतों की प्रेरणा पाकर धर्म-साधना करते हैं वैसे ही भंगेड़ी, शराबी, अमल खाने वाले लोगों को इनके नशे में आवेश आता है। वे अधिक सक्रिय होते हैं, किन्तु

कुछ देर के पश्चात् नशा उतरते ही मृत प्रायः हो जाते हैं। यह नशे का आवेग है जो शरीर की भीतरी शक्ति ऊर्जा को नष्ट कर व्यक्ति को शक्तिहीन बना देता है। बैल डंडे से, घोड़ा चाबुक से दौड़ता है। कई लोग हैं जो शराब से, अमल से, भांग से दौड़ते हैं। उनका कहना है पीने से कुछ शक्ति आ जाती है नहीं तो वे मृत प्रायः हो जाते हैं।

एक भाई से सुना–पीते हैं तो एकाग्रता ज्यादा रहती है, ध्यान अच्छा लगता है। उसने भले ही कह दिया, पर मैंने सुना है–

वैकल्यं धरणीपातमयथोचितजल्पनं।
सन्निपातस्य चिह्नानि मद्यं सर्वाणि दर्शयेत्।।

कहते हैं सन्निपात रोग वाले के वात–पित्त और कफ तीनों बढ़ते हैं। जो चिह्न सन्निपात के रोगी में दिखाई देते हैं वे शराबी में देखे जा सकते हैं। वह वैकल्यंयुक्त यानी उन्मादी हो जाता है। उस पर पागलपन सवार हो जाता है। सन्निपात में क्या होता? मैं उसे मूड ऑफ नहीं कह रहा, हॉफ माइन्ड, क्रेक माइन्ड भी नहीं कह रहा। शराबी में मेडनेस अर्थात् उन्माद आता है। दूसरी बात उसको चक्कर आते हैं, वह धरती पर धड़ाम से गिर जाता है। सन्निपात के रोगी को भी चक्कर आते हैं। ''अयथोचित जल्पनं'' वह असम्बद्ध, अनर्गल, निरर्थक प्रलाप करने वाला होता है। बोलना क्या, और बोल क्या जाता है। आप बात पूछेंगे भारत की, वह जवाब देगा अमेरिका का।

शराब विकार बढ़ाता है। शराब जुआ खेलना सिखाता है। शराब व्यभिचार बढ़ाता है। कौनसा ऐसा दुर्गुण है जो शराबी में नहीं आता? आज जितनी अधिक मात्रा में असमय में प्राण हत्याएँ हो रही है, जिन्हें आप एक्सीडेंन्ट कह रहे हैं, उनके मूल में शराब एक प्रमुख कारण है।

आप कई जगह बिजली के खम्भों पर डेंजर लिखा देखते हैं, कहीं

डेंजर नहीं भी लिखा है तो भी आप ध्यान रखते हैं। बिजली के तार कोई छूता है ? गुटखा, सिगरेट, बीड़ी, शराब की बोतल पर डेंजर लिखा रहता है। क्या डेंजर-डेंजर में फर्क है ? एक झटके से मारता है, एक धीरे-धीरे मारता है।

मैंने दो दिन पहले कहा था-पहले आप शराब पीते हैं फिर शराब आपको पीती है। पहले आप गुटखा खाते हैं फिर गुटखा आपको खाता है। 'अद्यते च भूतैः इति अन्नं।' कहते हैं-जो जीव के द्वारा खाया जाता है वह अन्न है। दूसरी परिभाषा के अनुसार 'अति च भूतानि इति अन्नं' अर्थात् जो जीव को खा जाता है, ऐसा अन्न अभक्ष्य होता है। यह अभक्ष्य आप नहीं खा रहे, अभक्ष्य आपको खा रहा है। रावण देखकर कोई सदाचारी बना हो, मैं नहीं जानता। शरद पँवार के खुद पर बीती तो महाराष्ट्र में गुटखा बंद हो गया। अभी दबी जुबान से बंद हुआ है। गुटखे बनाने वाले कहते हैं इससे लाखों आदमी बेरोजगार हो जायेंगे। उनको दूसरों के जीवन से कोई मतलब नहीं, दुनियाँ डूबती है तो डूबे। शायद आज ऐसे ही प्रजाजन हैं और ऐसी ही सरकार। कोई सरकारी अफसर यहाँ बैठे हों तो चिंतन करना।

आज गाय का माँस निर्यात हो रहा है। कहाँ से ? जो देश अहिंसा से स्वतंत्र हुआ, उस देश में गो हत्याएँ होती हैं, गोमाँस निर्यात किया जाता है। मैं एक दिन कह गया-नौरतनमलजी सिंघवी जो प्रोफेसर हैं, कह रहे थे-महाराज ! मैं तीन इस्लामी देशों में घूम कर आया हूँ। वहाँ कोई रात को नहीं खाता। होटल भी बंद हो जाते हैं। जो स्थिति भारत में पहले थी वह आज विदेशों में हो रही है। आज भी कई देश हैं, जहाँ सड़क पर अखबार पड़े हैं, जितने अखबार वहाँ से जायेंगे उतने पैसे वहाँ रखे मिल जायेंगे। भारत में ऐसा करें तो ? अरे यहाँ अखबार क्या कार छोड़कर देखो वह भी नहीं मिलेगी। एक समय था किसी की मोहरें कुएं पर रह गई, दूसरे ने देखा तो पहचान कर उसके घर पहुँचा दी। आज क्या स्थिति है ? अभी सुना कि सत्तर रूपये की पायल के लिए 18 महीने की बच्ची की जान ले ली।

भारत का चारित्र क्या था, आज कैसी स्थिति है, यह सोचता हूँ कि इन धर्मियों को सामायिक-स्वाध्याय की कहूँ, उसके पहले नींव की बात कहूँ। आज नींव हिल रही है। जीवन में कितने-कितने विकार घर कर गए हैं? चारित्र को पहले ऊँचा उठाना होगा। आचार्य भगवन्त ने इसी चारित्र के लिए कहा-

सामायिक से जीवन सुधरे, जो अपनावेला।
निज सुधार से देश जाति सुधरी हो जावेला,
करलो सामायिक ....
निर्व्यसनी हो प्रामाणिक हो, धोखा न किसी जन के संग हो।
संसार में पूजा पाना हो तो सामायिक साधन कर लो।।

कुछ भाई लोगों ने कहा-महाराज, आज रविवार है इसलिए व्यसन त्याग की बात पर बल दें। मन में खेद होता है कि मैं ये बातें किनके लिए कह रहा हूँ? जिस जैन धर्म में निर्व्यसनता समाज धर्म थी। जैसे पानी में मछली सहज गति करती है, आकाश में पक्षी सहज उड़ान भरता है वैसे ही जैन घर में शराब-माँस परस्त्रीगमन वर्जित था। भगवान महावीर ने कहा-

तीहिं ठाणेहिं देवे पीडेज्जा-तं जहा।
माणुस्सजम्मं, आरियखेत्तं, सुकुलपच्चायाति।।

देवता चाहना करते हैं कि मुझे मनुष्य जन्म मिले, आर्यक्षेत्र मिले और उत्तम कुल मिले, मैं जैन के घर जन्म लूँ। देवता ऐसा क्यों चाहते हैं? आज मैं इन जैन अमीरों की क्या बात कहूँ? मैंने सुना पति-पत्नी आपस में बैठकर जुआ खेलते हैं। पहले सुनता था कि होली-दीवाली पर गँवार लोग जुआँ खेला करते थे। मैं आपको बनिया कैसे कहूँ? कैसे कहूँ आप ओसवाल हैं? जैन हैं?

आज ये विकृतियाँ क्यों आ रही है ? आपने एक सिद्धांत बना लिया जैसे-तैसे पैसा मिलाओ, धन मिलाओ। चाहे वह अन्याय, अनीति से ही क्यों न हो। न्यायाधिपति जसराजजी चौपड़ा कहते है कि अन्याय से उपार्जित धन या तो वकील खाता है या डॉक्टर। पहले बेईमानी से कमाओ फिर वकील या डॉक्टर को दो, इससे क्या फायदा ? अन्याय से उपार्जित धन तन बिगाड़ेगा, मन बिगाड़ेगा, पीढ़ी बिगाड़ेगा और जन्म बिगाड़ेगा। इससे तो अच्छा लूखी-सूखी खाय के ठण्डा पानी पीव। ईमानदारी से, मेहनत से दाल रोटी भी खाते हैं, तो वह श्रेष्ठ है। हमारे प्रमोदमुनि जो कई बार जिनका नाम लेते हैं बाबू साहब श्रीचंद जी गोलेछा, मैंने सुना पचास साल पहले उन्होंने लाखों रूपये दिये। अपने जीवन में वे वर्षों तक दाल रोटी खाते रहे, अन्य वस्तु की कभी इच्छा नहीं की।

आज आपके न जाने क्या-क्या चलता है ? एक-एक व्यसन कितना दुःखदायी है ? शक्तिशाली पांडवों को इस जुए के कारण वनवास जाना पड़ा। अयोध्या का राज्य करने वाले राजा नल और रानी दमयन्ती को जंगल में जाना पड़ा। मैं माँस खाने वालों की क्या कहूँ-कभी सार्वजनिक व्याख्यान में हिन्दू भी थे, तो मुस्लिम भी थे। एक मुस्लिम भाई ने खड़े होकर कहा-महाराज! हमको क्या कहते हो ? अण्डे तो इन हिन्दुओं ने महंगे कर दिये। मैं हिन्दू शब्द का प्रयोग कर रहा हूँ, आगे नहीं बढ़ रहा।

खाने की बुभुक्षा ने आदमी को कहाँ पहुँचा दिया ? आज कई हैं जो छुप-छुपकर माँसाहार कर रहे हैं। एक अखबार में पढ़ने को मिला आज तो आदमी का माँस खाया जा रहा है। ताज्जुब होता है खाने वाला आदमी है या राक्षस।

आज कई हैं जो कहते हैं, एक बार किसी पदार्थ को टेस्ट करके देखना चाहिये। आपको अभक्ष्य खाने की मन में क्यों आई, मैं पूछूँ–आपको कभी महाराज बनने की मन में आई क्या ? कभी बने नहीं तो एक बार बनकर देखना चाहिये। एक भाई आया–महाराज! मैं खाता तो नहीं पर एक बार गुटखे का स्वाद कैसा है बस यही देखना है। मैंने कहा–भाई! एक बार गटर का पानी पीकर भी देख लेना।

आप बुभुक्षुपन हटाइये, मुमुक्षुपन जगाइये। आप सद्आचरण पर चलकर जीवन आगे बढ़ायेंगे तो सुख–शांति प्राप्त कर सकेंगे। इसी भावना के साथ···

बालकेश्वर–मुम्बई
11 अगस्त, 2002

22

विनय बिन; नहीं जीवन-निर्माण

तीर्थङ्कर भगवान महावीर की आदेय-अनमोल वाणी में जीवन निर्माण का, अयोग्य से योग्य बनाने का, गिरने वाले व्यक्ति को धारण करने अथवा पात्र बनाने वाला कोई सद्गुण है तो वह है-विनय। कारीगर पत्थर को प्रतिमा बना देता है। किस पत्थर को ? पत्थर कारीगर द्वारा मारी गई टाँची को सहन करता है। कारीगर जैसा बनाना चाहता है, घड़ना चाहता है तो वह उसी तरह टाँची मारता है। पत्थर में यदि टाँची की मार सहने की योग्यता है, पात्रता है तो वह पत्थर मूर्ति बन सकता है।

कुछ टोल-पत्थर होते हैं। मारवाड़ में जिनको गिलगिचिये कहते हैं, आप क्या कहते हैं मुझे नहीं मालूम। वे पत्थर ऐसे हैं जो टूटना तो जानते हैं, टाँची सहन नहीं करते।

मिट्टी आकार लेती है। घड़ा बनाना हो तो घड़े का आकार लेती है, दीपक बनाना हो तो, दीपक का, सुराही बनानी हो तो सुराही का, जो आकार देना है मिट्टी उस आकार में ढल जाती है। वह मूर्ति का आकार ग्रहण कर लेती है, मानव की हू-ब-हू आकृति ग्रहण की उसमें क्षमता है। पर वह माटी

जिसमें चिकनाहट है, चेप है और जो पानी डालने के साथ घुलती है वह मिट्टी आकृति का रूप ले लेती है। परंतु जो मिट्टी बाणा है, नदी की बालू रेत है, पानी डालो तो गीली हो जाती है, पर पानी मिलने पर भी दो कण से तीसरा कण एकमेक करना नहीं जानती, पानी सूखते ही बिखर जाती है ऐसी बालू मिट्टी से कुम्भकार आकृति देना चाहे, तो वह संभव नहीं।

इसी तरह जिस जीवन में या मन में श्रद्धा का भाव है, वाणी ग्रहण करने की सामर्थ्य है और काया जो अपने-आपको समर्पित करके चलता है ऐसे व्यक्ति के जीवन का निर्माण होता है।

पहले जितने दृष्टांत दिये गए हैं वे जड़ के हैं। जड़ प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं करता। माटी की प्रतिक्रिया नहीं, पत्थर की प्रतिक्रिया नहीं। पत्थर को जहाँ से तोड़ना चाहो, तोड़ा जा सकता है। पत्थर की कोई प्रतिक्रिया नहीं। दीवार की प्रतिक्रिया नहीं, जैसा रंग भरना चाहो, भर दो। अचेतन को घड़ना सरल है। कपड़े के थान को दर्जी चाहे जैसा चाहे काट-छाँटकर दे। कारीगर चाहे जैसा पत्थर को आकार देना चाहे, दे सकता है।

जड़ का निर्माण जितना सरल है, उतना चेतन का निर्माण सरल नहीं है। वह पचास तर्क देता है। मैंने एक भाई से कहा-भाई, तू आता है, सुनता है सामायिक करके भी सुन सकता है। वह कहता है-मुँहपत्ति बाँधने से क्या होता है? सामायिक में यह पाठ क्यों बोलना? वह बात-बात पर प्रतिक्रिया करता है। चेतन सहज में नहीं ढलता, नहीं मानता।

इसीलिए पहला सूत्र कहा जा सकता है-अगर तुम जीवन का निर्माण करना चाहते हो तो जीवन की डोर गुरु-चरणों में समर्पित कर दो। इतना मानकर समर्पित करो कि जो वीतरागी है या जो वीतराग-वाणी के अनुसार आपको ढालना चाहते हैं ये गुरु उसी मार्ग को बताने वाले हैं। इतनी श्रद्धा रखकर चलोगे तो फिर गुरु जैसा कहेंगे, आप उसे मान लेंगे।

चौराहे पर खड़े मार्गदर्शक की बात आप मान लेते हैं, सिपाही हाथ का इथारा कर दे आप कोई तर्क नहीं करते। क्यों ? आपको पता है वह ड्यूटी दे रहा है। आप वहाँ कोई ननु-नच नहीं करते, तर्क नहीं देते। शासन करने वाला अधिकारी है, मंत्री है, न्यायाधिपति है फिर भी हाथ का इशारा देखकर गाड़ी रोक लेगा, वहाँ कोई तर्क नहीं करेगा। चिकित्सक के पास जाते हैं जो दवा दी जाती है, उसे लेते हैं, पर तर्क नहीं करते। वहाँ आप नहीं कहते कि यह हाई-डोज है, यह इंजेक्शन क्यों ? शल्य चिकित्सा में अंग तक काटने का विरोध नहीं, तर्क नहीं। क्यों, तो आप जान रहे हैं कि वह चिकित्सा शास्त्र में निष्णात है, सर्जरी में निपुण है। आपको डॉक्टर पर विश्वास है।

संत वीतराग-वाणी के अनुसार राग-द्वेष छुड़ाने को, जन्म-मरण के बंधन तोड़ने को, ज्ञान-दर्शन-चारित्र के गुण मिलाने को कहते हैं, लेकिन दिनों-महीनों सुनकर भी हमारा आचरण उस ओर क्यों गतिशील नहीं होता ? कारण है, कर्म सघन हैं और इन्हें हटाने को निरंतरता एवं अभ्यास की आवश्यकता है। इसीलिए मैं वीतराग वाणी के माध्यम से विनय गुण को आपके सामने रख रहा हूँ।

पूर्व में काया का विनय बताया गया था, जिसके अनुसार विनयशील शिष्य अपनों से बड़ों के आगे-पीछे एवं बराबर अंग टकराता हुआ, अंग भिड़ाकर, सटाकर न बैठे, न चले, न खड़ा रहे। घुटनों और जंघाओं को वस्त्र से लपेट कर दोनों भुजाओं से आवेष्टित करके भी नहीं बैठे। ये असभ्यता के आसन हैं, तो पैर पर पैर रखकर बैठना अहंकार सूचित करता है। विधि बताते हुए कहा जा रहा है कि उसका आसन, स्थान, शय्या आदि गुरुजनों से नीचे होना चाहिए। नम्रता से झुककर हाथ जोड़कर विनयपूर्वक गुरुचरणों में बैठना उनके प्रति आदर-सम्मान और श्रद्धा जगाता है।

दशवैकालिक सूत्र स्पष्ट करता है कि कदाचित् असावधानी से उनकी

काया अथवा उनकी नेश्राय के उपकरणों से अविनय से स्पर्श हो जाय, ठोकर लग जाय तब अपनी भूल के लिए क्षमायाचना करें एवं फिर से वैसा नहीं होगा, ऐसा साफ कहकर उन्हें संतुष्ट करें।

इसके पश्चात् वचन विनय का वर्णन करते एवं अनाशातना रूप दोष का वर्जन करने की शिक्षा देते हुए कहा गया है–

मा य चंडालियं कासी, बहुयं मा य आलवे।
कालेण य अहिज्जित्ता, तओ झाइज्ज एगओ।।

आचार्य भगवंत श्री हस्तीमलजी म.सा. के द्वारा रचित पद्यानुवाद की भाषा में–

व्यवहार क्रूर ना करे कभी, ना व्यर्थ किसी से बात करे।
उचित समय पर पढ़े पाठ, और बैठा अकेला ध्यान धरे।।

शास्त्र की भाषा में कहूँ–कषाय एक ऐसा रोग है जो त्रिलोक व्याप्त है। एक–एक रोग है जो परिवारजन्य होता है। पिताजी को हार्ट की बीमारी थी तो बेटे को है, पोते को भी है। पीढ़ी दर पीढ़ी।

बिना छना पानी पीने का जहाँ रिवाज है वहाँ नारू या बाला हो जाता है। पानी में कई कीटाणु फैलते हैं। अत: जो भी कीटाणु युक्त पानी पीता है उसके नारू हो सकता है। कभी बुखार होता है तो घर के एक के बाद एक लोगों को बुखार आता जाता है और फैलते–फैलते गाँव में फैल जाता है। प्लेग, हैजा जैसी महामारी प्रांत को चपेट में ले लेती है।

क्रोध का, अहंकार का, प्रतिष्ठा का, माया का, कपट का, लोभ का ऐसा रोग है, जिससे तीन लोक में कोई बचा हुआ नहीं है। इस रोग पर वही विजय प्राप्त कर सकता है जिसमें विनय हो। विनय नहीं होता तब क्रोध का आवेश आता है।

साधक! अगर तू अपने जीवन का निर्माण करना चाहता है, योग्य बनना चाहता है तो झूठ मत बोल। भूल किसी से भी हो सकती है। छद्मस्थ अवस्था में भूल होती ही है। चलने वाला कभी गिर भी सकता है। काजल की कोठरी में जाने वाला कहीं-न-कहीं तो दाग लगाता ही है। चौदह पूर्वधारी से भी बोलते-बोलते कभी चूक हो सकती है। अगर तुमसे कभी चूक हो जाय तो भूल से भी क्रोध के आवेश में मत बोलना। ज्यादा मत बोलना। सुनना ज्यादा, बोलना कम। बोलना भी पड़े तो आवश्यकतानुसार बोलना और बोलने का प्रसंग हो तो झूठ नहीं बोलना।

आज श्रावण शुक्ला पंचमी है। आज भगवान पार्श्वनाथ का निर्वाण कल्याणक है। कमठ राजपुरोहित का मरुभूति छोटा भाई है, किंतु वासना ऐसी होती है जो विवेक को कुंठित कर देती है। वासना को अंधा कहा गया है। क्रोध-लोभ वाले को भी अंधा कहा गया है। पाप, पाप है उसे चाहे कितना भी छुपाकर कीजिये आखिर पाप का घड़ा फूटता ही है।

बात ज्ञापित हुई। कमठ की धर्मपत्नी ने देवर से कहा-ये घर में अमंगल कर रहे हैं। मरुभूति में इतनी श्रद्धा है कि मेरा भाई ऐसा नहीं हो सकता। किंतु वास्तविकता का ज्ञान होने पर राजा के पास शिकायत गई। मैं छोटा हूँ मेरी बात शायद समझ में नहीं आए, आप शिक्षा दें। कहावत पुरानी है-सारी दुनियाँ सुधर सकती है, पर झूठ बोलने वाला नहीं सुधरता। सत्य को अपनाने से जितनी बुराईयाँ हैं, छूट जायेंगी। पर छूटेंगी किसकी? जो स्वीकार करता है। मानव को महामानव बनाया जा सकता है, नर को नारायण बनाया जा सकता है। कब? जब विकृतियों को दूर करने के लिए तत्परता हो।

कमठ को देश निकाला दे दिया गया। भाई मरुभूति को क्लेश हुआ, घर छूट गया। मुझे चाहिए कि मैं जाकर क्षमायाचना करूँ। गया क्षमायाचना के लिए। कमठ को गुस्सा आया। तूने पहले इज्जत मिट्टी में मिला दी, अब

क्षमायाचना करने आया है। पत्थर उठाया और सिर पर दे मारा। यही कमठ, मरुभूति को नौ जन्मों तक वैर-विरोध में मारता रहा है।

जड़ को सुधारना सरल है, चेतन को सुधारना उतना सरल नहीं। जीव को शिव और नर को नारायण बनाया जा सकता है, पर कैसे ? जब भूल स्वीकार कर दुर्गुण छोड़ दे।

मरुभूति का जीव पार्श्वनाथ भगवान के रूप में जन्म ले चुका। चौसठ इन्द्र आये। फिर भी कमठ की वैर भावना नहीं गई। वह मेघमाली बनकर इतनी तेज वर्षा करता है कि पानी ऊपर चढ़ते-चढ़ते गर्दन तक पहुँच जाता है। वह मारने में कसर नहीं छोड़ना चाहता। परंतु जो अपरिवर्तनशील आयु वाले हैं, चरमशरीरी हैं वे अकाल में नहीं मरते। धरणेन्द्र की बचाने की बात कही जाती है। वह मेघमाली को डराता है, पर सुधारने की शक्ति इन्द्र में भी नहीं है।

आप अगर जीवन बनाना चाहो तो एक बात नोट कर लीजिये-हित के लिए कोई बात कही जाए तो उसे बिना ननु-नच स्वीकार कर लें। आज हमने वीतराग वाणी की अवहेलना की है। मोह में फँसकर उल्टा करते आए हैं। हमको बचाने वाला कोई नहीं है। तीर्थङ्कर भी नहीं बचा सकते। बचाने वाला हमारा अपना विनय है। विनय है तो हम साधना करते-करते सिद्धि तक पहुँच सकते हैं। आप विनय के साथ जितने नियम पाल सकते हैं, जितना ग्रहण कर सकते हैं उसे ग्रहण कीजिए। आप व्रत-प्रत्याख्यान कीजिये, अणुव्रत-महाव्रत अपनाइये। आपकी आत्मा अवश्य सिद्धि प्राप्त कर सकेगी।

बालकेश्वर-मुम्बई
13 अगस्त, 2002

23

खोटी करणी छोड़ें : जीवन में रस घोलें

तीर्थङ्कर भगवान महावीर की आदेय-अनमोल वाणी में एक जिज्ञासा है-अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन और अनन्त सुख की सत्ता वाला यह जीव भटक क्यों रहा है? जन्म-मरण क्यों करता जा रहा है? क्यों एक गति से दूसरी गति में, एक योनि से दूसरी योनि में एक भव से दूसरे भव में जन्म लेकर दुःख पा रहा है? क्या जीव का स्वभाव भटकने का है? यदि भटकने का स्वभाव होता तो सिद्ध भगवन्त भी भटकते, पर वे अचल हैं, ध्रुव हैं, शाश्वत हैं, अपुनरावृत्ति स्थान को प्राप्त हो चुके हैं। वहाँ भटकाव नहीं। जब भटकाव नहीं तो आप-हम क्यों भटक रहे हैं?

शास्त्र इसका कारण बता रहा है। भटकने के पाँच कारण हैं। एक है-हमारा अज्ञान या मिथ्यात्व, दूसरा कारण है-अविरति। तीसरा है-प्रमाद, चौथा है-कषाय और पाँचवाँ कारण है-अशुभ योग।

हर जीव में ज्ञान की सत्ता है, पर हर संसारी जीव मूर्ख है। आप जरा ध्यान दीजिए, मैं दोनों बातें साथ कह रहा हूँ। मैं आपके लिए ही नहीं, अपने लिए भी कह रहा हूँ कि हम मूर्ख हैं। जो कला आप जानते हैं, वह मैं नहीं

जानता। एक से दो कैसे किये जाते हैं, माल में मिलावट कैसे की जाती है, धोखाधड़ी कैसे की जाती है, एक नम्बर से दो नम्बर कैसे किये जाते हैं? मैं यह सब नहीं जानता। इस मायने में मैं मूर्ख हूँ। जीवन का कल्याण कैसे किया जाय, व्रत का मार्ग स्वीकार कर कैसे चला जा सकता है, इसे कुछ अंशों में मैं जान रहा हूँ।

हेय क्या? उपादेय क्या? आप जानना नहीं चाहते। कदाचित् कुछ जीव जान चुके हैं तो उनके मन में कमजोरी बैठ गई है। इतनी शिथिलता आ गई है, ऐसे मूढ़ बन गये हैं कि सोचते हैं संसार के बिना उनका काम चलने वाला नहीं है। उनका चिंतन है-अगर अनीति नहीं करेंगे तो कामयाबी कैसे मिलेगी? अगर मिलावट नहीं करेंगे तो अर्जन कैसे होगा? अगर धोखाधड़ी नहीं करेंगे तो आज के स्तर के साथ चलना कैसे संभव होगा?

हाँ, ऐसे लोग भी हैं जो हर धंधे में ईमानदारी के साथ, न्याय-नीति पूर्वक जीवन चला रहे हैं। जीवन चला ही नहीं रहे, प्रतिष्ठा प्राप्त कर रहे हैं। जिनके व्यापार के स्थलों पर बच्चा चला जाय, बूढ़ा चला जाय, अज्ञानी चला जाय कोई फर्क नहीं। नासमझ, छोटे-बड़े सबके साथ उनका लेन-देन एक समान है, भाव में कोई फर्क नहीं, बर्ताव में कोई अन्तर नहीं। विश्वास है देने वाले को और विश्वास है लेने वाले को। घर वाले भी बच्चे से कहते हैं- उस दुकान पर जाकर अमुक चीज ले आ। दुकानदार जो देता है, बच्चा लेकर आ जाता है, पर एक पैसे की कहीं गड़बड़ नहीं। ऐसा रूप नहीं हो, वैसी बात नहीं है, पर विरले हैं, कोई-कोई हैं।

जिस व्यक्ति के जीवन में आय के साधन अन्याय युक्त हैं, मन में- विचारों में-कार्यों में निर्मलता-पवित्रता नहीं है तो वह विशुद्धि के मार्ग पर चिन्तन नहीं कर पायेगा। आप पचास के हैं, साठ के हैं, सत्तर और अस्सी वर्ष के हैं, आप चाहे हजारपति हैं, लखपति हैं, करोड़पति हैं, अरबपति हैं जिस

किसी को देख लीजिये उसकी आवक की कोई इतिश्री नहीं। पहले भी पेट भरता था, परन्तु आज छोटे-बड़े सबमें हाय-हाय क्यों? दिन-ब-दिन तृष्णा क्यों बढ़ रही है? तृष्णा जहाँ घटनी चाहिए वहाँ बढ़ क्यों रही है? इस पर आपने कभी विचार नहीं किया। कहने में कहेंगे-हमारा भटकाव कम हो, हमारे जन्म-मरण कम हों, हमारे बन्धन टूटें। कहने में बंधन तोड़ने की बात कहते हैं और कार्य करते हैं बंधन बढ़ाने के। जो ग्रहण करना चाहिए आप वह नहीं कर रहे हैं। लोग जानते हैं, मानते हैं, फिर भी जो करना चाहिये वह नहीं कर रहे हैं तो फिर बंधन टूटेंगे कैसे?

एक भाई ने गांधीजी को पत्र लिखा कि मुझे स्वप्न आया कि आपके दिन नजदीक आ गये हैं इसलिए आप राम का नाम लें। गांधीजी ने पत्र लिखने वाले को जवाब दिया-भाई, आपके सावचेत करने के लिए धन्यवाद। साथ ही लिखा कि इस बारे में मेरी मान्यता दूसरी है। मरण-काल अतिथि है। मेरे बुलाने की जरूरत नहीं, वह कभी भी आ सकता है, यह निश्चित है। मौत न जाने कब आ जाय, किस स्थिति में आ जाय, उसे रोकने की सामर्थ्य किसी में नहीं। मुझे हर क्षण, हर पल मौत का खयाल है। जब मौत किसी भी क्षण कहीं पर भी आ सकती है, तो मेरे यह सोचा हुआ है कि मेरे हाथ से किसी की हिंसा न हो। मैं चाहकर ही नहीं, अनचाहे भी झूठ नहीं बोलूँ। अनीति, फरेब आदि किसके लिए करूँ?

आप जान लें, जो इकट्ठा किया जाता है उसको खाने वाले पचास मिल जायेंगे, किन्तु कर्मों के बंध किसी अन्य को नहीं उसे ही भोगने पड़ेंगे। क्या आपको भरोसा है कि मौत कभी भी आ सकती है? आप भरोसा करें या न करें काल ने चोटी पकड़ रखी है। न जाने वह कब बाल उखाड़ ले। कबूतरों के झुण्ड पर बाज मण्डरा रहा है, न जाने किस क्षण किसको दबोच ले।

मुझे अचम्भा तब आता है जब आप 'मित्ती में सव्वभूएसु' बोलते हैं, जाप करते हैं, परन्तु भाई के साथ प्रेम का व्यवहार नहीं करते। मुझे सुनार की

कहावत याद आती है कि उससे बाप भी घड़ाने को दे दे तो और कुछ करे न करे, पर फूंक से भी उसमें से कुछ सोना निकालने में रहेगा। आप कितने ही नजदीक के हैं, परस्पर में अच्छा प्रेम है, रिश्तेदारी है, परन्तु दुकान पर न भाईसाहब हैं, न रिश्तेदारी। वहाँ तो दुकानदारी है। यह भाई-भतीजावाद करो तो कमाना कैसे ? व्यापार में भाई-भतीजावाद नहीं चलता। यह तो धर्म में चलता है। अन्नदाता! धर्मपत्नी प्रतिदिन पाँच सामायिक करती है, इसलिए मुझे करने की क्या जरूरत ? हमारे यहाँ विभाजन है-पाप करने का खाता मेरा और धर्म करने का खाता घरवाली का। डूबने का खाता मेरे पास है, तिरने का उसके पास।

आप मुझे एक बात बताओ-इतनी इतनी वीतराग वाणी के वचन सुनने के पश्चात् ऐसे-ऐसे पापों के अलग-अलग तरीके अनुभव करने के बाद हमारे पापाचरण या अनीतियाँ कम क्यों नहीं हो रहीं ? हम इसे कब तक करते जायेंगे ? पर्युषण के आठ दिन किया धर्म और 357 दिन किया पाप। आप धर्म को और पाप को अलग-अलग पलड़े में रखो और देखो ज्यादा क्या है ? आप कहें न कहें, मानें या न मानें पाप का पलड़ा भारी है। इसीलिए भगवान महावीर ने विनय की बात कही है। भगवान ने कहा-मानव! दियासलाइयों का ढेर लगा है, पर जब तक उनमें रगड़ नहीं होगी, रोशनी नहीं आयेगी। चिकित्सक के यहाँ दवाओं की शीशियाँ भरी पड़ी है, पर जब तक दवा नहीं ली जायेगी, ढेर सारी शीशियों का कोई मतलब नहीं है। रसोईघर में मिठाई, नमकीन, सब्जी, रोटी सारी चीजें बहुतायत मात्रा में पड़ी हुई हैं, पर जब तक खायेंगे नहीं, पेट नहीं भरेगा। पेट भरने के लिए खाना पड़ेगा।

शास्त्र कह रहा है-यह जीव संसार के सब काम करता है, अपने घरवालों की, रिश्तेदारों की एवं शुभचिंतकों की बात स्वीकार करता है, पर जो वीतरागी है, जिन्होंने केवल ज्ञान में देखा है उनकी बात स्वीकार करने में विलम्ब क्यों कर रहा है ? यदि वीतराग भगवन्तों की बात स्वीकार कर लें तो ये बंधन घट सकते हैं। शास्त्र की भाषा में कहूँ-

पडिणीयं च बुद्धाणं, वाया अदुव कम्मुणा।
आवी वा जइ वा रहस्से, नेव कुज्जा कयाइवि।।

–उत्तराध्ययन सूत्र 1.17

आचार्य भगवन्त पूज्य गुरूदेव ने पद्यानुवाद की भाषा में कहा–

गुरूजन के प्रतिकूल क्रिया, तन या वाणी से करे नहीं।
जन समक्ष अथवा एकान्त में, मन में कभी भी धरे नहीं।।

शास्त्र का स्पष्ट निर्घोष है। ज्ञानियों ने तिरने का जो मार्ग बताया है, बंधन घटाने का जो रास्ता दिखाया है, उसमें कहा गया है–गुरुजनों के प्रतिकूल व्यवहार न तन से करो, न मन से और न ही वाणी से करो। न प्रत्यक्ष में करो, न परोक्ष में करो। यदि प्रतिकूल व्यवहार करोगे, गुरुजनों के वचन को स्वीकार करके नहीं चलोगे तो तुम्हे संसार की कोई भी शक्ति बचा नहीं सकेगी। यह निश्चित मानो। आप चाहे घर में माया करो, कपटाई करो, प्रत्यक्ष में करो, अप्रत्यक्ष में करो, किन्तु यह मानकर चलिए कि माया और कपट से जीव तिर्यञ्च गति में जाता है।

महात्मा कौन? जिसके मन, वचन एवं कर्म में एकरूपता हो वह महात्मा है–

मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्।

सज्जन और दुर्जन, धर्मी और अधर्मी की पहचान क्या? जो मन में है वह तन में है, जैसा भीतर में है, वैसा बाहर में है। बाहर–भीतर में कहीं कोई फर्क नहीं। वह सज्जन है, धर्मी है। आप बाजार में कुछ और हैं, स्थानक में आपका रूप कुछ दूसरा है, तो यह एकरूपता नहीं है।

यदि सत्य से, न्याय–नीति से, ईमानदारी से रूखी–सूखी रोटी भी मिलती है तो उसमें शान है, शांति है, समाधि है। आपके बण्डलों के पुलिन्दों में शायद उतनी शान्ति नहीं, जितनी न्याय–नीति के उपार्जन से मिलती है।

अनीति से जब तक पुण्य प्रबल है पैसा तो मिल जायेगा, किन्तु समाधि खत्म हो जायेगी। भीतर का प्रेम जैसा रहना चाहिये वह नहीं रहेगा। नीति से कमाने वाले का परिवार में प्रेम देखा जाता है, अपनत्व मिलता है, एक-दूसरे का एक-दूसरे के प्रति आदर भाव रहता है। अन्याय से उपार्जित द्रव्य से यह नहीं मिल सकता। आप एक नहीं, हजारों दृष्टांत देख लीजिए। नीति से चल रहे थे तब भाई-भाई में प्रेम था, अनीति में भाई अपने भाई को मारने को तैयार हो जाता है। ऐसी स्थिति में आप भले ही धर्मस्थान में नाम तो लिखा सकते हैं, परन्तु घर में नाम नहीं रहेगा।

हमने उन घरों के झगड़े देखें हैं, सुने हैं, जिनके विभाजन में करोड़ों की सम्पदा आई, फिर भी एक-दूसरा एक-दूसरे की देहली पर चढ़ने को तैयार नहीं। भाई,भाई का नहीं। कुछ ऐसे भी हैं जो कहते हैं, पिताजी ने मुझे जो कुछ दिया तुझे चाहिये तो तू ले ले। मैंने ऐसे भाइयों के घर भी देखे हैं, जिन्होनें भाई के यहाँ कोई काम आ गया तो अपने घर के गहने बेचकर सहयोग किया है। किसको ? कब ? जब नीति रही, ईमानदारी और आत्मीयता रही। जहाँ आत्मीयता खत्म हो गई तो भाई, भाई के नहीं जाता, किन्तु पड़ौसी के कोई काम आ गया तो वहाँ तैयार रहता है।

मैं एक प्रश्न करूँ-ऐसा क्यों होता है ? मैं पहले कह गया था-जीमना तो माँ के हाथ का, हो भले जहर ही, रहना तो भाइयों में, हो भले वैर ही। पर आज क्या स्थिति है ? आप कहने में कह जाते हैं-भाई जितने घर। भाइयों-भाइयों से नेरा घर होवे इज है। क्यों ? उसका कारण है अनीति, उसका कारण है बेईमानी। कई ऐसे हैं जिनके घर अलग हैं, पर उनका खाना-पीना, बैठना-उठना साथ-साथ चलता है। कारण ?

वचन-वचन के आन्तरे, वचन के हाथ न पाँव।
एक वचन है औषधि, एक वचन है घाव।।

आप प्रतिकूल व्यवहार नहीं करेंगे तो भाई को जाने दीजिए, पड़ौसी

भी पास से जाना नहीं चाहेगा। कभी मजबूरी में जाना पड़े तो भी वापस आ जायेंगे। ठीक है आपकी बदली हो गई, जाना तो पड़ेगा, किन्तु पड़ौसी दुःख महसूस करता है। वही अगर प्रतिकूल व्यवहार वाला है, तो कहेगा-अच्छा हुआ उसकी तो बदली होनी ही चाहिए। आपका व्यवहार नहीं निभ रहा, तो परमार्थ का निभाव कैसे होगा ?

परमार्थ के निभने की तैयारी तब होगी जब आप पाप घटायेंगे। पाप घटाना जन्म-मरण का अन्त करना है। यह जड़ है। जड़ को जब तक सींचते रहेंगे, फल-फूल आते रहेंगे।

मैंने बात के प्रारम्भ में कहा था-आप श्रद्धा एवं ज्ञान जगाइये, अविरति घटाइये। जितने पाप घटेंगे उतनी समाधि आयेगी। जितने पाप बढ़ेंगे, उतने कर्मों के बंध से भारी बनेंगे। आप क्या चाहते हैं ? कहने में आप समाधि और शांति की बात कहेंगें, पर कहने के साथ करना जरूरी है। आप जब चेतें, तब ही सवेरा है। अभी भी कुछ नहीं हुआ।

पर्वाधिराज पर्युषण महापर्व आ रहे हैं। आप यह तो चिन्तन कर रहे हैं कि ऊपर-नीचे के हॉल से पार नहीं पड़ेगी। व्यवस्था की दृष्टि से चिन्तन करें वह तो ठीक, पर करना क्या है ? व्रत-प्रत्याख्यान की रूपरेखा क्या है ? आप अभी से तैयारी करें, मैं भी करूँ। आपके बाबूलाल (मंत्री) जी कहते हैं-हम किसी से कम नहीं, आप कहने के साथ करें भी। अन्तर में जागृति लाकर पाप घटायें। आप पाप घटाकर सिद्ध-बुद्ध-मुक्त बनने की ओर गति कर सकते हैं, इसी मंगल भावना के साथ·····

बालकेश्वर-मुम्बई
29 अगस्त, 2002

24

आत्मसाधना के लिए है–पर्युषण पर्व

तीर्थङ्कर भगवान महावीर के शासन में पर्वाधिराज पर्युषण पर्व का बड़ा महत्त्व है। इस पर्व की आराधना आगम के अनुसार वे स्वयं करते थे और अपने शासन में भगवान ने पर्युषण करने का विधान भी किया। दस कल्प की बात कही जाती है। उसमें पजूषणा कल्प प्रथम और अंतिम तीर्थङ्कर भगवन्तों के शासन में करणीय कर्त्तव्य माना गया। बाईस तीर्थङ्कर भगवंतों के शासनकाल में पजूषणा कल्प अस्थित कल्प है, आवश्यक नहीं कहा गया।

प्रश्न होगा–क्यों? पजूषणा कल्प के मुख्य पाँच कर्त्तव्य कहे जाते हैं। चार तीर्थ के लिए चार कर्त्तव्यों की बात कही जाती है। पहला कर्त्तव्य है–आलोचना। दूसरा–प्रतिक्रमण, तीसरा–प्रत्याख्यान और चौथा है यथा शक्ति तप। पाँचवाँ कर्त्तव्य है–लोच। चार कर्त्तव्य साधु–साध्वी और श्रावक–श्राविका ये चारों तीर्थ करते हैं। मात्र एक लुंचन की परंपरा साधु–साध्वियों के लिए है, श्रावक–श्राविकाओं के लिए नहीं। तात्पर्य हुआ–जब भी हम अपने भावों से अतिक्रमण करें, स्वभाव से अलग हटें, ली हुई मर्यादाओं में जब भी कभी कोई दोष लगा है ऐसा अनुभव करें तो उसकी आलोचना करें, प्रतिक्रमण

करें, दोष शुद्धि हेतु तप करें। बाईस तीर्थङ्करों के शासनकाल में जब भी किसी साधु-साध्वी को दोष लगता तो वे उसी समय आलोचना-प्रतिक्रमण करके शुद्धिकरण कर लेते। उनके लिए पर्युषण आवश्यक नहीं था।

आवश्यक किनके लिए? जो जड़ हैं। एक बार कहने पर समझ नहीं पाते या फिर, जो वक्र हैं समझाने के बाद भी उल्टी दलील करते हैं उनके लिए पर्युषण आवश्यक है। कल मैं मूल बात कह गया था, शायद आपको याद होगी। लौकिक पर्व राग बढ़ाने वाले होते हैं, लोकोत्तर पर्व त्याग बढ़ाने वाले हैं। लौकिक पर्व जोड़ने वाले होते हैं तो लोकोत्तर पर्व छोड़ने वाले होते हैं। जितना अंदर की ओर बढ़ना है, उतना बाहर का छोड़ना है। इसलिये इस पर्व की आराधना के लिए एक परिभाषा आई-

परिसंमत्ता उष्ण निवास:

चारों ओर से अर्थात् मन से, वाणी से, काया से अपने आपमें आना, परमेष्ठी की ओर आना, अपने स्वभाव में आना इसका नाम है पर्युषण। स्वभाव है-ज्ञान, दर्शन और सुख। जीव का स्वभाव ज्ञान, दर्शन और सुख कहा जाता है।

जीवो उवओग लक्खणो

अर्थात् जीव उपयोग लक्षण वाला है। उपयोग है-एक साकार, एक निराकार। उपयोग है-ज्ञान का, दर्शन का। अपने-आपमें रहना अपने आप में स्थिर हो जाना, यह पर्व मनाने के अर्थ में समाहित है। हम इस पर्व को कब मनाएँ और कब मनाना चाहिये? इस विषय को लेकर कई लोग उलझ गये हैं। क्यों भटक गये? बात यह है कि पर्व पर साधना-आराधना करनी नहीं है, हाँ दिखावा जरूर करना है। मैं पूछूँ-रोटी कब खाना? क्या आप मुहूर्त्त देखकर खाते हैं? पानी कब पीना? इसके लिए क्या दुगड़िया देखते हैं? मकान में प्रवेश कब करना? मकान में प्रवेश करना है तो पंचांग उठाओ,

कहीं राहू-काल तो नहीं है ? जन्मना कब ? बाबजी ! क्यूँ पूछो, जन्मना किसी के हाथ में नहीं है। मरना कब ? क्या मरते समय नक्षत्र देखते हैं या अमृत-सिद्ध योग देखते हैं ?

पर्युषण कब करना ? आत्मशुद्धि कब करनी ? सोमवार को साँप खा गया, साँप का जहर उतारने के लिए रविवार चाहिये। 'रविवार आकरा वार है इसलिए आकरे वार के दिन झाड़ो दिरावणो।' साँप खायोड़ा ने रविवार कद आवे ? ये बातें आत्मशुद्धि की भूमिका में कह रहा हूँ। अपने आपमें कब आना, समकित कब प्राप्त करना, दीक्षा कब लेना, वीतरागी कब बनना ? हर आदमी हर समय पर्व साधना नहीं कर पाता। पर्युषण कब करना ? आगम क्या कहते हैं ? कल मैंने पर्युषण कब करना कुछ बात रखी थी। पन्द्रह दिन पूरे होने पर पक्खी की जाती है। सर्दी के चार महिने पूरे होने पर फाल्गुनी चौमासी की जाती है, गर्मी के चार महिने पूरे होने पर आषाढ़ी चौमासी की जाती है, वर्षा के चार महिने पूरे होने पर कार्तिक चौमासी की जाती है इसी तरह वर्ष के पूर्ण होने पर संवत्सरी करनी चाहिये। आज हम में से इस परंपरा को लेकर कोई नहीं चल रहा। पर्युषण कब ?

समवायांग सूत्र में तीर्थङ्कर भगवान महावीर ने एक मास बीस दिन बीत जाने पर और सित्तर रात बचने पर संवत्सरी की आराधना की, बात आगम पाठ में मिलती है। यह परंपरा तब तक चलती रही जब तक हमारे पास आगम का गणित था। आगम की गणित में चातुर्मास में सावण या भादवा बढ़ने पर आषाढ़ दो माने जाते और चातुर्मास एक सौ बीस दिन का रहता। जैन पंचांग के अनुसार चातुर्मास में अधिकमास नहीं होता। उत्तराध्ययन सूत्र के छब्बीसवें अध्ययन की 15वीं गाथा में कहा-

आसाढ़-बहुले पक्खे, भद्दवए कत्तिए य पोसे य।
फग्गुण-वइसाहेसु य, बोधव्वा ओमरत्ताओ।।

अर्थात् भाद्रपद और कार्तिक में तीन दिन का महिना नहीं होता, ये दोनों मास उनतीस दिन के होते हैं इसलिए जैन पंचांग में चातुर्मास एक सौ अठारह दिन का होता था। जब तक जैन पंचांग था हम जितने फिरके या परंपराएँ थी, सब इसी तरह चातुर्मास करती थी। प्रश्न तब सामने आया जब हम जनता को साथ लेकर चले। प्रतिष्ठानपुर में राजा सातवाहन को इन्द्र महोत्सव में जाना आवश्यक था। ''भगवन् मैं पंचमी को नहीं आ सकता या तो षष्ठी को या चतुर्थी को संवत्सरी कर सकता हूँ। जैनधर्म का मौलिक इतिहास भाग-2 में पीछे द्वितीय कालकाचार्य के समय में पर्व को अपवाद में आगे नहीं बढ़ाया इसलिए चौथ को किया गया। गुरुजी ने चौथ को संवत्सरी प्रतिक्रमण किया इसलिए एक परंपरा ने चौथ कायम कर दी। शास्त्र में विधान है सेवा का अति आवश्यक काम है, चतुर्दशी को नहीं कर सको तो त्रयोदशी को कर लें।

जैन पंचांग था तब हमारी परंपराएँ एक रूप में चलती रही। जैन ज्योतिष का लोप हो गया, विच्छेद हो गया तब हमने लौकिक पंचांगों को मान्य किया। लौकिक पंचांगों की गणना से चातुर्मास में मास वृद्धि होने लगी जो जैन पंचांग में आवश्यक नहीं थी। पाँच वर्ष में बासठ अमावस्याएँ एवं बासठ पूर्णिमाएँ आती है इस हिसाब से पाँच वर्ष में दो मास बढ़ते हैं। अभिवर्द्धन को गौण नहीं, आगे-पीछे मान लिया जाता था। श्रावण दो होने पर आषाढ़ दो माने जाते और भादवा दो होने पर पौष दो माने जाते। उत्तराध्ययन सूत्र के 26वें अध्ययन में एक वर्ष में जैन पंचांगानुसार छः तिथियाँ घटती थी। जैन पंचांग में तिथियाँ बढ़ती नहीं थी पर लौकिक पंचांगों में तिथियाँ घटती भी हैं, बढ़ती भी हैं।

संवत्सरी कब करना ? यहाँ मैं स्थानकवासी, मूर्तिपूजक, दिगम्बर और तेरापंथी इन चारों परंपराओं की बात रखना चाहूँगा। संवत्सरी के प्रसंग पर एक

पक्ष ने पचास दिन तो दूसरे पक्ष ने सित्तर दिन को लेकर अपना-अपना विचार बना लिया। आगम में पचास और सत्तर दिनों की मान्यता मिलती है पर किसी एक का पालन करना हो तब क्या करना चाहिये ? सत्तर की परंपरा बाद में चालू हुई। पचास की परंपरा पहले से थी। शायद आप पूछे यह कब से थी ?

जैन परंपरा में गच्छों के निर्माण की बात चलती है, तब सबसे पहले बड़ गच्छ, आंचलिया गच्छ, खरतरगच्छ, अचलगच्छ जैसे गच्छों का उल्लेख मिलता है। खरतरगच्छ में आज भी पच्चासवें दिन संवत्सरी मनाई जाती है। तपागच्छ की स्थापना 1285 में हुई। जैन इतिहास में इसका वर्णन मिलता है। 1169 में अचलगच्छ था। जिन्होंने सत्तर दिन माना वे यह कहने लगे कि हमने लौकिक पंचांग माना है तो जो महिना बढ़ता है उसे क्यों न माने ? एक पक्ष का अभिमत रहा कि वृद्धिमास को नपुंसक या फल्गु मानकर गौण कर देना चाहिये।

एक और चर्चा चली। आगम में सिद्धों का विरह छः महिने का है इसी तरह चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण भी छः माह में होता है। छः महिने पहले चन्द्रग्रहण या सूर्यग्रहण नहीं हो सकता। हाँ, चन्द्रग्रहण होने पर सूर्यग्रहण हो सकता है। मुझे जानकारी मिली की 2009 में माघ पूर्णिमा को चन्द्रग्रहण था, 2010 आषाढ़ पूर्णिमा को चन्द्रग्रहण हुआ। अगर एक के बाद दूसरे चन्द्रग्रहण की गणना करें तो पाँच मास होते हैं। उस वर्ष वैशाख दो थे। एक को फल्गु मास मान लिया जाय तो ग्रहण पाँच में आयेगा। विक्रम सम्वत् 2012 में भाद्रपद दो थे। आचार्य भगवंत (पूज्य श्री हस्तीमलजी म.सा.) का अजमेर चातुर्मास था, मैं उस समय गुरुदेव के श्री चरणों में वैराग्यावस्था में था।

प्रश्न है कि किसको मानना ? यदि सत्तर दिन की मान्यता रखें तो चातुर्मास में आसोज दो आयेंगे, सत्तर के बजाय सौ दिन रहेंगे। पूर्वाचार्यों ने मिलकर निर्णय किया, अभी हम जीताचार से कर रहे हैं। चातुर्मास आगम

सम्मत नहीं है। जो लोग संवत्सर के लिए आगम सम्मत कहते हैं उन्हें चिंतन करना चाहिये।

चार महिने का चौमासा होता है चाहे दिगम्बर परंपरा हो या मूर्तिपूजक अथवा स्थानकवासी हो या तेरापंथी। अब चातुर्मास पाँच पहिने का लिया तब क्या करना ? कुछ ने प्रयोग किया। विक्रम सम्वत् 2039 में आचार्य श्री तुलसी ने दूसरी कार्तिक में विहार कर दिया। मल मास मानकर उन्होंने छोड़ दिया, पर सब नहीं कर पाये। पचास और सत्तर दिन का लम्बा-चौड़ा विषय है। मैं संक्षेप में कह रहा हूँ आग्रहबुद्धि से नहीं, चिंतन के लिए कहा जा रहा है।

मूर्तिपूजक समाज में दो भेद हो गये। एक पचास एक सत्तर दिन को लेकर फिर भी स्थानकवासी समाज एक रूप को लेकर चल रहा था। पूर्वाचार्यों ने विवाद के बजाय एकता बनाए रखी। लोंकाशाह के बाद मूल में पाँच क्रियोद्धारक हुए। आचार्यश्री जीवराजजी म.सा., आचार्य श्री धर्मसिंहजी म.सा., आचार्यश्री लवजीऋषिजी म.सा., आचार्य श्री हरजी म.सा. और आचार्य श्री धर्मदासजी म.सा.। इन पाँचों में संवत्सरी को लेकर भेद नहीं था। आचार्य श्री जीवराजजी म.सा. की परंपरा में उपाध्याय श्री पुष्करमुनिजी म.सा., आचार्य श्री देवेन्द्रमुनिजी म.सा. हुए। आचार्य श्री जीवराजजी म.सा. की तरह आचार्य श्री हुक्मचन्दजी म.सा., जैन दिवाकर श्री चौथमलजी म.सा. आदि सभी पचासवें दिन संवत्सरी मनाते थे। आचार्य श्री लवजीऋषिजी म.सा. आचार्य श्री हरजी ऋषिजी म.सा. जिनमें आगे चलकर आचार्य श्री आनन्दऋषिजी म.सा. की परंपरा में पचासवें दिन संवत्सरी मनाई जाती रही। आचार्य श्री धर्मसिंहजी म.सा. की परंपरा गुजरात में चलती है। सौराष्ट्र-कच्छ सब पचास की मान्यता को लेकर चलते हैं। आचार्य श्री धर्मदासजी म.सा. के लिए कहा गया-बिना राख के घर नहीं, इसलिये तुम्हारे चेले सब जगह मिलेंगे। आगे चलकर बाई टोलों की बाईस परंपराएँ चली। आचार्य श्री

धन्नाजी म.सा. मारवाड़ की ओर पधारे। आचार्य श्री भूधरजी म.सा. की परंपरा में पूज्य श्री रघुनाथजी म.सा., पूज्य श्री जयमलजी म.सा., पूज्य श्री कुशलोजी म.सा. ये तीनों परंपराएँ पचासवें दिन संवत्सरी मनाती। पूज्य श्री रामरतनजी म.सा. की परंपरा में सत्तर दिन की मान्यता मिलती है।

विक्रम सम्वत् 1990 में अजमेर में वृहद् साधु सम्मेलन हुआ। न जाने कितने श्रावकों ने और कितने संतों ने अथक प्रयास किया तब भी संवत्सरी के विषय में एक निर्णय नहीं हो सका। विक्रम सम्वत् 2009 में सादड़ी सम्मेलन में स्थानकवासी परंपरा ने एकता के लिए पद छोड़े, सम्प्रदाय से मुँह मोड़ा, परंपरा की प्रचलित मान्यता छोड़ी परंतु, जब चिंतन करता हूँ तो उन महापुरुषों के प्रति नत-मस्तक हो जाता हूँ जिन्होंने एकता के लिए जैसा कहा, वैसा किया। आचार्य श्री आत्मारामजी म.सा. ने 2009 में एक रूप बनाया।

आज हैं जो अपने-आपको बहुत बड़ा मान रहे हैं। बाप को बेटा झुठला रहा है। आचार्य श्री धर्मदासजी म.सा. पचास दिन मान रहे हैं तो उनकी परंपरा में मात्र पूज्य श्री रामरतनजी सत्तर मान रहे हैं। 1990 के सम्मेलन में आचार्य जवाहरलालजी म.सा., आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा., आचार्य श्री अमलोकऋषि जी म.सा. थे जिनको 1989 में आचार्य पद दिया गया। उन सभी ने बहुश्रुत श्री समर्थमलजी म.सा. को मिलाने का प्रयास किया कि हम श्रावण की परंपरा वाले यदि बहुश्रुतजी भी साथ होते हैं तो एकता के लिए निर्णय किया जा सकता है। बहुश्रुतजी म.सा. इतना होने पर भी सम्मिलित नहीं हो पाये। विक्रम सम्वत् 2012 तक उनको श्रमण संघ के भीतर लेने के अनेक प्रयास किये गये, परंतु सफलता नहीं मिली।

विक्रम सम्वत् 2013 के भीनासर सम्मेलन में ग्यारह नम्बर के प्रस्ताव को रद्द किया गया। आचार्य सम्राट् श्री आनन्दऋषिजी म.सा., आचार्य प्रवर पूज्य गुरुदेव श्री हस्तीमलजी म.सा., उपाचार्य श्री गणेशीलालजी म.सा.,

मंत्री श्री मरूधर केसरी मिश्रीमलजी म.सा., स्वामीजी श्री चाँदमलजी म.सा., पूज्य श्री जीवराजजी म.सा. की परंपरा में उपाध्याय श्री पुष्करमुनिजी म.सा., स्वामीजी श्री पन्नालालजी म.सा. ने उस प्रस्ताव को रद्द कर पचासवें दिन संवत्सरी मनाने का निर्णय किया।

आज जो कह रहे हैं अभी पर्युषण तुम्हारे हैं, अगले माह हमारे हैं यह परंपरा की मान्यता की दृष्टि से बात हो सकती है। राग-द्वेष की वृत्तियाँ नहीं छूटती तब तक एकता के लिए कुछ भी नहीं होने वाला। एक बात पूछूँ- क्रियोद्धारक पूज्य श्री लवजीऋषिजी म.सा. की परंपरा पचास दिन की है, उनके द्वारा निर्मित श्रमण संघ में सत्तर दिन कहाँ से आ गये? क्या हम कभी श्रमण संघ में नहीं थे? उन महापुरुषों ने एकता के लिए क्या नहीं किया?

आराधना करने के इन दिनों में क्यों कषाय वृद्धि की जा रही है? पर्युषण क्या है? इसका अर्थ कर गये। कषाय की अग्नि को शांत करना, राग-द्वेष का उपशमन करना, अपनी आत्मा के समीप रहना ही तो पर्युषण है। मैं तथ्य की महज जानकारी रख रहा हूँ। पूज्य श्री धर्मदासजी म.सा. की परंपरा ही पूज्य श्री रामरतनजी म.सा. की परंपरा में बहुश्रुत पूज्य श्री समर्थमलजी म.सा. अपने आपको मानते थे।

आप पर्युषण करना चाहते हैं, तो राग-द्वेष घटाने का प्रयास कीजिये, अपनी आत्मा में स्थित होने पर प्रयास कीजिये। उनका आग्रह, दबाव, परिस्थिति हो सकती है। जब पूर्वों का ज्ञान था तब पंचमी की जगह चौथ कर ली पर अब दीवारें खड़ी करना आत्म-विकास के मार्ग में सहायक नहीं है। आप विकास के मार्ग में बढ़ना चाहते हैं। अंतगड के माध्यम से आप सुन गये कल तक जो राजकुमार थे, छप्पन भोग लग रहे थे, धूप-छाँव का जिन्हें पता नहीं, एकवचन सुनकर वे जग गये। जगे ही क्या, तिर गये। आप तिरना चाहते हैं ते राग-द्वेष के पचड़े में न पड़ें।

एक सज्जन पुरुष पड़ौस में पति-पत्नी के झगड़े को सुनकर उनके वहाँ पहुँचे। देखा, पति-पत्नी में ऊँची आवाज में बोलचाल हो रही है, झगड़ा चल रहा है। सज्जन पुरुष ने पूछा-भाई! लड़ क्यों रहे हो? बात क्या है? आपको पहले कभी ऊँची आवाज में बोलते नहीं सुना, आज झगड़ा किस बात पर है? भाई बोला-कमाकर मैं लाता हूँ, काम मैं करता हूँ, मैं इसे लेकर आया और यह जो है मेरी बात ही नहीं मान रही है। सज्जन ने पत्नी की तरफ मुड़कर उससे पूछा तो वह बोली-इनके लिए मैंने घर-बार छोड़ा, माँ-बाप को छोड़ा लेकिन ये जो हैं मेरा कुछ भी ध्यान नहीं रखते। मैंने कहा-हमारे लड़का होगा तो मैं उसे डॉक्टर बनाऊँगी। मैं बीमार रहती हूँ इसलिये मेरी तो इच्छा है कि मैं लड़के को डॉक्टर ही बनाऊँ। पति बोला-मेरा धंधा लम्बा-चौड़ा है, मेरे यहाँ काम है, मुम्बई-अहमदाबाद काम है। धंधे में वकील जरूरी है इसलिये मैं लड़के को वकील बनाऊँगा।

सज्जन ने कहा-आपकी बात ठीक है, आपकी पत्नी की बात भी ठीक है पर लड़का कहाँ है पहले उससे तो पूछो वह क्या बनना चाहता है?

वह बोला-लड़का अभी कहाँ हुआ है। वह तो होने पर पूछना। बच्चा कहाँ? ''थल ठेठ, बेटी पेट, घर जँवाई पावणो वाली बात हुई।''

बस, यही बात है। वह कहता है हम आगम सम्मत हैं, ये कहते-हम आगम सम्मत हैं। आगम कहाँ? यह तो खींचातान है। एक पचास ठीक कह रहा है, दूसरा सत्तर। ये पावन दिवस ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप की साधना-आराधना के दिन हैं। आप राग-द्वेष का त्याग करके पर्वाराधन करें, यही मंगल मनीषा है।

शूले-बैंगलोर
14 अगस्त, 2004

25

जीवन-निर्माण में निमित्त का लाभ उठायें

तीर्थङ्कर भगवान महावीर का अनमोल सूत्र है-परस्परोपग्रहो जीवानाम्। यह सूत्र प्रत्येक मानव के लिए उपयोगी है। क्यों? तो कहा है-एक-दूसरे का जीवन एक-दूसरे के सहयोग के बिना नहीं चलता। एक-दूसरे के सहयोग से जीवन बनता है, जीवन चलता भी है। एक-दूसरे का एक-दूसरे को सहयोग है तो यह आत्मा द्रव्य जीवन का अंत कर भाव जीवन में विराजमान हो सकता है। जीवन में सहयोगी बहुत हो सकते हैं पर सबसे पहला सहयोग माँ का मिलता है। गर्भ में आने के साथ माँ का सहयोग रहता है। माता अपने रस-पान से गर्भस्थ शिशु का निर्माण तो करती ही है, कभी-कभी अपने सुंदर विचारों से, आध्यात्मिक भावना से गर्भ में रहे जीव को बिना कुछ किए देवगति का अधिकारी बना देती है। मात्र माँ के संस्कारों से गर्भस्थ जीव, जन्मते वैरागी बन सकता है। आपने सुना होगा-अभिमन्यु ने माँ के पेट में रहते चक्रव्यूह भेदन सीख लिया था, ऐसे ही गर्भस्थ शिशु की आत्मा बिना करणी किए देव बन सकता है। वे माताएँ धन्य हैं जो अपनी इच्छाएँ पूरी करने के बजाये पेट में रहे बच्चे को संस्कारित करने के लिए सहयोग करती हैं। ऐसी माताएँ वंदनीय-पूजनीय होती हैं।

तीर्थङ्कर भगवान भी माँ के गर्भ से जन्म लेते हैं। देवलोक का इन्द्र तीर्थङ्कर भगवान को नमस्कार करने के पहले तीर्थङ्कर की माता को नमस्कार करते हैं। तीर्थङ्कर केवली बनेंगे, तीर्थ की स्थापना करेंगे, ऐसे तिण्णाणं-तारयाणं बनने वाले को बाद में नमस्कार किया जाता है, माता को पहले। मतलब क्या ? माँ का गर्भ से सहयोग होता है। जन्म लेने के बाद माँ निरंतर सहयोग करती है। बच्चे के बैठने में, खड़े होने में, चलने में, बोलने में, खाने-पीने में माँ का सहयोग रहता है। माँ के अलावा भी कई-कई सहयोगी बनते हैं। अन्न पैदा करने वाला किसान सहयोगी है, कपड़ा बनाने वाला भी सहयोगी है। 'अ', 'ब', 'स' अक्षर ज्ञान सिखाने वाला सहयोगी है तो जीवन-निर्माण की हित शिक्षा देने वाला भी सहयोगी है। न जाने कितने-कितने लोगों का इस जीव को सहयोग मिल रहा है पर खेद की बात है कि अनेकानेक लोगों का सहयोग लेने वाला यह जीव दूसरों के लिए सोचता तक नहीं। इसका मतलब हुआ सहयोग लेना तो आदमी जानता है, वह किसी का सहयोगी बने इस दिशा में उसका सोच शायद अभी नहीं बना।

जीवन बनाने में जो भी सहयोगी हैं उनका ऋण है। नाई, धोबी, माली, दुकानदार जैसे कई-कई सहयोगी हैं। हर व्यक्ति सहयोगी हो सकता है। एक धनवान है वह यदि गरीब छात्रों को छात्रवृत्ति दे रहा है, पुस्तकें दे रहा है, ड्रेस और नाश्ता सुलभ करा रहा है, तो उसका भी सहयोग है। कोई चिकित्सक है वह अपनी सेवाएँ देता है, तो उसका भी सहयोग है। मैंने देखा है, सुना भी है इस संसार में कई ऐसे उदारमना हैं जो अपना द्रव्य देकर दूसरों को काम-धंधा करवाते हैं। तुझे काम करना है तो ले, ये ले जा। वह बिना किसी के कहे हजारों रुपये दे देता है। साथ ही कहता है-जा दुकान कर, इधर-उधर हाथ पसारने की तुझे जरूरत नहीं। तू अपने पैरों पर खड़ा हो। एक-एक घर बनाने में सहयोगी होते हैं। कई हैं जो परोपकार की भावना से द्रव्य निकालते हैं। कभी किसी ने वापिस भी किया तो वे उस द्रव्य को अपने

काम में नहीं लेकर दूसरों को देते हैं। परोपकार की भावना से सहयोग करने वालों का यह क्रम निरंतर चलता रहता है।

मैं आज चरित्र की बात कह रहा हूँ। चरित्र में सहयोग करने वाले कौन ? जैसे-तैसे मिलाने का काम करने वाले अनेक मिल जायेंगे। कमाया हुआ है। करोड़ों इकट्ठे करके पाँच-पचास हजार दान देने वाले कई हो सकते हैं, पर चरित्र निर्माण में सहयोग करने वाले····· ? पैसा कमाकर सहयोग करना तो एक प्रकार से सौदेबाजी है। चरित्र-निर्माण में वही सहयोग कर सकता है जिसने चरित्र से कमाया है।

पैसे का सहयोग पैसे वाला ही कर सकता है किन्तु चरित्र-निर्माण की सेवा प्रत्येक व्यक्ति कर सकता है। कोई लेखक है तो लेख के माध्यम से न्याय-नीति की बात सामने रखकर चरित्र-निर्माण में सहयोग कर सकता है। कोई चिकित्सक है तो गरीब का मुफ्त इलाज करके सहयोग कर सकता है। कोई चिकित्सक है तो गरीब का मुफ्त इलाज करके सहयोग कर सकता है। व्यापारी माल में मिलावट नहीं करके उचित मूल्य पर वस्तुएँ उपलब्ध करवाकर सेवा कर सकता है। हर व्यक्ति अपनी सामर्थ्यानुसार सहयोग कर सकता है, लेकिन आज सेवा की भावना कम हो गई है, व्यक्ति महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए आदमी अन्याय-अनीति से धन संग्रहीत कर दानवीर बनने और कहलाने का स्वांग करता है तो कहना चाहिये यह चरित्र नहीं है।

भगवान महावीर का यह शासन अनूठा है, बेजोड़ है। एक-एक वचन में ताकत है। एक-एक श्लोक से ताले खुल सकते हैं। आपने मानतुंगाचार्य द्वारा रचित भक्तामर सुना होगा। आपने यह भी सुना होगा कि हरिबल मछलियाँ पकड़ने के लिए जाल लेकर जा रहा था। सामने संत मिल गये। हरिबल ने संत को देखकर जाल नीचे रखा, संत को नमस्कार किया और जाने लगा। संत बोले-भाई! हमें क्या दोगे ? हरिबल के मन में सुगबुगाहट होने लगी। मन में विचार आया-मेरे पास कुछ है ही नहीं, तो संत को क्या दूँ ?

संत हरिबल को विचारमग्न देखकर बोले–भाई! हमें न कोई वस्तु चाहिये, न धनमाल ही। बस, तू एक काम करना, तेरे जाल में पहली मछली आए उसे तू अभयदान दे देना, छोड़ देना। तू इतना–सा नियम कर ले। कथानक लम्बा–चौड़ा है, मैं उसे विस्तार से नहीं कहता किन्तु हरिबल ने संत से नियम ले लिया।

नियम लेने वाले की परीक्षा होती है। नियम चाहे छोटा हो या बड़ा, नियम की सम्यक् परिपालना होनी चाहिये। हरिबल ने भावना से नियम लिया। देव उसकी परीक्षा करने आया। वह मछली पकड़कर लाता देखता जाल में एक मछली आई है, पहली मछली छोड़ने का नियम ले रखा था इसलिये उस मछली को छोड़ दिया। एक–एक करके तीन दिन निकल गये, हर रोज वही मछली जाल में फँसती, नियम था पहली मछली को अभयदान देना। तीन दिन भूखा रहना मंजूर किंतु नियम का बराबर पालन करने से उसे अदृश्य ताकत मिली और वह संयम लेकर बंधन तोड़ने में सफल रहा।

कानड़ कठियारे की बात आपने सुनी होगी। लकड़ी काटने का उसका पेशा था। संत का सुयोग मिला। संत ने कहा–भाई! तुम्हारा धंधा है, तुम करो कोई हर्ज नहीं किन्तु हरा पेड़ मत काटना और पूनम के दिन ब्रह्मचारी रहना ये दो नियम हैं इनका भली–भाँति पालन करना। एक दिन का ब्रह्मचर्य का नियम सरल है। तीसों दिन कोई कुशील में नहीं रहता। कठियारे ने नियम ले लिया। नियम की ताकत देखिये–एक दिन उसे चन्दन की सूखी लकड़ी तैरती मिल गई। उसने चंदन का गट्ठर उठाया और शहर में ले जाकर किसी सेठ को बताया। सेठ ने चंदन के बराबर धन तोल कर दे दिया। कठियारे ने नियम के अनुसार न तो गीली लकड़ी काटी और पूनम को अब्रह्म का सेवन नहीं किया। नियम का सम्यक् आराधन करके वह एक भवकर सिद्धि पाने वाला बन गया।

दृढ़प्रहरी चोर, ब्राह्मण की हत्या करके आया, गोवध भी किया, गर्भवती स्त्री के प्राण हरण करने वाला हत्यारा उपशम, विवेक और संवर इन तीन शब्दों के चिंतन से केवल ज्ञान प्राप्त कर सका। बंकचूल की बात आपने सुनी होगी। उसने चार नियम लिये थे। अनजान फल नहीं खाना, राजा की रानी को माँ समझना, निहत्थे पर वार नहीं करना और कौए का माँस कभी नहीं खाना। बंकचूल ने नियम का पालन किया और आगे चलकर उसने महाव्रत अंगीकार कर कईयों को चारित्र के संस्कार प्रदान किये।

याद रखें–बिना संस्कार के चारित्र आने वाला नहीं है। आप अभी अंतकृत्दशांग सूत्र के माध्यम से चारित्र ग्रहण करने वालों का वर्णन सुन गये हैं। वे महापुरुष चाहे राजपुत्र रहे या राजरानियाँ रही, उन्होंने भोग को छोड़ा। आप रोज सुन रहे हैं, आपकी भावना कब जगेगी? आप में से अधिकांश कहते हैं–बाबजी! संयम ग्रहण करना बहुत टेढ़ा है। संयम की बात छोड़िये। कभी संतों के यहाँ संवर–साधना करने के लिए कहा जाय तो आप शायद सहज में तैयार नहीं होते, विचार करते हैं। कुछ तो गलियाँ निकालते हैं–बाबजी! मैं संवर कर तो लूँ, किन्तु घर पर अकेला हूँ। कई कहते हैं आज अमुक कार्यक्रम में जाना है। कोई–न–कोई बहाना करके आप संवर–साधना से किनारा कर जाते हैं। मैं आपसे पूछूँ–संसार के काम कब पूर होंगे? संसार के काम कभी पूरे होने वाले नहीं है। आप आए तब क्या लेकर आए और जायेंगे तब क्या लेकर जायेंगे? आज आदमी सारी दुनिया की चिंता करता है लेकिन अपने–आपकी उसे कोई परवाह नहीं। अपनी चिंता नहीं इसलिए वह हिंसा, झूठ, चोरी और पापाचरण में जी रहा है। आप ये बातें सुनते हैं, कई बार सुनी होगी लेकिन सुनना मात्र पर्याप्त नहीं है। हाँ, सुनना आचरण की पहली सीढ़ी जरूर है।

मैं उन महापुरुषों की बात रखूँ, जिन्होंने जन्म लेने के साथ वैराग्य का भाव प्राप्त कर लिया। धनगिरी, संत–समागम पश्चात् घर पहुँचा। घर पहुँचकर

माता-पिता के चरणों में निवेदन किया कि मैं चारित्र धर्म अंगीकार करना चाहता हूँ। माँ-बाप ने कहा-बेटा! तू हमारा एकमात्र सहारा है। एकाएक बेटा संयम ग्रहण कर लेगा तो हमारी सेवा कौन करेगा? वह माता-पिता का आज्ञाकारी पुत्र था इसलिए माँ-बाप के कहने पर उसने शादी की, परंतु रह-रहकर उसके मन में एक ही बात आती कि मैं कब इस जंजाल से मुक्त होऊँ? कुछ समय पश्चात् पत्नी गर्भवती हो गई। पत्नी से कहा-अब तुम गर्भवती हो, तुम्हारे संतान होगी ही। मैं माँ-बाप को यही कहकर संसार में रूका कि जब तक और कोई घर का नाम रखने वाला नहीं हो तब तक दीक्षा नहीं लूँगा। वह दीक्षित हो जाता है। दीक्षा लेने के पश्चात् उसके लड़का जन्म लेता है। जन्म के साथ बच्चे की सुकुमालता थी, पुण्यशालीनता थी, नाक-नक्श प्रभावित करने वाले थे। जो भी देखता बच्चे की प्रशंसा करता। आने वालों के मुँह से एक बात जरूर निकलती-क्या करें, इसके पिता ने तो दीक्षा ले ली, वे होते तो कितना आनन्द होता?

पिता के दीक्षित हो जाने की बात सुन-सुनकर बच्चे का चिंतन चला-दीक्षा क्या है? दीक्षा का पुन: पुन: नाम सुनकर बच्चे को जाति स्मरण ज्ञान हो गया। जाति-स्मरण ज्ञान हो जाने पर बच्चे का चिंतन चला-पिताजी ने दीक्षा लेने में बहुत देरी कर दी, मुझे देरी नहीं करनी। बच्चे का चिंतन दो वर्ष की आयु में चल रहा है, आपके पोते-पोती हो गये फिर भी कभी विचार तक नहीं आया।

दो वर्ष का वह बच्चा रोने लगा। बच्चे के शायद कोई पीड़ा है, माँ बच्चे को उठाती, बच्चा चुप हो जाता। ज्यों ही माँ किसी काम में लगती, बच्चे का रूदन प्रारंभ हो जाता। माँ गोद में खिलाये तब तक बच्चा चुप और ज्यों ही उसे सुलाकर किसी काम में लगती बच्चे का रूदन प्रारंभ हो जाता। माँ हैरान हो गई।

संत विचरण-विहार करते हैं। संत मंडली ग्रामानुग्राम विचरण करते

वहाँ पहुँची। संतों का वहाँ पधारना क्या हुआ, बच्चे का रूदन बंद नहीं हुआ। संत मंडली में से धनगिरी गोचरी के लिए निकले। धनगिरी ने आचार्यश्री को वंदन-नमन कर गोचरी जाने की आज्ञा चाही तो आचार्यश्री बोले-आज सचित्त-अचित्त जो भी मिले, ले आना। धनगिरी ने तहत् कहा और चल दिया। चलते-चलते मुनिश्री को विचार आया कि गुरुदेव ने आज सचित्त-अचित्त जो मिले, ले आना, कैसे कहा? सोच-विचार में और चिंतन में पाँव सहज में अपने घर की ओर बढ़ते हैं। मुनि अपने सांसारिक घर पहुँचा। माँ बच्चे के रोने से हैरान-परेशान थी। मुनिराज को देखकर कहा-'लो, ओ थाँरो छोरो, थें संभालो। ओ दु:ख म्हारे अकेली रो थोड़ी है।' जो बच्चा निरंतर रो रहा था, माँ के द्वारा झोली में डालते ही चुप हो गया।

धनगिरी ने झोली ले जाकर गुरु के चरणों में रख दी। झोली में नन्हा-सा बच्चा था, इतने छोटे बच्चे को कौन संभाले? आचार्यश्री के चिंतन में प्रश्न उभरा, साथ ही विचार आया कि मुझे चिंता की क्या जरूरत, मेरा संघ सहयोगी है। बच्चे को शय्यातर के पास रखने की संघ ने व्यवस्था की। शय्यातर संस्कारवान श्राविका थी। वह जब भी स्वाध्याय करने बैठती, बच्चे को लेकर बैठती। कहते हैं-पालने में रहते बच्चे को ग्यारह अंग कंठस्थ हो गये। आपको प्रतिक्रमण याद है या नहीं पूछा जाये तो·····? जब बोलना सरल है, धनार्जन भी उतना कठिन नहीं किंतु प्रतिक्रमण सीखना तो कईयों के लिए बहुत मुश्किल है। आप में से अधिकतर श्रावकों का जन्म मारवाड़ में हुआ। यहाँ आकर कन्नड़ सीखी या नहीं? कन्नड़ भाषा हो या तमिल, दक्षिणी प्रदेशों की भाषाएँ सरल नहीं है, परंतु आपने यहाँ की भाषा बोलनी सीख ली, पढ़नी सीख ली, लिखनी भी कईयों को आती है लेकिन सामायिक-प्रतिक्रमण की पूछें तो अधिकतर लोग कहते हैं-बाबजी! याद नहीं होवे।

बच्चे को पालने में रहते ग्यारह अंगों का ज्ञान हो गया। वह अब रोने के बजाय हँसता-मुस्कुराता है। उधर माँ ने परेशानी में बच्चे को संत की

झोली में बहरा तो दिया किंतु माँ की ममता के कारण उसे रह-रहकर बच्चे की याद आती है। आदमी गुस्से में नहीं करने वाला काम कर बैठता है। माता को बच्चे की कमी अखरने लगी तो वह फरियाद लेकर दरबार में पहुँची। बोली-मेरे बच्चे को संत ले गये, मुझे मेरा बच्चा दिलाया जाय। दरबार में माँ और संत को बुलवाया गया। माँ बच्चे को आकर्षित-प्रभावित करने वाले खिलौने, वस्त्र-आभूषण और खाने की चॉकलेट-टॉफी लेकर पहुँची। एक तरफ माँ के प्रलोभन के साधन थे तो दूसरी ओर संत के पास माला-मुँहपत्ति-रजोहरण। राजा ने माँ को पहले अवसर दिया, कहा तुम बच्चे को बुलाओ। वह यदि तुम्हारे पास आता है तो तुम ले जाना और संत के पास रहना चाहेगा तो संत को रखने की छूट रहेगी। माँ ने बच्चे को रिझाने का खूब प्रयास किया। प्रेम से बोली-बेटा! आ, मेरे पास आ। माँ के कहने से एवं खिलौने देखकर भी बच्चा हिला तक नहीं संत के पास आकर्षण की कोई वस्तु नहीं थी। औघा, पूँजणी, माला। बच्चे ने ज्यों की मुँहपत्ति-माला देखी, लपक कर उठा ली।

राजा ने पहले कह ही दिया था कि बच्चे का मन देखकर जहाँ भी वह रहना चाहेगा, उसे दे दिया जायेगा। वह बच्चा आगे चलकर वज्र के नाम से चौदह पूर्वों का ज्ञाता बना।

मुझे कहना यह है कि बचपन से वैरागी भी होते हैं, हो सकते हैं। मैं किन-किन महापुरुषों के नाम लूँ। आचार्य भगवन्त पूज्य गुरुदेव श्री हस्तीमलजी म.सा., आचार्य प्रवर श्री देवेन्द्रमुनिजी म.सा., आचार्य श्री तुलसीजी म.सा., आचार्य श्री आनंदऋषिजी म.सा. बचपन से वैरागी रहे। पाँच साल के बालक हस्ती ने चौविहार शुरू कर दिया। आज दादा से चौविहार करने का कहा जाय तो जवाब मिलता है-बाबजी! रात को गला खींचता है इसलिए चौविहार नहीं बनता। पर्युषण में आठ दिन रात्रि भोजन त्याग की प्रेरणा की जाती है तो कई

भक्त हैं जो कहते हैं–महाराज! रात को खायेंगे तो नहीं, दूध की छूट रखना। आज आपकी क्या–क्या सोच है? आप स्वयं चिंतन करना।

मुझे कहना है–कई जन्म से वैरागी हुए तो कई बचपन से वैरागी होने वाले महापुरुष भी हैं। आठ साल की उम्र में पाँच शास्त्र कंठस्थ करने वाले भी हैं। बालक नेमीचन्द्र प्रतिक्रमण सीखने गया, वैरागी बन गया। देवेन्द्र छोटी उम्र में किसी आचार्य के पाट पर सो गया, दस वर्ष की आयु में उसने दीक्षा ले ली। माता मदालसा ने लोरी गाते–गाते एक–दो नहीं, छ:–छ: बच्चों को वैरागी बना दिया। आपने कई नाम सुने हैं, पर सीखा क्या? सीखने–सिखाने की बात आज हर क्षेत्र में प्राय: गौण–सी हो गई है। क्यों? तो कहना होगा–आज व्यक्ति अपने परिजनों तक को समय नहीं दे पाता तो फिर संस्कारों का सर्जन कैसे होगा? इतनी बड़ी सभा में हाथ खड़े कराऊँ कि कौन है जो अपने बच्चों को संस्कार देने के लिए समय देते हैं? घंटा–आधा घंटा देने वाले, जरा हाथ तो खड़े करें। आपके हाथ नहीं उठ रहे हैं, यह सच्चाई है। आज कई ऐसे व्यक्ति भी हैं जो कई–कई दिनों तक बच्चों से बात करना तो दूर देख नहीं पाते। बच्चा उठकर स्कूल चला जाता है तब तक पापा उठते नहीं, पापा काम पर निकल जाते हैं, रात को देर से घर लौटते हैं तब तक बच्चा नींद में रहता है। कई–कई पिता ऐसे भी हैं, जो बच्चे को बुखार में दवा तक लाकर नहीं दे सकते, दवा लाना या डॉक्टर के दिखाना यह काम भी माँ को ही करना पड़ता है। यह तो ठीक है पूर्वकृत संस्कारों से घर–परिवार की प्रतिष्ठा है, इसलिए काम रूकता नहीं।

जगने वालों के लिए छोटा–सा निमित्त बहुत होता है। स्वामी समर्थदासजी चँवरी में बैठे हैं। पंडित बोला–सावधान! सावधान शब्द सुनकर स्वामी चँवरी छोड़ भाग गये और संन्यासी बन गये। एक मुसलमान साँगानेर से बारात लेकर जयपुर जा रहा था। इस्लाम में पुरुष का चेहरा सेहरे से ढँका रहता है। दुल्हे का चेहरा मालाओं से ढका हुआ था, बीच में दादू पंथियों का

स्थान था। संत को देखते ही दुल्हा घोड़ी से उतरा और दर्शन के लिए नीचे झुका। संत बोले-रज्जब तूने गज़ब किया, सिर पै बाँधा मोड़। संत के शब्द श्रवण कर दुल्हे ने सेहरा उतार दिया और संत के चरणों में समर्पित हो गया।

ऐसे कई दृष्टांत आपने सुने होंगे पर अब तक वे दृष्टांत मात्र सुनने तक ही रहे, जीवन में घटित नहीं हो सके। थारो भाई कायर है, जो एक-एक को छोड़ता है। जवाब मिला-कहना सरल है, करना कठिन। बस, इस वाक्य से जगने वाला जग गया।

आर्य जम्बू ने पिछले भव में शादी की, फेरे हुए और पत्नी की माँग भरने जा रहा था इतने में बड़ा भ्राता जो संत बन गये थे, गोचरी के लिए घर पर पधारे। घर में आवाज सुनाई दी-महाराज पधारे हैं। आवाज सुनकर जम्बू के जीव को लगा-मैं भी प्रतिलाभ प्राप्त करूँ, संत को कुछ बहराऊँ। महाराज गोचरी लेकर निकले, वह महाराज के साथ कुछ कदम चला, पर महाराज उसे दया पालो कहे ही नहीं, अत: महाराज के साथ चलता गया। चलते-चलते महाराज गुरुचरणों में पहुँच गये। शादी करके आया दूल्हा साथ था गुरुदेव ने पूछ लिया-क्या वैरागी को साथ लेकर आए हो ? गुरु के वचन कर्ण गोचर होते ही भावना बनी-आचार्यदेव ने फरमा दिया है तो अब क्या मना करना ? ऐसे न जाने कितने चरित्र हैं जो थोड़ा-सा निमित्त मिलने पर जग गये।

अयोध्या नरेश के सुपुत्र शादी करने गये। शादी की। पत्नी के साथ लौट रहे थे, बीच में पर्वत पर ध्यानस्थ मुनि को देखा तो विचार किया-मुनिराज के दर्शन-वंदन का लाभ लेकर चलें। वे ऊपर चढ़े। ध्यानस्थ मुनि को वंदन करने झुके, साथ में साली भी थी उसने मजाक में कह दिया-शायद जीजाजी को वैराग्य आ गया है। बात पकड़ में आ गई और जीजाजी ने तुरंत संसार छोड़ दिया। जीजाजी साधु बन गये हैं इसलिए साली को पसीना छूट गया। ये तो साधु बन गये मेरी बहन का क्या होगा ? जीजा का जवाब था-वह

पतिव्रता है, वह पति के रास्ते पर चलने में सक्षम है, बात सुनने के साथ नव-विवाहिता भी दीक्षित हो जाती है।

मैं चारित्र लेने की बात कह रहा हूँ। आप पूर्ण चारित्र ग्रहण कर सकते तो कोई बात नहीं, देश चारित्र तो अंगीकार कर ही सकते हैं। आप 12व्रती बन सकते हैं। 12 नहीं तो एक व्रत ही सही, व्रत अंगीकार तो करें। सेठ साहब रात को नौ बजे दुकान बंद करके जा रहे थे। दो-चार कदम चलने के साथ मुड़कर वापस आए, देखा ताला ठीक से बंद तो है। सेठ साहब को दुकान की चिंता है, ताला खुला तो नहीं रह गया, इस बात की चिंता है पर वह जीव खुला है या नहीं इसका कभी विचार तक नहीं हुआ। द्रव्य माल की चिंता है, भाव माल की कोई चिंता नहीं।

आप प्रवचन श्रवण कर रहे हैं। सुनने से सहज जिज्ञासा हो सकती है, होनी भी चाहिये। कल एक भाई आया उसने अपनी जिज्ञासा रखी। नियम के प्रति कईयों की जिज्ञासाएँ हो सकती हैं। आप अपनी जिज्ञासा खुले मन से रखे, समाधान प्राप्त करें और नियम लेने से कतराएँ नहीं। कुछ नियम इसलिए नहीं लेते कि नियम टूय गया तो? आप अन्य-अन्य सब कामों में 'तो' को बीच में नहीं लाते। भोजन करने पर उल्टी हो सकती है तो क्या भोजन करना छोड़ देते हैं? आप मोटर में बैठते हैं तो कभी ऐसा नहीं सोचते कि एक्सीडेंट हो जाय तो? नियम लेते समय आप छूट रखते हैं। आप कभी घर से बाहर जाते हैं तो पड़ोसी से कह कर जाते हैं-तुम घर का ध्यान रखना। घर की, दुकान की, सामान की, प्रोपर्टी की आप चिंता करते हैं, ध्यान रखते हैं, क्या व्रत-नियम का भी इसी तरह ध्यान रखते हैं? व्रत-नियम ग्रहण करें, मजबूती से व्रतों का पालन करें तो संसार-सागर को पार कर सकेंगे।

बैंगलोर

15 अगस्त, 2004

26

कर्म काटने के लिए तप करें

तीर्थङ्कर भगवान महावीर की अंतिम-आदेय वाणी में मोक्ष के चार चरण कहे हैं-

णाणेण जाणइ भावे, दंसणेण य सद्दहे।
चरित्तेण णिगिण्हाइ, तवेण परिसुज्झइ।।

उत्तराध्ययन अध्ययन 28 गाथा 35

हेय-उपादेय का बोध कराने वाला ज्ञान है। वस्तु-तत्त्व पर श्रद्धा कराने वाला दर्शन है। कर्म आने का द्वार रोकने वाला चारित्र है। संचित कर्मों को क्षय करने वाला तप है।

आज पर्वाधिराज पर्युषण का चौथा, तप दिवस है। तप सफाई करने वाला है। सफाई करने के अनेक तरीके हैं। शुद्धि के अनेक मार्ग हैं। कचरे को झाड़ू से साफ किया जाता है। धान को उफान कर या फटका देकर साफ करते हैं। रूई को धुनकर तो कपड़े को धोकर साफ किया जाता है। बर्तन को राख से माँजकर एवं पानी फिल्टर से साफ होता है। धातु को तपा कर साफ करते हैं। दूध-पानी एकमेक हो चुका है, दूध से पानी को अलग करने के

लिए हंस की चोंच काम करती है। शास्त्रकारों ने कहा–दूध की हर बूँद में घी है, फूल के हर कण में खुशबू है, तिल के हर हिस्से में तेल समाया हुआ है। तिल से तेल निकालने के तरीके अलग हैं। मक्खन में से छाछ निकालनी हो तो उसे तपाया जाता है। तपाने का मतलब आग में झौंकना नहीं है। मक्खन से छाछ निकालनी हो तो आप क्या करते हैं? मक्खन को आग में नहीं झौंकते, बर्तन के माध्यम से मक्खन में से छाछ निकालते हैं। सुनता हूँ पेट की सफाई करनी हो तो वह न झाड़ू से साफ किया जाता है, न साबुन–सोड़े से, पेट की सफाई के लिए मारवाड़ में जुलाब काम आता है, आप शायद केस्ट्रोल कहो या अरण्डी का तेल कहो, पेट की सफाई के लिए काम लेते हैं। कभी किसी के रस्सी या मवाद हो जाता है तो उसकी सफाई भी करनी पड़ती है। उसके लिए या तो ऑपरेशन करवाओ या गोलियाँ लेकर सुखाओ। सफाई के ये जितने तरीके हैं, उनमें तप भी आत्मा के साथ एकमेक हुए कर्म परमाणुओं को–कर्म वर्गणाओं को साफ करता है। कितना करता है?

भव कोडी संचियं कम्मं तवसा निज्जरिज्जइ।

करोड़ों भवों के संचित कर्म तप से खपाये जाते हैं। तप शरीर को तपाने के लिए नहीं, शरीर कमजोर करने के लिए नहीं, जलाने के लिए भी नहीं, बल्कि पदार्थों पर रही आसक्ति हटाने के लिए है। तप शुद्धिकरण के लिए है। तप कर्म काटने के लिए है।

तप के बारह प्रकार बताये जा रहे हैं। लम्बी–चौड़ी भूमिका रखने के बजाय तप का कुछ विश्लेषण करूँ। आज कई तपस्वी तप करते हैं। इसके अठाई तप है, आगे जगह दो। अमुक के पन्द्रह दिन की तपश्चर्या है इसलिए तपस्वी को सहारा दिया जा रहा है। थोड़ा–सा तप करने पर शरीर का कितना ध्यान रखा जा रहा है। आप कैसे पारणक की मनुहार करते हैं? बैंगलोर आने वाले कहते हैं कि यहाँ इतना खिलाया जाता है कि सुबह खा लिया तो शाम को खाने की इच्छा नहीं रहती।

अनशन तप है। भगवान महावीर ने ग्यारह लाख साठ हजार मासखमण नंदन के भव में किए। मासखमण का पारणा करके फिर मासखमण। आज कोई एकांतर कर रहा है तो पारणे में कहा जाता है–जरा ध्यान रखना, दूध में घी जरूर डालना। भगवान ने पाँच महिने पच्चीस दिन बाद उड़द के बाकले खाकर पारणक किया। तेईस तीर्थङ्करों के जितने कर्म नहीं, उतने अंतिम तीर्थङ्कर के हैं। हजार वर्ष में आदिनाथ भगवान को एक उपसर्ग सहना पड़ा, पर तीर्थङ्कर भगवान महावीर को तो कई घोरातिघोर उपसर्ग सहने पड़े। बाँधे कर्म तप से टूटेंगे। आप में से कई हैं जो कहते हैं–अन्नदाता! आप घणो केवो पर माँसु होवे कोनी। करने से तप होता है। जयपुर में एक हजार तेले डेढ़ सौ अठाइयाँ चल रही हैं, ऐसे समाचार सुनने में आये हैं। आप इसे संतों का प्रभाव न कहें, यह तो पर्वाधिराज पर्युषण का प्रभाव है। इस समय नहीं आने वाले आते हैं, तप नहीं करने वाले तप करते हैं। कल शाम को छः बजे एक भाई आया। बोला–अन्नदाता! अब हिम्मत हो गई, आप उपवास पचक्खा दिरावो। बहत्तर–तिहत्तर साल की बुढ़िया जिसके दवा चल रही है, वह उपवास कर रही है। सवेरे एकाशन किया, दुपहर पश्चात् उपावस के प्रत्याख्यान कर लिये। बच्चों को घर वाले मना करते हैं, वे उमंग से तप कर जाते हैं। करने वाले करते हैं। जिन्हें कर्म–मल जलाना है वे मना करते–करते भी तप कर जाते हैं और जिनको कर्मों में उलझे रहना है, उनकी सौ बार मनुहार भी कर लो तो भी वे एकाशन तक नहीं कर पाते। कहते हैं तो जवाब मिलता है बाबजी! सुबह चाय पी ली।

बहुत हैं जो तप करने वाले हैं। करने वाले सहर्ष मासखमण कर जाते हैं। कितने–कितने मासखमण करने वाले थे? माता मरुदेवी ने पूर्व जन्म में साठ हजार मासखमण किये। अकबर के जमाने में चम्पा बहन ने छः महिने की तपश्चर्या की। जयपुर में तपस्वी बहिन इचरजबाई ने एक सौ पैंसठ उपवास किये। बैंगलोर तप साधना के लिए प्रसिद्ध रहा है। यहाँ की श्राविका धापूबाई गोलेछा ने 5 मास की तपस्या की। मैं राजस्थान छोड़कर आया हूँ,

तब से रूपचन्दजी कटारिया हर साल मासखमण कर रहे हैं। आज भी उनका छत्तीसवाँ उपवास है। हमारा अजमेर चातुर्मास था एकांतर तप करने वाले तपस्वी श्रावक पारसमलजी ढाबरिया ने पैंतीस की तपस्या पौषध सहित की। तपस्या के पारणक पश्चात् वही एकांतर। तपस्वी श्रावक उदयराजजी नाहर हर साल मासखमण कर रहे हैं। ऐसे कई तपस्वी हैं। रत्नवंश के कई संत व महासतियों ने मासखमण की तपस्याएँ की हैं।

अनशन तप है तो भगवान महावीर ने उनोदरी को भी तप कहा। सी.ए. फर्स्ट क्लास साधक श्रावक जवरीमलजी पारख जो एक धोती में रहते थे उनके ओढ़ने तक का वस्त्र नहीं, उन्होंने शरीर पर कितनी विजय मिला ली, आप अंदाज लगा सकते हैं। उज्जैन के तपस्वी श्री लालचन्दजी महाराज ने 72 मासखमण किये। खंभात परंपरा के पूज्य कांतिऋषिजी महाराज अंतिम समय तक मासखमण करते रहे। वीरपुत्र श्री घेवरचन्दजी महाराज ने मासखमण में व्याख्यान चालू रखा। मद्रास में तपस्वी पारसमुनिजी ने 31 का पारणा किया और व्याख्यान में आ गये। हमारी-आपकी लड़ाई तप के लिए नहीं, कल उपवास था केर क्यों नहीं भिगोये? आसक्ति घटानी चाहिये, उसे घटाने के बजाय बढ़ा रहे हैं। तप करके आसक्ति कम होनी चाहिये। क्यों? तो तप है ही कर्म-मल धोने के लिए।

हर व्यक्ति तप कर सकता है। अनशन न हो तो उनोदरी सहज में की जा सकती है। भगवान ने उनोदरी को भी तप कहा है। आज इस तप की ओर कम ही लोगों का ध्यान जाता है। खाने में ज्यादा खाने वाले कई मिलेंगे। खाने की तरह पहनने के लिए वस्त्र चाहिये। पहले से पेटियाँ भरी हैं फिर भी बाजार गये, साड़ी देखी, पसंद आ गई तो खरीद ली। खाने में चार सब्जियाँ हैं फिर भी लड़ाई कि मैंने कहा वह सब्जी तो बनायी ही नहीं।

रसना विजय की बात कहूँ-महाराज लालचन्दजी एक पात्र में आहार लाते। उसी में दूध, दही भी है तो उसी में सब्जी, रोटी, मिठाई सब एक पात्र

में। एक पात्र में पानी, रोटी, साग, दूध-दही स्थानक में लेकर आते, गरने से छानते। पानी नीचे रह जाता उसे पीते, गरने के ऊपर रह जाता उसे खाते। रसना पर कितनी विजयी थी ? रसना पर विजय नहीं, इसलिये घर का खाना छोड़कर बाबू साहब होटल जाते हैं। खाने के लिए होटल चाहिये। आप तपस्वियों के गुणगान करके ही नहीं रहे, स्वयं जितना हो सके उतना तप करें।

तप करो भाइयों और बहिनों, तप भव-भव में सुखकारी है।
महाकठिन तपस्या करके, महावीर ने मुक्ति पाई है।

विक्रम सम्वत् 2020 में पीपाड़ में मेरी दीक्षा हुई थी, तब पूज्य गुरुदेव के साथ एक संत थे तपस्वी माँगीलालजी। वे एक पात्र में लाते। ऋषभचन्द्रजी महाराज की बात मैंने सुनी वे भी एक पात्र में लाकर आहार करते। फतहनाथजी मोदी जोधपुर वालों ने आचार्य भगवंत के श्री चरणों में एक बात सुनाई। सुमतिनाथजी महाराज, जो पूज्यपाद आचार्य श्री विनयचन्द्रजी म.सा. के पास दीक्षित हुए थे, उस संत रत्न ने एक पात्र में आहार किया। यह है स्वाद पर विजय। आप स्वाद पर विजय का प्रयास रखें। थाली में जो आ गया, उसे हँसते-हँसते खा लें। आज कई ऐसे भी मिलते हैं जो थाली फेंकते देर नहीं करते। आप तप की महिमा सुन रहे हैं। इतना तो करें कि हम थाली में आ गया उसे संतोष पूर्वक बिना ललाट में सल डाले, बिना मुँह मचकोड़े खा लेंगे।

वृत्ति संक्षेप की बात क्या कहूँ। सतरह से ऊपर वर्ष तक एकांतर करने वाली सुमेरसिंहजी बोथरा की मातुश्री सुश्राविका श्री लाडबाईजी ने जीवनभर के लिए पाँच द्रव्य की मर्यादा रखी। पाँच द्रव्य से कैसे चलता होगा ? एक सुबह नाश्ता फिर भोजन और सायं का खाना। ये साग-रोटी को एक करके खाती एक पानी और एक मंजन। तपस्वी श्राविका के चाहे इकसठ का पारणा हो, या इक्यासी का, वे ही पाँच द्रव्य। आप कैसी तपस्या करते हैं जरा चिंतन करना।

तप साधकों के अनेकानेक उदाहरण हैं। तेरह वर्ष तक संयम पालन करने वाले ने पाँचों विगयों का त्याग रखा। पूज्यपाद आचार्य श्री गुमानचन्द्रजी म.सा. के शिष्य तपस्वी श्री ताराचन्द्रजी म.सा. ने तेरह साल संयम पाला और पाँचों विगयों का त्याग रखा। आज एक विगय छोड़ने का कहें तो भारी लगता है।

कैसे-कैसे त्यागी थे और उनका त्याग कैसा था? एक दाना खाकर महिने भर आयंबिल करने वाले हैं। सन् 2003 में नासिक वाले घेवरचन्दजी बागमार नौ साल से एकल ठाणा कर रहे हैं। पूछा-कितना समय हो गया तो बोले बाबजी! आज 3351वाँ एकल ठाणा है। उसी समय खाना और उसी समय पीना। आप त्यागियों के वृत्तांत सुन रहे हैं, आपकी कितनी भावना जगी, स्वयं चिंतन करना।

प्रतिसंलीनता की क्या कहूँ? गजसुकुमाल की बात आप सुन गये। खोपड़ी खीचड़ी की तरह सीझ रही है पर हिलने का नाम नहीं। क्यों तो मन में यही विचार कि ऐसा न हो कि मेरे शरीर के कम्पन से कोई खीरा गिर जाय और उससे किसी जानवर की हिंसा हो जाय। आपके थोड़ी-सी लग जाय तो·····? मैंने देखा है रोटी सेकते कभी तवे पर अंगुली लग जाय तो बहिन कान की लौल पकड़ती है। कान की लौल ठण्डी होती है। अंगुली जलने के साथ गीले आटे में अंगुली रखने वाली बहिनें आपने देखी होंगी। गजसुकुमाल ने कैसे सहन किया होगा? खाल उतारी जा रही है। ऊपर से नीचे खाल उतारते-उतारते यही चिंतन चल रहा है कि खुद के बाँधे कर्म हैं, दूसरों को क्या दोष देना? मैंने कचरा छीला तो मुझे भोगना पड़ेगा। आप जानते तो सब हैं पर किसके मन में पश्चात्ताप के भाव आते हैं? दूसरा मर रहा है आपको कोई चिंता नहीं। हाँ, मारने वाला मारता है, मार खाने वाला खाता है, पर यदि वह चोर है तो पास खड़ा यह कहने में संकोच नहीं करता-मार, मार एक माँरी तरफ सूँ मार। पाप करने में आदमी कभी सोचता तक नहीं।

ये तप के बाहरी भेद हैं। आंतरिक तप छः है। प्रायश्चित्त भी तप है। सती मृगावती को चंदनबाला ने देर से आने का उपालंभ दिया। महासती चंदनबाला का उपालंभ सुनकर मृगावती का चिंतन चलता है कि मेरे कारण से गुरुणीजी को इतनी महासतियों के बीच उपालंभ देना पड़ा। मेरे से यह भूल कैसे हुई? प्रायश्चित्त किया और पश्चात्ताप करते-करते केवलज्ञान मिला लिया। आज गलती करने पर भी प्रायश्चित्त की भावना कितने में हैं? पाप के प्रति पछतावे का भाव नहीं है इसीलिए पाप बढ़ता जा रहा है। आभ्यंतर तप के एक-एक भेद की व्याख्या करूँ इतना समय नहीं है पर विनय तप है, वैयावृत्त्य, स्वाध्याय, ध्यान, व्युत्सर्ग भी तप है।

पर्युषण पर्व पर आप सुनें, समझें और आत्म-शुद्धि के लिए तप करें। तप के बारह भेद हैं आप जो-जो तप कर सकें, करें। कर्म काटने के लिए तप जरूरी है। साधना-आराधना के इन दिनों में जो भी तप करेगा वह आत्मा से परमात्मा की ओर अग्रसर होगा।

शूले-बैंगलोर
16 अगस्त, 2004

27

भावनापूर्वक दान करें

मोक्ष-मार्ग के चार चरणों को मिलाकर मुक्ति पद पाने वालों की बात चार दिनों से रखी जा रही है। मोक्ष के दूसरे चार चरणों को लेकर दान, शील, तप और भावना की बात संक्षेप में कहने का प्रयास कर रहा हूँ। तप खाद्य सामग्री बचाने के लिए नहीं किया जाता। तप किया जाता है भूख की पीड़ा का अनुभव करने के लिए। जो दूसरों की पीड़ा का अनुभव करता है वह तप के भूषण दान को समझता है। दो-चार-दस दिन भूखे रहने वाला जानता है कि सामने वाला क्यों गिड़गिड़ा रहा है ? सामने वाला कहता है-तीन दिन से भूखा हूँ, कुछ दया करो। वह माँग रहा है, यह बात तप करने वाला जान सकता है।अनुभवी ही अनुभव का फायदा उठाता है। मारवाड़ी कहावत है- 'जांके पैर न फटी विवाई, वह क्या जाने पीड़ पराई'।

भूख कैसी होती है ? भूख कैसे-कैसे पाप कराती है, कहा नहीं जा सकता। भूखे की पीड़ा मिटाना श्रेष्ठ दान है। जगत् की जब से रचना है, तभी से दानधर्म प्रचलित है। अर्थात् संसार है तब से दान है। स्नेह दान, सहयोग

दान, ज्ञानदान, ममता का दान ऐसे कई दान है। दान की प्रक्रिया हर समय चलती रहती है। शील कोई पाले, नहीं भी पाले, शील को कोई समझे, नहीं भी समझे। तप का आचरण कोई करे, नहीं भी करे पर बच्चे को पालने के लिए स्नेह का दान आदमी तो क्या जानवर, पशु-पक्षी भी करते हैं। दान क्या ? नीति में कहा है-

दारिद्र्यनाशनं दानं, शीलं दुर्गतिनाशनं

चार प्रकार के धर्म चार विपत्तियों का, चार दुर्गतियों का और चार दुःखों का विनाश करते हैं। दरिद्रता का नाश करने वाला दान है। 'भूखे भजन न होय गोपाला, यह लो कण्ठी यह लो माला'। महात्मा बुद्ध ने अपने शिष्य को धर्म प्रचार के लिए भेजा। कुछ भाई वृक्ष के नीचे सो रहे थे। सोतों को जगा कर, वह उपदेश देने लगा। बुद्ध का शिष्य उपदेश दे रहा है पर वो भाई सुनते ही नहीं। उनमें वाद-विवाद शुरू हो गया। वाद-विवाद के चलते बुद्ध वहाँ पहुँचे । बुद्ध ने पहले उनको खाना खिलाया। खाने के साथ वे भाई बोले-हाँ, अब उपदेश दो। उपदेश अच्छा है, किन्तु भूखे पेट वह भी अच्छा नहीं लगता।

दान दरिद्रता का नाश करने वाला है। शील दुर्गति नाशक है। ज्ञान अज्ञान का नाश करता है तो भावना भव नाशिनी है। भावना भव-बंधन काटने वाली है। एक-एक भावना वह चाहे अनित्य भावना हो, चाहे अशरण भावना। बारह भावनाएँ सम्यक्त्व का कारण है। दान एकाभवतारी बनाता है। दान संपत्ति देने वाला है। बढ़कर कहूँ-दान तीर्थङ्कर गौत्र का बन्ध कराने वाला है। एक देना, अनन्त मिलाना है। खेत में एक दाना हजार दानों को मिला सकता है। दिया हुआ दान अनन्त गुणा फल देता है। दान जन्म-मरण के बन्धन

काटने वाला है। दान चाहे नयसार का हो, धन्ना सार्थवाह का हो या शालिभद्र का। एक बार देने वाले ने बत्तीस-बत्तीस पेटियाँ उतरवा ली। दिया कैसे जाय, इसका थोड़ा विवेचन करें।

दान के पाँच भूषण हैं। दान की वस्तु का जितना महत्त्व नहीं, भावना का महत्त्व है। अनचाहे-जबरदस्ती दान का कोई महत्त्व नहीं है। भले ही दाल का हलुवा ही क्यों न हो। किसी का पेट भरा हुआ है, खाकर आया है, उसे यदि जबरदस्ती खिलाया जायेगा तो वह खरी-खोटी सुना सकता है, भला-बुरा कह सकता है। मनुहार एक हद तक ठीक हो सकती है। अधिक मनुहार काम की नहीं। दान का पहला भूषण कहा जा रहा है-कोई लेने वाला है देखकर आपका चेहरा खिल जाय, मन में उमंग-उल्लास छा जाय। अन्तर में आनन्द की अनुभूति जगे कि मैंने बहुत बार खा-खाकर कटोरदान ही नहीं, कोठियाँ खाली कर दी, आज भाग्योदय से मेरे यहाँ कोई लेने आया है, इसलिए मैं सहर्ष दूँ। दान का महत्त्व है, पर भावना के साथ देने का उससे कहीं अधिक महत्त्व है। ऐसा भी समय था जब देने वाले बहुत थे, लेने वाले नहीं थे। आज भी आप देखें तो देने वाले हजारों घर हैं, लेने वाले गिनती के हैं। देखने के साथ आनन्द आए। आनंद भी ऐसा कि देखने के साथ आँसू आ जाय। धन्य घड़ी धन्य भाग्य जो आप जैसे संतो का पर्दापण हुआ। आपने सुना होगा-गणधर गौतम स्वामी को एवन्ताकुमार अपने घर लेकर आते हैं तो माँ का रोम-रोम खिल जाता है कि चौदह हजार साधुओं का प्रमुख गणधर गौतमस्वामी आज मेरे घर पधार रहे हैं। आपने देवकी की बात सुनी है। एक संघाड़ा आया, दूसरा और फिर तीसरा संघाड़ा गोचरी के लिए उपस्थित हुआ और सिंह केशरी मोदक बहर कर गये। देवकी ने यह नहीं सोचा कि जो महाराज पहले आये वे दुबारा कैसे आए? आपके यहाँ महाराज दूसरी बार आ

जाय तो... ? क्या महाराज को मेरा घर ही दिखता है ? देवकी महारानी ने यह नहीं सोचा कि सिंह केशरी मोदक देखकर महाराज को लालच आ गया जो बार-बार मेरे यहाँ आ रहे हैं। एक बाई ने बताया कि म्हारो आचार इतो चोखो लागे जिणसुं संत रोज ले जावे। यह आनन्द नहीं, अपनी वस्तु का गर्व है। पर एवन्ता गणधर गौतम को लेकर आ रहा है, दूर से देखा, देखते ही मन में भाव आया कि धन्य घड़ी-धन्य भाग्य जो आज तिरण-तारण की जहाज पधार रहे हैं। एक बार का दान संसार परीत कर देता है। जीवन में कभी खीर नहीं मिली। पहली बार मिल रही है। वह भी किसी ने दूध दिया, किसी ने शक्कर वरना आज तक माँ छाछ में गुड़ घोल कर खीर के नाम से खिलाती। आज अच्छी चीज मिली, मन में भावना जगी-मैं देकर खाऊँ। क्या ऐसी भावना आपके मन में आती है ?

एक समय था जब परिवार का मुखिया पर्व के दिनों में अच्छी चीज घर पर लाता, बच्चों के साथ बैठकर खाता और बच जाता तो नौकरों को खिलाता। आज क्या स्थिति है ? खाने की मन में आती है तो होटल याद किया जाता है। मैं ओसवाल समाज की बात कह रहा हूँ पहले के लोग खाते घर में, जाते बाहर। आज खाते बाहर हैं, जाते घर पर हैं। जीर्णसेठ-पूरण सेठ की बात आपने सुनी होगी। रियां के सेठ छगनमल जी मगनमल जी मुणोत ने जोधपुर में अकाल पड़ा तो स्वर्ण मुद्राओं के गाड़े जोत दिये। रियां से जोधपुर तक गाड़ियों की कतार लगा दी। वे सेठ सवेरे-सवेरे लोटा लेकर जाते। कीड़े-मकोड़ों की विराधना न हो इसलिए पूँज कर चलने वाले, गाय-कुत्ते को रोटी देने वाले, चीलों को बड़े चुगाने वाले सर्म्मूच्छिम का कम-से-कम दोष लगाते। आज आपके कितना दोष लगता है ? उसका कोई खयाल तक नहीं।

दान देते समय आनन्द की अनुभूति हो। मन में आये कि यह अवसर पुण्यवानी से मिला है। लेने वाला यह अनुभव करे कि इसने मुझे देव और भगवान समझा है। आज क्या हालत है? आज तो किसी ने टीप लिखा दी तो वह भी जूते घिसवाता है। पर भावना से दान देने वाला सोचता है कि यह मुझे परलोक की पूँजी में वर्धापन का अवसर देने आया है, इसलिये आदर के साथ दूँ। बिना जरूरत के कोई किसी के आगे हाथ नहीं फैलाता, क्योंकि माँगना मरण के बराबर है। इज्जत वाला भूखा रह जाएगा, मेहनत-मजदूरी कर लेगा, पर माँगने नहीं निकलेगा। माँगने निकलता है तो उसकी लाचारी का मखौल किसी को नहीं करना चाहिये।

एक गाँव में मीटिंग हो रही थी। सेठ साहब ताश खेल रहे थे। कोई आया-सेठ साहब! आपको मीटिंग में बुला रहे हैं। सेठ साहब बोले-कहना, आता हूँ। दूसरी बार बुलावा आया, वही जवाब 'कह देना आ रहा हूँ।' काफी देर हो गई पर सेठ साहब नहीं आए तो तीसरी बार बुलावा भेजा। बोले-आता हूँ। सेठ अपने साथ खेल रहे लोगों से बोला-वे मंगता काँई देवे, देऊँगा तो मैं। वह क्या समझ कर दे रहा है? अहंकार या नामवरी के साथ जो भी दे रहा है, मानकर चलिये वह भावनापूर्वक दान नहीं है।

दान कैसे दें? सामने वाले का मान करते-करते दें। खेद प्रकट नहीं करें, बल्कि अनुमोदना करें। दिवाकर दिव्य ज्योति में एक दृष्टांत पढ़ा। किसी ने सेठ हुकमीचंदजी से पूछा-आपकी पूँजी कितनी है? कहा-मेरे सत्ताईस लाख की पूँजी है। लोगों ने सुना तो कहा-सेठ साहब झूठ बोल रहे हैं। सेठ साहब यहाँ कौनसा इनकम-टैक्स लगता है जो आप झूठ बता रहे हैं? सेठ साहब ने कहा-मैं झूठ नहीं बोल रहा हूँ। आज तक इस हाथ से जो दिया गया वही मेरी पूँजी है। घर पर जो भी पूँजी है वह मेरी नहीं, पुत्र की है, परिवार

जनों की है। फिर पूछा–आपके लड़के कितने हैं तो जवाब दिया–मेरे एक लड़का है। लोग जानते थे कि सेठ साहब के चार लड़के हैं और करोड़ों की सम्पदा है, फिर सेठ साहब एक लड़के का कैसे कह रहे हैं ? क्या बात है, हमें आपकी बात समझ में नहीं आई। सेठ साहब ने कहा–मेरा एक बेटा जिनशासन की सेवा में गया, शेष तो अपना काम कर रहे हैं।

आप ये दृष्टांत सुन रहे हैं, आपका क्या चिन्तन है ? आप महाराज के यहाँ विनतियाँ करते हैं–बाबजी ! चातुर्मास का लाभ तो हमें दो। विनतियाँ करेंगे, महाराज को लायेंगे भी चातुर्मास भी करा लेंगे। एक–एक चातुर्मास के लिए कई–कई विनतियाँ होती है। जोर देने वाले जोर देते हैं कि बाबजी ! म्हारे अठै तो पधारनो पड़ी। आप क्या करोगे ?

दान देकर खेद प्रकट करना, पश्चात्ताप करना एक तरह से सिर फोड़कर मरना है। जो देकर पछताता है, उसका दान महत्त्व नहीं रखता। सेठ साहब पधार गये। मैं इनके यहाँ नौकरी कर चुका हूँ, अब मना भी तो कैसे करूँ। ऐसे देना दान नहीं है, वह तो मजबूरी है। मजबूरी से दिये दान से पाना कुछ भी नहीं है। वह दान के अर्थ में व्यर्थ है।

स्वार्थ अपने लिए है, परार्थ दूसरों के काम आता है, और परमार्थ है अभयदान, सुपात्रदान, ज्ञानदान। परार्थ में देने वाले सैंकड़ों हैं। कितने ही विद्यालय चल रहे हैं, चिकित्सालय चल रहे हैं। देने वालों ने दिया है, नाम लिखाया है तो उतना ही लाभ है। देने का पुण्य अर्जन हो जायेगा और दान का महत्त्व है वह पत्थर खा जायेगा। डॉ. नरेन्द्र भानावत जिनवाणी के सम्पादक थे। वे हरिद्वार घूम कर आचार्य भगवन्त के चरणों में उपस्थित हुए। उन्होंने अपनी रिपोर्ट दी कि गुरुदेव हरिद्वार में करोड़ों की सम्पदा दान में आई है,

किन्तु कहीं किसी का नाम लिखा नहीं देखा। उन्होंने धर्मशाला में लिखा श्लोक भी बोल कर सुनाया।

गुप्त जो है वह लॉटरी की तरह मिलने वाला है। नाम देने वाले क्यों अपना नाम देते हैं? दान नाम के लिए नहीं है।

गौतम गुरु जब देखते बड़ा सुखी इंसान
वीर प्रभु से पूछते, ऐसा प्रश्न महान्।

किसने क्या किया, जिससे अमुक आज इतना धनवान है? जो देता है, वह पाता है इसलिये दान दीजिये। दान भावना पूर्वक दीजिये।

एक सेठ साहब को धन पर बड़ा मोह था। उनके सामने एक याचक आया, माँगने लगा। बोला–सेठ साहब! दो टाइम हो गया, खाने को कुछ नहीं मिला। आप मेहरबानी करके टुकड़ा दे दीजिये। सेठ बोला–यह दुकान है, घर नहीं। यहाँ रोटी नहीं मिलती। याचक ने देखा–दुकान में कपड़ा भरा है अब बोला–दो साल हो गये सब कपड़े फट चुके हैं, आपके पास रोटी नहीं तो कोई कपड़ा ही दे दीजिये। सेठ को कुछ देना नहीं था अतः बोला–सुबह–सुबह आ गया, अभी तो मैंने बोवनी तक नहीं की। माँगने वाले ने बात बदली। रोटी नहीं, कपड़ा देना नहीं, तो दो पैसे दे दीजिये, चने खाकर पानी पी लूँगा। सेठ ने कहा–चल यहाँ से, कह दिया ना अभी नहीं है। भिखारी हँस कर बोला–थारे कने रोटी नहीं, कपड़ो नहीं, पैसा नहीं, तो चल, मेरे साथ अपन दोनों साथ माँगेंगे।

एक फक्कड़–संन्यासी सेठ के वहाँ पहुँचा। बोला–सेठ! कपड़ा चाहिये। सेठ ने मना कर दिया। संन्यासी ने सोचा यह मेरा भक्त कहलाता है,

मेरा भक्त दुर्गति में न चला जाय इसलिये इसको शिक्षा देनी है। देगा नहीं तो पायेगा कहाँ से ? संन्यासी लौट गया पर सीख देने की मन में थी। सेठ भोजन करने गया। जाते-जाते नौकर से कहा गया-जरा ध्यान रखना आज कल सेठ के वेश में कई चोर-उच्चके आ जाते हैं। तुम दूसरा कोई सेठ बनकर आए तो मार-पीट कर भगा देना। फक्कड़ के पास कुछ विद्या का बल था। वह सेठ बनकर आ गया। मुनीम ने समझा ये ही सेठ साहब हैं। कुछ समय बाद सेठ आया। मुनीम को सेठ की बात याद थी कि आजकल सेठ का वेश धारण कर कोई दूसरा भी आ सकता है। सेठ को मुनीम ने धक्के देकर निकाल दिया। बात बढ़ गई। वह कहता मैं सेठ हूँ जो फक्कड़ सेठ के वेश में था वह भी सेठ बना बैठा रहा। बात दरबार तक पहुँची। फक्कड़, फक्कड़ था, पूछ बैठा-खजाने में कितने रूपये हैं बता। सेठ को गल्ले की गिनती ध्यान में नहीं थी, फक्कड़ ने ज्ञान से बता दिया कि गल्ले में इतने रूपये हैं। सेठ हैरान-परेशान हो गया। दो दिन उसे न घर जाने दिया, न खाने को तो सेठ उदास हो गया। वह तो फक्कड़ था उसे सेठ की पूँजी से क्या लेना-देना ? किन्तु सेठ को शिक्षा देनी थी। वह दे दी। फक्कड़ ने कहा-सेठ ! तू आया था तब क्या लेकर आया और जायेगा तब क्या लेकर जायेगा ? अब से तू प्रतिज्ञा कर कि द्वार पर आने वाला खाली नहीं जायेगा। पाया है, तो दे।

चन्दन लगाने वाले को खुशबू आती है तो जिस पत्थर पर चन्दन घिसा जाता है उसे भी सुगन्धित बनाता है। अगरबती जल-जल कर खुशबू देती है। पेड़ दूसरों को छाया देते हैं, फल भी देते है। नदियाँ पानी देती हैं। जब प्रकृति चीजें देती है तो मानव तू मूँजी क्यों बनता है ?

भीख माँगने वाला माँगने नहीं, सीख देने आता है। पाया मैंने भी था,

परन्तु दिया नहीं, इसलिए मुझे भीख माँगनी पड़ रही है। है तो दो। नहीं दोगे, तो तुम्हें भी माँगना पड़ेगा। भगवत् कृपा से आपको पूरी मिली है तो आधी दो। आधी नहीं तो एक कौर भी दो, पर दो जरूर। देने का फल मीठा है। देने वाला गाया जाता है। वे चाहे भामाशाह हो या झगडूशाह। भावना के साथ अभयदान, सुपात्रदान से तीर्थङ्कर नाम कर्म बाँधे जा सकते है। धोवण पानी देकर तीर्थङ्कर गौत्र बाँधने वाले हुए हैं। उड़द के बाकलों के दान से हथकड़ी-बेड़ी खुल सकती है।

दान में वस्तु की नहीं, भावना की प्रधानता है। भावना भवनाशिनी। भव का नाश करने वाली भावना है। भावना के साथ दिया गया दान बँधन काटने वाला है, अतः आप भावना पूर्वक दान के लिए यदि तैयारी रखेंगे तो दान से मोक्ष की प्राप्ति भी हो सकती है।

शूले-बैंगलोर

17 अगस्त, 2007

28

आत्मशुद्धि के लिए करें आलोचना

तीर्थङ्कर भगवान महावीर की आदेय-अनमोल वाणी में अभी जीवन के अन्तिम क्षणों में केवल ज्ञान-केवल दर्शन मिलाकर मोक्ष पाने वाले जीवों का अन्तगड के माध्यम से वर्णन सुन रहे हैं। मात्र एक-एक देशना सुनकर जगने वाले कई प्राणी हैं। एक-एक निमित्त पाकर कर्म क्षय करने वालों के वर्णन अन्तगड़ में कहे जा रहे हैं। बच्चे भी हैं, युवा भी हैं तो अनुभवी वृद्ध भी हैं। राजगद्दी पर बैठने वाले भी हैं, तो राजरानियाँ भी हैं। मालाकार बन्धु भी हैं, तो श्रेष्ठी गाथापति भी साधना करने वाले हैं। जगने वालों का वर्णन इसलिये किया जाता है कि हमारी आत्मा में भी जागरण हो। जब तक आत्म जागरण नहीं होता तब तक साधना-आराधना नहीं हो सकती, इसीलिये पूर्वाचार्यों ने महापर्व सम्वत्सरी की आराधना के पूर्व ये सात दिन शुद्धि के रखे हैं। ये सात दिन भूमिका के हैं, तैयारी के हैं।

जो रोज साधना-आराधना नहीं करते उनके लिए सप्ताह होता है। आपने सुना होगा-भगवत् सप्ताह मनाया जाता है। रोज नहीं सुन सके वह

भगवत् सप्ताह में तो सुने। शिक्षा का सप्ताह भी होता है। रोज-रोज नहीं पढ़ने वाला शिक्षा सप्ताह में कुछ तो पढ़ें। कभी अनुशासन सप्ताह मनाया जाता है, तो कभी सफाई सप्ताह का आयोजन किया जाता है। दीपावली के पूर्व गाँवों में, नगरों में और महानगरों में सफाई सप्ताह मनाया जाता है। कभी कर्मचारी काम नहीं करते, काम करें उसके लिए अनुशासन सप्ताह रखा जाता है। जीवन में आत्मशुद्धि का सप्ताह भावना के साथ मना लिया जाय, तो बार-बार मनाना नहीं पड़ता।

अच्छे काम करने के लिए पहले शुद्धि आवश्यक है। बीज बोने वाला किसान बीज बोने के पहले खेत से काँटे-कंकर साफ करता है, जमीन को जोत कर उसे नरम बनाता है, खेत में अनावश्यक घास-फूस उग गये हैं तो उन्हें हटाता है फिर वर्षा होने पर बीज बोता है। रंगरेज को देखिये-वह कपड़े पर रंग लगाने के पहले कपड़े में रही पाण, कड़प, मैल है, उसे हटाता है फिर जो रंग चढ़ाना हो, चढ़ाता है। रंग चढ़ाने के पहले रंगरेज कपड़े की सफाई करता है। दृष्टांत देने की दृष्टि से कहूँ तो आप भोजन करने बैठो, तो पहले क्या करते हो ? हाथ धोते हो या नहीं ? कपड़े पहनने हो तो ? आप चाहे रोटी खाने बैठते हो या कपड़े पहनते हो तो सफाई का पहले ध्यान रखते हो। आप थाली पर बैठ गये, परोसगारी करने वाला दाल का हलुआ परोस रहा है और थाली में कचरा लगा है तो कहते हैं-ठहर ! पहले थाली साफ करने दे। खाना हो, पीना हो, पहनना हो आप सफाई का पहले ध्यान रखते हैं।

कल सम्वत्सरी है, दिल की दीवाली। आप इस दिल की दीवाली को मनाना चाहते हैं, तो पहले आत्मशुद्धि रूप सफाई करनी होगी। नोट कर लीजिये-गारे की दीवार पर चित्र तभी बनेगा जब दीवार साफ हो। हिलती

जमीन पर कोई मकान बनाना चाहे तो····· ? लोहे के बर्तन में शेरनी का दूध नहीं रखा जा सकता है, शेरनी के दूध के लिए तो स्वर्ण पात्र चाहिये। कच्चे घड़े में अमृत रखने से अमृत व्यर्थ जायेगा।

शास्त्रकार कह रहे हैं-मानव यदि तू साधक है तो आज के दिन आत्म शुद्धि कर। अगर मैं साधु हूँ, तो मुझे रोज आत्म निरीक्षण की जरूरत है। मैंने जो पाप छोड़े हैं, उनकी पालना में मैं कितना सजग हूँ? व्रतों के प्रति मेरी कितनी जागरूकता है, मैं कितने पापों का निकन्दन कर पाया हूँ? मुझे कहीं कोई हिंसा का दोष तो नहीं लग रहा है, छोटी-छोटी बातों से मन में उबाल तो नहीं आ रहा है? छल-कपट-धोखा तो नहीं कर रहा हूँ? मैं साधु हूँ तो आज साधुता की आलोचना करूँ।

कल आपको-हमको-सबको संवत्सरी मनानी है। कल संवत्सर है, नए वर्ष में प्रवेश करना है। नए संवत्सर में प्रवेश के पहले पूर्व में हुई भूलों को व्यक्त कर प्रायश्चित्त लूँ और शुद्धिकरण करूँ। मैनें जानते-अजानते जो भी पाप कर्म किये हैं, उसकी शुद्धि करूँ। मैं साधु हूँ तो सोचूँ कि मैनें जन समुदाय को विरक्ति मार्ग में लगाने का कितना प्रयास किया है? आज आत्मशुद्धि का दिन है। हर व्यक्ति को अपना जीवन देखने की जरूरत है। ऐसा नहीं कि जनरंजन के लिए भजन गा लिए, कहानियाँ कह दी, लोगों को चुटकुले कह कर हँसा दिया। मैंनें असाता पहुँचे, कहीं ऐसा काम तो नहीं किया? सम्यक् दर्शन के जागरण में मैं कितना आगे बढ़ा, कितनों को आगे बढ़ाया?

कोई दानवीर है तो वह सोचे कि मैनें कहीं मुँह देखकर तो तिलक नहीं लगाया? कभी देना पड़ता है इसलिए देता है। कभी अपने पाप ढकने के लिए देता है। कोई नाम के लिए, कोई प्रतिष्ठा के लिए दे रहा है। न्यायाधिपति

जसराज जी चौपड़ा कहते हैं–'किसी ने एक कमरे के लिए सहयोग किया तो बाहर नाम लिखायेगा फलाणचंद जी की ओर से बेटा, पोता, पड़पोता सबके नाम।' एक बार देकर तीन–तीन पीढ़ियों के नाम लिखवाने वाले हैं। कभी सोचते है–'ओ आदमी लाख रूपयाँ री पूँजी राखे है, तो पाँच हजार दे दियो, मैं करोड़पति अगर पचास हजार नहीं दूँला तो भूण्डो लागेला।' आप किसलिए दे रहे हैं, जरा चिन्तन करना। दान देकर दान का अभिमान मत कीजिये। ऐसे अभिमान को दूर करने के लिए आत्मशुद्धि की जरूरत है।

कोई सेवा करने वाला है, सेवा करता है। कब ? घर में पाँच आदमी बैठे हैं तो वह लोटा भर कर लाता है। पिताजी बीमार हैं, उन्हें दवा देनी है तो लोगों के बीच पूछता है आप कौनसी गोली लेते हैं, बताओ में लाता हूँ। सेवा दिखावे के लिए कर रहा है तो वह सेवा, सेवा नहीं है। कभी कोई सेवा इसलिए भी करता है कि मैं इनकी सेवा करूँगा तो मुझे ये तिजोरी की चाबी संभला देंगे। कोई साधु आचार्य महाराज की सेवा करे यह भावना लेकर कि कभी प्रायश्चित्त लगेगा तो मुझे कम प्रायश्चित्त देंगे। दिल की दीवाली मनाने वाले हर व्यक्ति को आज आलोचना करनी है। आलोचना किसे कहते है ?

''आमर्यादया लोचनम् आलोचनम्''

मर्यादा पूर्वक, अच्छी तरह अपने दोष देखकर उनकी आलोचना करें। दोष देखना कहाँ से चालू करें ? स्वयं अपने दोष देखें तथा गुरु के समक्ष उनकी आलोचना करें, प्रायश्चित्तत्त करें। किसी ने पूछा–यह विद्यालय किसलिए ? तो कहा–पढ़ने–लिखने के लिए। यह हॉस्पीटल किसलिये ? तो कहा–बीमारी के इलाज के लिए। तुम डॉक्टर के पास क्यों दिखाते हो ? तो कहा–ठीक होने के लिए। अब अगर कोई डॉक्टर के पास जाकर कहे–

डॉक्टर साहब! मेरी आँखें ठीक है, मेरे कान ठीक है। डॉक्टर कहेगा–जब ठीक है तो मेरे पास क्यों आये? आज कई लोग हैं, जो हम संतों के पास आकर कहते हैं–मेरे रात को नहीं खाने का नियम है, मैं रोज नवकारसी करता हूँ, मेरे अमुक व्रत है। अरे भाई! तुम जो कर रहे हो, उसे कहने या गिनाने की क्या जरूरत? क्या कोई डॉक्टर के पास जाकर यह कहता है कि मेरे को नींद अच्छी आती है, भूख अच्छी लगती है और मेरे कोई बीमारी नहीं है! हां, किसी का पेट दुःखता है और वह डॉक्टर के पास जाकर कहे, वह तो ठीक है। इसी तरह गुरु के पास भी अपने आत्मिक दोषों की चर्चा करनी चाहिए।

आलोचना दूसरों के दोष देखने के लिए नहीं है, अपने–आपमें क्या कमी है उसे देखना है। आप आत्मा से परमात्मा, जीव से शिव, नर से नारायण बनना चाहते हैं तो अपनी कमियाँ देखिये, उन्हें दूर करने का प्रयास कीजिये। आलोचना क्या और आलोचना किसकी? 'लोगों को डूँगर बलती दीखे, पगाँ बलती नहीं दीखे।' दूसरों के दोष देखना आलोचना नहीं, कर्म बन्धन का कारण है, डूबने का रास्ता है। संसार में हर आदमी में कोई–न–कोई कमी हो सकती है। किसी में कमी निकालने के पहले अपने में क्या कमी है, उसे निकालने की चेष्टा करनी चाहिये। यह पर्व अपनी शुद्धि के लिए उपस्थित हुआ है।

सौ अच्छे काम करके भी एक कमी रह जाय तो उस जीव का जन्म–मरण चलता रहेगा। बाँध ठीक है पर उसमें एक दरार आ गई तो? जहाज में हजारों आदमी बैठकर समुद्र पार करते हैं पर नाव में एक छिद्र है तो.....? इतना–सा छेद है वह भी जहाज को डूबा सकता है। अगर छेद की उपेक्षा कर दी तो नाव में बैठने वालों का जीवन सुरक्षित नहीं है। आपका कमरा बढ़िया

है, पलंग बिछा है, ऊपर मखमल की गादी है, ओढ़ने-बिछाने के लिए भी है पर कमरे में दो मच्छर घुस जायें तो क्या नींद हराम तो नहीं होगी ? इस शरीर में काँटा लग जाये तो····· ? जब तक काँटा नहीं निकलता चैन नहीं पड़ता। आँख में फूस पड़ गया। जब तक तिनका नहीं निकलता तब तक कितना कष्ट रहता है।

दृष्टांत दूँ। पूर्वजन्म में राजरानी बनी अंजना अपनी सौत का एक रत्न चुरा लेती है और उसकी आलोचना नहीं की। दूसरे जन्म में अंजना से बारह साल तक पवन जी बोले नहीं। वह राजमहल में रहती है, पर जेलखाने में और राजमहल में कोई अन्तर नहीं। वह तरस गई। पति मिले या न मिले, एक बार दर्शन ही हो जाय। वह खिड़की से देखने का प्रयास करती है तो खिड़की के सामने दीवार चुनवा दी जाती है। शादी मेरे से, प्रेम किसी और से। उसने एक रत्न चुराया। नतीजा क्या हुआ ?

सीता ने ब्राह्मणी के जन्म में अपनी दुकानदारी कम होती देख कर साधु पर कलंक लगा दिया। वह ब्राह्मणी थी ज्योतिष विद्या की जानकार, उसे नक्षत्रों का अनुभव था इसलिए मुहूर्त्त आदि देखकर बताया करती। किसी को नए मकान में प्रवेश करना हो तो वह ब्राह्मणी से मुहूर्त्त पूछता। घर में कोई काम हो तो कौनसा दिन श्रेष्ठ है जानकारी लेता। उस गाँव में एक दिन संत-मुनिराज पधारे। लोग आत्मकल्याण का रास्ता बताने वाले के यहाँ पहुँचने लगे, तो ब्राह्मणी के पास भीड़ कम हो गई। ब्राह्मणी ने एक सहेली के कान में कहा-''तू यह बात किसी को मत बताना कि ये जो महाराज गाँव में आए हुए है, इनके यहाँ रात को एक औरत आती है।'' यह बात दो घंटे में सारे गाँव में फैल गई। लोगों ने सोचा-ये महाराज ऐसे है ? किसी बात को खोलनी है तो

सामने वाले को कह दो यह तो मैं तुझे बता रहा हूँ, तू किसी से कहना मत। कहीं-कहीं लिखा रहता है कि यहाँ पेशाब करना मना है तो उस जगह लोग अवश्य पेशाब करते हैं। कहीं लिखा होता है-'नो एडमिशन विदआउट परमिशन' तो झाँक कर जरूर देखा जाता है। गोचरी का समय हुआ, महाराज पात्र लेकर निकले। कोई सामने आता वह इधर-उधर गली में चला जाता। जिसकी भी महाराज पर नजर पड़ती, वह नजर बचाकर ओझल हो जाता। महाराज ने देखा, कल तक जो भक्ति भावना से सत्संग-सेवा का लाभ ले रहे थे आज सामने आने के बजाय अपने-आप को छुपाते क्यों है ? महाराज को एक बच्चा सामने मिल गया। बच्चे से पूछा क्या बात है आज गाँव के लोग सामने आने के बजाय छुपते क्यों है ? बच्चे ने कहा-बात क्या है, यह तो मुझे नहीं मालूम कल रात भईसा बाईजी बात कर रहे थे कि 'इण महाराज रे ठिकाने रात को एक बाई आवे है।

महाराज सोचने लगे-यह शरीर नश्वर है। शरीर की मुझे चिंता नहीं, मेरी बदनामी हो जाय तो भी कोई बात नहीं, पर यहाँ तो जिन शासन की बदनामी हो रही है। जब तक मेरा कलंक दूर नहीं होता, मैं अन्न-जल ग्रहण नहीं करूँगा। एक-दो-तीन-दिन बीत गये। संत तपस्वी थे, फक्कड़ थे। संत की तपस्या से देवता का आसन चलायमान हुआ। देवता चरणों में पहुँचा। संत ने कहा-मुझे मेरे शरीर की नहीं, शासन की चिंता है। वह तो देव शक्ति थी। देव ने ऐसा चक्कर चलाया कि ब्राह्मणी के पेट में दर्द होने लगा और वह तड़फने लगी। देव ने कहा-जो हुआ वह सत्य बता दे, नहीं तो मर जायेगी। ब्राह्मणी को सत्य कहना पड़ा कि मैंने अहंकार में आकर निर्दोष साधु पर झूठा कलंक लगाया है। ब्राह्मणी ने क्षमा याचना की, पर पाप की आलोचना नहीं की। ब्राह्मणी साध्वी बन गई, तपस्या की और वही जीव आगे चलकर

सीता बना। सीता पर धोबी ने कलंक लगाया। राम वही है, लक्ष्मण वही है, हनुमान वही है, जिन्होंने सीता के लिए भंयकर युद्ध किया, समुद्र पार किया, वानर सेना बनाई। कर्म उदय में आया तो सब बदल गये। राम ने मात्र धोबी की बात सुनकर सीता को त्याग दिया। आप कहीं माल लेने जाते हो तो तराजू के पलड़े देखते हो, कोई समस्या आये तो फैसला करते हो, पर कर्म उदय में आयेगा, तो बचाने वाला कोई नहीं होगा। किसी को हल्का बताना सहज है, पर जब वही कर्म उदय में आता है तो भोगना मुश्किल हो जाता है। सीता के जीव ने आलोचना कर शुद्धिकरण नहीं किया तो उसे गर्भावस्था में जंगल में घूमना पड़ा। लव-कुश का जन्म जंगल में हुआ। वापस आने के लिए अग्नि परीक्षा देनी पड़ी।

कर्म बाँधना सरल है, भोगना उतना ही कठिन। अतः जब भी गलती हो, आलोचना करके शुद्धिकरण कर लें। तीर्थङ्कर ने वासुदेव के भव में अंहकार में आकर शय्यातर के कानों में शीशा डलवा दिया तो भगवान महावीर को कानों में कीले ठुकवाने पड़े। पाप और कोई जाने या नहीं जाने, पर पाप करने वाले की आत्मा जरूर जानती है। आपने क्या पाप कर्म किया है, आपकी आत्मा जान रही है, और भगवान जान रहे हैं। आप आत्मशांति चाहते हैं तो कर्मरूपी काँटों को निकाल दें। जो भी सुखमय रहना चाहता है तो उसे दुःख रूप काँटे को निकालना ही पड़ेगा। जिसकी भी आत्मा पवित्र बनेगी वह निकट भव में मोक्ष का अधिकारी होगा।

जब तक पाप नहीं धुलेगा, मुक्ति हो नहीं सकती। 99 लाख भवों के बाद गजसुकुमाल के पाप कर्म का उदय आया। काचरा छिलकर राजी हो रहा है देखो मैंने किस सफाई से काम किया, किन्तु अन्यभव में उसे चमड़ी

उधड़वानी पड़ी। आज भी हैं जो अहं में आकर कहते हैं–मेरे से मत अड़ना, छकड़ी भूल जाएगा। मैंने पैरों से बाँध दिया तो तेरे हाथों से नहीं खुलेगा। ऐसा कहना क्या बुद्धिमानी है ?

आप कपड़े पर अच्छा रंग लगाना चाहते हैं तो पहले गन्दगी दूर कीजिये। शेरनी का दूध टिकाना चाहें तो स्वर्ण पात्र ले आईये। सुखी रहना चाहते हैं तो आलोचना–प्रतिक्रमण कर शुद्धि कीजिये। शुद्धि कर लेंगे तो कल खामेमि सव्वे जीवा बोलना सार्थक होगा। मैं भी शुद्धि करूँ, आप भी करें। शुद्धीकरण करने की जरूरत है, शुद्धीकरण के नाटक की जरूरत नहीं। आज आत्म–शुद्धि के दिन अपना एक–एक दोष निकाल कर चलेंगे, तो आत्मा को परमात्मा बना सकेंगे।

शूले–बैंगलोर

19 अगस्त, 2004

29

दृष्टि बदलें–सृष्टि बदल जायेगी

समय की सीमा के साथ सीमित शब्दों में संदेश रूप अपनी बात रखूँ। सफेद कपड़े पहनने से मुक्ति नहीं होती। कपड़े उतारने के साथ घर छोड़ देने से भी मुक्ति नहीं होती। सम्प्रदाय–शासन की रागवश सेवा कर लेने से मुक्ति नहीं होती। अनेक शास्त्र याद कर लेने पर भी मुक्ति नहीं होती।

मुक्ति कब संभव है, आचार्य देवों ने कहा–

कषाय मुक्तिः किल मुक्तिरेव।.....

जब तक भीतर में रही कषायों की वृत्तियों का क्षय नहीं होगा, तब तक मुक्ति नहीं हो सकती। आज हम शुद्धीकरण के लिए यहाँ उपस्थित हैं। संवत्सरी अर्थात् वर्ष का अंतिम दिन। जैसे पक्ष का अंतिम दिन पक्खी होता है। वैसे ही संवत्सर का अंतिम दिन संवत्सरी के नाम से कहा जाता है। इस साल के लिए कहूँ, अगले साल के लिए कहूँ, जन्म–जन्मान्तर के लिए कहूँ इतिश्री तब होगी जब हमारी कषायों का अंत होगा। हम दूसरों की भूलों को देखने के बजाय अपनी भूलों को देखें, भूल की धूल साफ करने का प्रयत्न करें।

आप अंतगडदसा सूत्र में एवंता का वर्णन सुन चुके हैं। उसने कहा- मैं जिसे जानता हूँ उसे नहीं जानता, जिसे नहीं जानता उसे जानता हूँ। मैं यह जानता हूँ कि जो जन्मा है, वह मरेगा। कब मरेगा, कहाँ मरेगा? यह नहीं जानता। यह जीव मरकर कहाँ जायेगा? नहीं जानता। शायद आप जानते हैं कि महारंभी-महापरिग्रही नरक में जाता है। मोटा झूठ बोलने वाला, खोटा नाप-तोल करने वाला तिर्यंच में जाता है। सरलहृदयी मर कर मनुष्य बनता है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र एवं तप की साधना करने वाला देवगति का अधिकारी बनता है। ये सब आप जानते हैं तो फिर कैसे कहते हैं कि मैं नहीं जानता। किस करणी वाला कहाँ जायेगा, यह आप जानते हैं। प्रश्न है आचरण का। आज का संवत्सरी का दिन आचरण की बात कहने आया है। एवंता ने आचरण किया, सुदर्शन ने आचरण किया। श्रद्धा के बल पर सुदर्शन ने संदेश दिया कि श्रद्धा सही रखो, तुम्हारा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। विश्वास के सहारे मरा-मरा कहने वाला तिर सकता है। सेठ ने नवकार मंत्र बताया, नमो अरिहंताणं-नमो सिद्धाणं वह भूल गया और आणु-ताणु कुछ नहीं जाणूँ सेठ वचन प्रमाणुँ-याद रहा, फिर भी श्रद्धा के कारण वह तिर गया। आपको किस पर श्रद्धा है? क्या अपने आप पर श्रद्धा है? श्रद्धा है पत्नी पर, श्रद्धा है पुत्र पर, श्रद्धा है धन पर, श्रद्धा है परिवार पर, लेकिन अपने आप पर कितनी श्रद्धा है? देव-गुरु-धर्म पर कितना विश्वास है?

शास्त्र एक दर्पण है। मैं अधिक व्याख्या करूँ उतना समय नहीं है, इसलिये आठ दिनों का मैं संक्षिप्तीकरण कर रहा हूँ। सुनने के साथ चारित्र ग्रहण करने वाले नब्बे महापुरुषों की बात आप सुन गये। उन चारित्रात्माओं में राजकुमार भी हैं तो राजरानियाँ भी हैं जिनके छप्पन भोग लगते थे। सूरज की किरणें जिनके शरीर का स्पर्श नहीं कर पातीं, उन राजरानियों ने घर छोड़ने के साथ ममता छोड़ दी। आप भी यहाँ घर छोड़कर बैठे हैं, लेकिन घर की ममता अभी तक नहीं छूटी। घर छोड़ना सरल है, घर की ममता छोड़ना कठिन है। आप यहाँ आठ दिन से घर छोड़कर साधना में बैठे हुए हैं, लेकिन घर की

ममता नहीं छूटी। आपने शायद सोचा भी नहीं होगा कि वर्द्धमान आयंबिल तप किसे कहते हैं ? उन रानियों ने सुना ही नहीं करके दिखा दिया। यहाँ एक दिन का कहा जाय तो विचार करना पड़ता है। अभी आप राजरानियों का वर्णन सुन चुके, उन्होंने तप की कितनी-कितनी लड़ियाँ की। आप वैसा तप न कर सको, न सही, पर इतना तो करो कि जो है उसमें संतोष कर लेंगे। भोजन करने बैठे सब ठीक है, कभी एक चीज ठीक नहीं तो····· ? आप घर में घर के मालिक बनकर जाते हैं या क्रोध के बादशाह, स्वयं चिंतन करिए। इन तपस्वियों की तरह आप मासखमण नहीं कर सकते कोई बात नहीं, कम-से-कम इतना तो करो जो आ गया उसे भगवान का प्रसाद मानकर संतोष कर लेंगे।

आपके पास कुछ है तो विचार करो कि मैंने दिया था, इसलिए पाया है। पाया है तो अब खाली हाथ नहीं जाऊँगा। आप अपने लिए, परिवार के लिए कितना खर्च कर चुके हैं, है कोई हिसाब ? यहाँ के बैंक बेलेंस की चिंता है। क्या ऐसी ही चिंता परलोक के बैंक की है ? आपने प्रमोदमुनिजी से दृष्टांत सुने हैं, दूसरे-दूसरे संतों से भी सुना है। पूणिया जैसा श्रावक बारह आने की पूँजी में स्वधर्मी- वात्सल्य का लाभ लेता था। आप उसकी पूँजी ही नहीं, भावना भी तो देखिये। एक दिन स्वयं उपवास करता, दूसरे दिन पत्नी उपवास करती और वे स्वधर्मी वात्सल्य-सेवा का लाभ लेते। आपके पास कितना है ? बारह आने, बारह हजार, बारह लाख। कभी चिंतन करना आपके परिवार में पुत्र-पुत्री के शादी-विवाह और आणे-टाणे में कितना खर्च करते हैं और स्वधर्मी वात्सल्य-सेवा का मौका आए तब कितना खर्च होता है ? मैं आपको धर्म की बढ़ोतरी के लिए, परलोक की बैंक के लिए केवल मात्र याद दिला रहा हूँ।

संयम सिर्फ संतों के लिए है, ऐसा नहीं। संयम श्रावक-श्राविकाओं

के लिए भी है, तथा दूसरों के लिए भी है। हर व्यक्ति का नैतिक जीवन होना चाहिये। सीख के लिए गाँधीजी के तीन बंदर पर्याप्त हैं। बुरा न सुनें, बुरा न देखें, बुरा न बोलें। पर आज तो सभी गुसड़पंच जो हैं, बिना बोलाए बोलेंगे। उन्हें कहो बिना प्रयोजन के नहीं बोलना। तो जवाब मिलता है-बोले बिना नहीं रहा जाता। संवत्सरी महापर्व पर साधना-आराधना न भी बने, तो इतना कीजिये कि हम मन पर, वचन पर और काया पर संयम रखेंगे। आपने सुना है एक-एक इन्द्रिय का असंयम अनेकानेक जन्मों तक दु:ख देता है।

व्यक्ति-व्यक्ति की शुद्धि आवश्यक है। अगर आप पिता हैं तो सोचना, पुत्र के लिए पिता का जो कर्त्तव्य होता है क्या वह पूरा किया या नहीं? यह सोचेंगे तो स्वत: खयाल आयेगा कि मैंने अपने पुत्र को संस्कार नहीं दिये। अगर आप पुत्र हैं तो चिंतन करना कि माता-पिता जो मेरे लिए परम उपकारी हैं, जीवन देने वाले हैं उनके प्रति कर्त्तव्य के निर्वहन में कहीं-कोई कमी तो नहीं रही? मैं चिंतन की बातें कह रहा हूँ। करोड़ों मिला लिये, पिताजी मरणासन्न हैं क्या उस समय लड़के ने यह तो नहीं कहलवाया कि अभी आने की फुर्सत नहीं है? करोड़ों की नहीं, अरबों की संपत्ति हो सकती है, पर पिता, पुत्र को देखने के लिए तरसता हुआ मर जाता है।

आप चाहे पिता हैं, पुत्र हैं, पत्नी हैं अपना कर्त्तव्य क्या? इस पर विचार-चिंतन करना। कोई नौकर है, नौकरी करता है तो वह अपने कर्त्तव्य का सोचे। शुद्धि सबके लिए आवश्यक है। व्यापारी है तो विचार करे कि मैंने कहीं माल में मिलावट तो नहीं की? किसी को धोखा तो नहीं दिया? शास्त्र तो यहाँ तक कहता है-नित्य खाने वाला भी तपस्वी हो सकता है। चौदह हजार रानियाँ रखने वाला ब्रह्मचारी हो सकता है। कब? जबकि वह निर्लेप भावना वाला हो, मर्यादा का पालन करता हो। मर्यादा वाला इंसान किसी स्त्री को दुर्भावना से देखेगा तक नहीं। आप चाहे व्यापारी है, नौकरी पेशा हैं या

अन्य काम-काज करते हैं, कर्म काटने में संतों को पीछे रख सकते हैं। ईमानदार कोई भी हो सकता है।

तीर्थङ्कर भगवान महावीर ने कहा गृहस्थ में रहते हुए भी जीव सिद्ध हो सकता है तभी तो गृहस्थलिङ्ग सिद्ध कहा गया। चक्रवर्ती सम्राट् है उसके पास चौदह रत्न हैं, छः खण्ड का राज्य है फिर भी आरसी भवन में भरत को केवल ज्ञान हो जाता है। कर्त्तव्यनिष्ठा एवं ईमानदारी से जीवन जीने वाले हलुकर्मी होते हैं।

कई लोग कहते हैं हमने पाप नहीं किया। अतिक्रमण नहीं किया तो प्रतिक्रमण क्यों ? सामायिक क्यों ? चिंतन करें पाप किससे नहीं होता ? इतनी बड़ी सभा में है कोई जो सीने पर हाथ रखकर कह सके कि मैंने कोई पाप किया ही नहीं। मानव ! तू अगर अपना शुद्धीकरण चाहता है, तो कषायों को तिलांजलि दे। दृष्टि में ईमानदारी-पवित्रता रख। अगर दृष्टि में ईमानदारी नहीं तो छोटे-से-छोटे काम से कर्म बंध सकते हैं। परिस्थितियाँ किसके सामने नहीं आती ? चंदनबाला के सामने परिस्थिति आई वह बिकने के लिए खड़ी थी। संगम की माँ कल तक सेठानी थी, फिर घर-घर बर्तन माँजकर जीवन चलाने लगी। शुद्धीकरण से चोर भी श्रमणों का सरदार बन सकता है।

यह जीवन डोलर हिंडे की तरह है। संसारी का भाग्य बदलता रहता है। डोलर हिंडा कभी ऊपर जाता है, कभी नीचे आता है। कर्म के आधीन यह दशा प्रत्येक जीव की हो सकती है। एक सेठानी की इसी तरह स्थिति हुई। भूकम्प में सब कुछ चला गया। मैं जिस सेठानी की बात कह रहा हूँ, उसके पति ने अस्पताल बनाने के लिए पचास लाख दिये। वही आज दर-दर की ठोकरें खा रही है, हर किसी के सामने हाथ फैला रही है। क्यों ? तो दिन बदले। सेठानी को नौकरानी बनना पड़ा। उसने किसी सेठ के यहाँ काम किया।

मारवाड़ से निकलने वाले कई लोग हैं। घोड़ नदी में एक भाई ने

पानी के मटके भरने की नौकरी की। मारवाड़ से आए थे तो क्या लाये थे? आज क्या है। वह 25 साल तक सेठानी के घर काम करती रही। एक दिन जिस सेठ के घर काम कर रही थी वहाँ जीमण हुआ। मेहमानों को खिलाने के बाद बच गया, तो नौकरों को खिलाना याद आया। कभी आपके घर बेटी का बाप कब जीमता है? मेहमानों के जाने के बाद बेटी का बाप खाता है। सेठ के यहाँ मेहमान निपट गये तो नौकरों को खाने बैठाया। सेठानी जो समय बदल जाने से नौकरी कर रही थी, खाने बैठी तो रोने लगी कि मैं हलुआ खाती हूँ, बच्चे सूखी रोटी के लिए तरसते हैं। माँ की ममता ने जोर लगाया हलुआ मुँह में रखने का मन नहीं हुआ। अब थाली में रखे हलुए का क्या करना? उसने वह हलुआ थाली में से किसी थैली में रखा और खा-पीकर जाने लगी। हलुए की थैली संभाल कर ले जा रही थी, पर संयोग था कोई टक्कर लगी और थैली गिर गई। घर में कुछ मेहमान बैठे थे उन्होंने देखा। सेठ के धन का घमंड था नौकरानी की थैली में हलुआ देखकर बोला-चोर है, यह चुराकर कहाँ ले जा रही है? हम नौकरों को इसलिए नहीं रखते कि वे चोरियाँ करें। ऐसे चोरों को तो जेल भेजना चाहिये। बात अंदर बैठी सेठानी ने सुनी तो बाहर आई और बोली-यह चोर नहीं है, चोरी नहीं कर सकती। मैं इसे चौबीस साल से देख रही हूँ यह चोर है ही नहीं, इसलिये इसे क्षमा कर दें।

मैं मात्र दृष्टि की बात रख रहा हूँ। जिसे धन का अहंकार है उसने क्या समझा? पाप का कारण गरीबी नहीं, पाप का कारण कर्म का उदय है। पच्चीस साल से मैं अपने गहने और चाबियाँ इसको देती हूँ। यदि यह चोर होती तो गहने लेकर भाग सकती थी। यह चोर नहीं है, इससे पूछें बात क्या है? हम पहले पूछें तो सही। अपनी दृष्टि से निर्णय कैसे कर सकते हैं? सेठानी ने नौकरानी से पूछा-क्या बात है? नौकरानी के आँखों में आँसू थे। बोली-मुझे यह हलुआ खाया नहीं गया। क्यों-क्या बात है? तो कहा-मेरे बच्चे सूखी रोटी खाते हैं मैं हलुआ खाऊँ, मन माना नहीं इसलिए बच्चे के लिए रख लिया।

आप समझ सकते हैं गरीबी क्या होती है ? दृष्टि में परिवर्तन कीजिये। किसी पर कलंक लगाना सहज है, कलंक कर्मबंध का कारण है।

आपने सुना होगा–ईसा मसीह के सामने एक व्यभिचारिणी को लाया गया। लोग पत्थर मार–मार कर उसे मार देना चाहते थे। ईसु ने कहा–जिसने जीवन में कभी कोई पाप नहीं किया, वह पत्थर मार सकता है। पहले भीड़ थी, पर ईसु ने जब यह कहा कि जिसने कभी पाप नहीं किया वह पत्थर मारे तो सब एक–दूसरे का मुँह देखने लगे, भीड़ छँट गई। खुद पाप करने वाले दूसरे पापी को सजा कैसे दे सकते हैं ?

यह पर्व दृष्टि से परिवर्तन लाने के लिए है। भगवंत कभी फरमाया करते थे कि सिंह सोया हुआ है तो चींटियाँ क्या, मक्खियाँ भी और खरगोश जैसे जानवर भी उछल–कूद करते हैं। जानवरों की यह उछल–कूद कब तक ? जब तक शेर सोया है, छोटे–बड़े जानवर पास आ सकते हैं, उछल–कूद कर सकते हैं। ज्यों ही शेर उठा एक दहाड़ की तो शेर की दहाड़ से हाथियों के झुंड भी भाग खड़े होते हैं, खरगोश जैसे जानवरों का क्या कहना ?

याद रखें–जब तक पाप नहीं छूटेंगे दु:ख छूटने वाला नहीं है। यह कैसी बिडम्बना है, दु:ख नहीं चाहते वे पाप छोड़ने की सोचते क्यों नहीं ? बात है अभी दृष्टि बदली हुई है। महापर्व संवत्सरी के दिन आपने तप करना तो सीखा है। आज छोटे–छोटे बच्चे उपवास कर रहे हैं। जो बच्चे खाने के लिए मचलते थे, ना कहते–कहते वे आज के दिन उपवास पच्चक्ख रहे हैं। पर्युषण आने के साथ क्या बच्चों ने क्या बच्चियों ने, युवक और युवतियों ने अठाईयाँ की। तप भी आराधना का रूप है। आपने तप–साधना में जैसा उत्साह प्रदर्शित किया आप पापों की आलोचना, प्रतिक्रमण में और क्षमायाचना में ऐसा उत्साह रखें। अपनी भूलों को देखें। आज का दिन, दिल की दिवाली का दिन है। दूसरे–दूसरे पर्वों में आप घर की, दुकान की सफाई करते हैं आज

अपने भीतर में रहे कचरे को साफ करना है। आप जैसे अपना हिसाब-किताब मिलाते हैं, आज के दिन पुण्य-पाप का कितना बैलेंस है, देखने की जरूरत है।

अपनी ओर से, अपने संतों और सतियों की ओर से प्रवचन करते, प्रेरणा करते कभी कठोरता का प्रयोग हुआ हो, हमारे कहने से किसी का दिल दु:खा हो तो मैं आज के दिन क्षमायाचना करता हूँ। कहा भी गया, तो बुराई निकालने के लिए कहा है किसी को हल्का दिखाने की भावना नहीं थी, न है। हमारे कहने में, बोलने में, सीखने-सिखाने में किसी भाई-बहन के मन को ठेस पहुँची हो तो, मैं अपनी ओर से संत-सतियों की ओर से क्षमायाचना करता हूँ। व्यवहार निभाने के साथ चाहता हूँ आप भी अपने मन से बुराई निकालें पाप को तिलांजलि दें। आज व्यवहार में भी मिलावट आ गई। लड़ाई है भाई से, क्षमायाचना है ब्यायी से। जिससे बोलचाल तक नहीं हुई उनके यहाँ क्षमायाचना करने जाते हैं और जिससे वैर-विरोध है उससे क्षमायाचना दूर, सामने झाँकते तक नहीं। वैर-विरोध इस वर्ष का हो सकता है, इस जन्म का हो सकता है, अनंत-अनंत भवों का हो सकता है। आज का दिन मन से, वचन से, काया से क्षमायाचना का दिन है। आप आलोचना करें, प्रतिक्रमण करें और क्षमायाचना करें। कषायों पर विजय मिलाने का प्रयास करें तो आपका 'खामेमि सव्वे जीवा' बोलना सार्थक होगा।

शूले-बैंगलोर
20 अगस्त, 2004

30

धर्म से जुड़ें, व्रती बनें

धर्मी तीन तरह के होते हैं। एक व्यक्ति से जुड़ा हुआ, दूसरा सम्प्रदाय से या संघ से जुड़ा हुआ तथा तीसरा धर्म से जुड़ा हुआ। व्यक्ति से जुड़ा हुआ धर्मी, व्यक्ति के चले जाने के पश्चात् हो सकता है कभी अनास्थावान बन जाये। जो संघ-सम्प्रदाय से जुड़कर चलता है, वह जब तक सम्मान मिलता है तब तक जुड़ा रह सकता है और ज्यों ही सम्मान में कमी आई, वह संघ से अलग होते देर नहीं करता। परन्तु जो व्यक्ति धर्म से जुड़ा है, देव-गुरु और परमात्म स्वरूप से जुड़ा है, उसके लिए व्यक्ति या सम्प्रदाय रहे या नहीं रहे, वह हमेशा धर्म से जुड़ा रहेगा।

जरूरत है धर्म से जुड़ने की। धर्म से जुड़ने वाला संघ से भी जुड़ा रहता है तथा धर्मगुरु के प्रति भी श्रद्धा रखता है। धर्म से जुड़ा व्यक्ति व्रत-नियम अंगीकार कर जीवन-सुधार करने को तत्पर रहता है। धर्मनिष्ठ जनों से ही संघ शोभा पाता है, अन्यथा वह संग बनकर रह जाता है। संघ होता है व्रतियों का। साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविका का संघ होता है। साधु कौन? जो महाव्रती है। श्रावक कौन? जो एक व्रती यावत् बारह व्रती है। आप

चिन्तन करें कि क्या आप व्रती हैं ? आपमें से कोई अध्यक्ष है, कोई संरक्षक है, कोई अन्य पद पर है, लेकिन धर्माचरण की ओर कितने आगे बढ़ रहे हैं, यह चिन्तनीय है। संघ का हर सदस्य वह चाहे किसी सम्प्रदाय का क्यों न हो, अगर वह व्रती है, धर्मी है तो वह संघ का अंग है। जो धर्म से जुड़ना चाहता है, वह भले ही एक सामायिक करे, नियमित स्वाध्याय करे, वह संघ का अंग है। वह भले ही साप्ताहिक करे, पाक्षिक करे, मासिक करे, एक दया करता है तो वह व्रती है, संघ का अंग है। श्रावक एक माह में छः पौषध करे, छः नहीं तो एक करे तो भी वह व्रती है।

आपको संवर-पौषध का कहा जाता है, तो कहते हैं हमारे काम बहुत है, घर में से करते हैं। ऐसा कहना समाधान नहीं है। घरवाली ने खा लिया, फिर आपको खाने की क्या जरूरत ?

आज आपकी आमसभा है। जरा चिन्तन करना, यह सभा व्रतियों की है या अव्रतियों की ? संघ क्या ? आप जिसे धर्मसंघ कह रहे हैं उसमें कोई अव्रती तो नहीं ? आप सिर्फ संग करने आए हैं, तो उससे संघ नहीं होता। आप यहाँ धर्मी बनने के लिए आए हैं, तो अब भी व्रत अंगीकार कर सकते हैं।

आप भगवान महावीर के शासन के सदस्य हैं, तो प्रतिदिन कोई-न-कोई व्रत होना चाहिये। कम करें, ज्यादा करें, किन्तु करें जरूर। और कुछ हो सके, न हो सके तो कुछ मिनटों का स्वाध्याय ही करें, पर करने का क्रम अवश्य बनाएँ। स्वाध्याय करें, सामायिक करें, संवर करें, दया करें, पर कोई-न-कोई व्रताराधन होना चाहिये। आप बारह व्रती न बन सकें, तो एक व्रत से शुरूआत करें। संघ में मुखिया वे होते हैं जिनके जीवन में व्रत है।

आप धर्मसंघ के सदस्य हैं तो व्रत में, धर्म में, आचरण में, व्यवहार में जुड़कर भगवान महावीर के संघ को आगे बढ़ायें। जब तक जीवन में धर्म का आचरण नहीं होगा, तब तक प्रचार-प्रसार काम नहीं आयेगा। आचरण

ही धर्म का प्रथम सोपान है। आचार्य भगवन्त के सुभाषित वचनों में आप बोलते भी हैं–

'आचरण ही भक्ति का सक्रिय रूप है'

'संघ क्या है' इस पर आप तत्त्वज्ञ प्रमोदमुनि से सुन रहे थे। मैं पाँच मिनट जल्दी आ गया। सुनाने की बात, प्रेरणा की बात मुनिश्री ने कही है, मैं तो मात्र उसे आगे बढ़ा रहा हूँ। आप धर्मसंघ में आए हैं तो नियम लेकर जाएँ, इससे जीवन में प्रतिदिन धर्माचरण होगा। संत रहें तो क्या, नहीं रहें तो क्या? व्यक्ति जिस तरह शरीर के नियम रोज निभाता है, उसी तरह धर्म के नियमों की पालना करता है तो समझना चाहिए वह धर्मी है, धर्म से जुड़ा हुआ है। प्रत्येक आगन्तुक स्वयं नित्यप्रति धर्मसाधना करे और अपने ग्राम या नगर में जाकर धर्म के आचरण की जाहोजलाली करे। स्वयं करे और दूसरों को प्रेरित करे। उपाध्यायश्री कभी-कभी फरमाते हैं-इस्लाम भाई आया और वह अपने गुरु से कहने लगा-आप मुझे इजाजत दें, मैं लोगों को धर्म से जोड़ना चाहता हूँ, खुदा से जोड़ना चाहता हूँ। गुरु ने कहा-''खुदा से जोड़ना, खुद से मत जोड़ना।'' आज खुदा से जोड़ने के बजाय खुद से जोड़ने वाले अधिक हैं। यह मेरा चेला, यह मेरा भक्त, यह मेरा क्षेत्र। व्यक्ति से जोड़ना कब तक रहेगा? हाँ व्यक्ति है तब तक तो शायद जुड़ा रहा सकता है, पर व्यक्ति शाश्वत नहीं, वह सदा नहीं रहता। इसलिये जोड़ें तो धर्म से जोड़ें, आत्मा को परमात्मा से जोड़ें। खुद को खुदा से जोड़ने का माध्यम गुरु है, महात्मा है। परन्तु गुरु सब कुछ नहीं है। एक दृष्टि से गुरु सब कुछ है, अन्य दृष्टि से गुरु कुछ नहीं है। गुरु धर्म से जोड़ता है, तो सब कुछ है स्वयं से जोड़ता है, तो कुछ नहीं।

आने वाला हर सदस्य, यहाँ रहने वाला हर सदस्य जो भी संघ का सदस्य कहलाता है वह धर्म से अपने-आपको जोड़े। जो जितना ऊँचा है वह

उतना ही अधिक व्रत-नियमों का पालन करे। जो व्रताराधन करता है उसकी बात मानी जाती है। वह कोई भी हो। आपने सुना होगा रियाँ के सेठ मुणोत जी का नाम, मद्रास के मोहनमल जी चोरड़िया का नाम, बैंगलोर के छगनमलजी मुथा का नाम।

संघ के श्रावकों से मेरा कथन है आप धर्म से स्वयं जुड़ें और अधिक से अधिक लोगों को जोड़कर भगवान महावीर के शासन की ज्योति जगायें। आप धर्म से जुड़ेंगे तो भावी पीढ़ी को स्वतः प्रेरणा मिलेगी। आप यहाँ आये हैं तो खाली हाथ न जायें। जो भी बन सके, कुछ न कुछ व्रत-नियम लेकर जायें।

बैंगलोर
27 सितम्बर, 2004

31

निर्वाणवादी महावीर के बनें उपासक

संसार-परिभ्रमण का संकोच करने वाला, कर्म के कलंक को काटने वाला, प्रकाश-पुंज का पावन पुनीत प्रसंग निर्वाण-दिवस आज उपस्थित है। आज का दिन भगवान महावीर के दर्शन का दिन है। बोलचाल की भाषा में 'दर्शन' को देखना कहते हैं। देखना बोलचाल की भाषा है, दर्शन आदरसूचक शब्द है। आदरयुक्त शब्दों में 'देखने' को 'दर्शन' कहा जाता है। आप बोलते हैं-महाराज के दर्शन करके आए हैं। कोई यह नहीं कहता कि महाराज को देख कर आए हैं। तीर्थङ्कर भगवन्तों को भी देखने नहीं, उनके दर्शनार्थ जाते हैं।

दर्शन दो तरह से होते हैं। एक साक्षात् और दूसरे, शास्त्र के माध्यम से। भगवान अभी साक्षात् नहीं हैं, इसलिए हम उनके दर्शन सिद्धांत या शास्त्र के माध्यम से कर रहे हैं। शास्त्र में नय और निक्षेप की दृष्टि दी गई है। यहाँ हम निक्षेप से कुछ चिन्तन करें। निक्षेप की भाषा में देखना चार तरह से होता है-नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव। कुछ महावीर का नाम जपने वाले हैं, कुछ महावीर के नाम का स्मरण करते हैं, कुछ महावीर को मानते हैं। सम्बोधन के लिए कोई-न-कोई नाम चाहिये। महावीर के नाम से आप परिचित हैं।

नाम के पश्चात् स्थापना निक्षेप है। स्थापना यानी आकृति। स्थापना अर्थात् प्रतिमा। मूर्ति के रूप में सदृशता भी स्थापना ही है। आज जितनी आकृतियाँ हैं, मूर्तियाँ हैं, चित्र हैं, तो कोई-न-कोई उनको बनाने वाले भी हैं। जो भी बनाने वाले हैं, उनमें से किसी ने भी शायद महावीर को नहीं देखा। जितने भी मन्दिर हैं वहाँ रखी मूर्तियाँ किसी ने बनाई हैं, किन्तु बनाने वाले भगवान महावीर के समय मौजूद नहीं थे। जब भगवान महावीर की मौजूदगी में मूर्तियाँ बनाने वाले थे ही नहीं, तो फिर प्रश्न होता है कि ये आकृतियाँ कहाँ से आई ?

उववाई सूत्र में तीर्थङ्कर भगवान महावीर का नख-शिख सम्पूर्ण विवरण मिलता है। भगवान महावीर का कपाल कैसा था, भाल कैसा था, आँखे-नाक-गला-मुँह आदि शरीर के जितने अंग-उपांग हैं उनका वर्णन उववाई सूत्र में है। आप भगवान महावीर की आकृति के दर्शन करना चाहें तो उववाई सूत्र पढ़ें। जिन्होंने भी भगवान महावीर की आकृति बनाई है, उन्होंने उववाई सूत्र का आधार लेकर आकृति का निर्माण किया होगा।

आज भगवान महावीर के दर्शन करने वाले कई लोग हैं। कई माताजी के दर्शन करते हैं। वे क्या करते हैं ? वे माताजी के चरणों में सिर नवाँते हैं, पाँवाधोक करते हैं। महावीर के दर्शन करने वाले क्या करते हैं ? हाथ जोड़े, टीका लगाया, चावल चढ़ाये और हो गए दर्शन।

द्रव्य से भी महावीर के दर्शन होते हैं। नाटक करने वाले कभी महावीर बनते हैं, कोई माता त्रिशला का रूप धरता है। नेता-अभिनेता भी महावीर बनते हैं। आपने देखा होगा रामलीला में राम, लक्ष्मण, भरत, सीता, रावण के रूप बनाकर कलाकार आते हैं। हनुमान की आकृति बनाने वाला हाथ में गदा लेकर आता है। इसी तरह महावीर की आकृति के स्वाँग रचने वाले मिलते हैं। द्रव्य से सामायिक करने वाले मुँहपत्ती लगा लेंगे, चोलपट्टा-

दुपट्टा धारण कर लेंगे, आसन बिछाकर बैठ जायेंगे, पर यह सब उपक्रम द्रव्य सामायिक है, भाव सामायिक तो प्रत्याख्यान लेने पर आती है। आकृति से, वेशभूषा से द्रव्य महावीर बनने वाले मिल सकते हैं, लेकिन महावीर की तरह जीवन जीने वालों का अभाव है।

हमें आज महावीर को जानना और देखना नहीं, किन्तु पाना है। दूसरे शब्दों में हमें महावीर बनना है। नाम से नहीं, स्थापना से नहीं, द्रव्य से नहीं भावों से महावीर बनना है-गुणों से महावीर बनना है। जो भी आत्मा अनन्त ज्ञानराशि प्राप्त करेगा वह महावीर बन सकेगा। जानना और मानना एक बात है वहीं गुण ग्रहण करना दूसरी बात है। आप आवश्यक निर्युक्ति उठाकर देखिये भगवान का गृहस्थ जीवन कैसा था ? जन्म के साथ भगवान की वीरता देखिये। साँप को देखकर भागे नहीं, उसे हाथ में उठाकर जंगल में छोड़ दिया। डर का भगवान के जीवन में नामोनिशान तक नहीं था। भगवान गृहस्थ जीवन में कैसे निर्भय थे ? वे कैसे साहसी थे ? उन्होंने माता-पिता की आज्ञा आराधना का कैसा रूप प्रदर्शित किया ? आज नाटक करने वाले तो मिल सकते हैं लेकिन भगवान महावीर की द्रव्य भूमिका का निर्वहन करने वाले कहाँ है ? भगवान ने तीस वर्ष की भरी जवानी में दीक्षा ली आपको दीक्षा लेने की बात नहीं कह रहा हूँ, छोटी दीक्षा (शीलव्रत) का खयाल दिलाया जाता है तो साठ-साठ, पैंसठ-पैंसठ वर्ष के लोग भी ब्रह्मचर्य के नियम लेने से कतराते हैं। आप भगवान की तरह भरी जवानी में दीक्षा न ले सकें, न सही, पर आप ब्रह्मचारी बनने में तो हिचक न करें।

ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार करना छोटी दीक्षा है। एक भाई से पूछा-अब तो शीलव्रत के खंद कर लो। वह बोला-बाबजी ! नियम तो लेणो है। म्हारा घर-परिवार वाला सारा लोग आवे, तो मैं जुलूस लेकर आँऊ और नियम लूँ। आप एक पाप छोड़ने से डरते हैं, जबकि भगवान ने सारे पाप यह कहकर छोड़

दिये 'सावज्जं जोगं पच्चक्खामि।' आप आवश्यक निर्युक्ति का पाठ पढ़िये। दीक्षा लेने के साथ भगवान को कैसे-कैसे परीषह झेलने पड़े। भगवान के कानों में कीले ठोके गये, पैरों पर खीर सिझाइ गई, छः माह तक आहार-पानी नहीं मिला। भगवान को चोर समझकर शूली पर चढ़ाने का राजा ने हुक्म दे दिया। ऐसे कई-कई परीषह भगवान ने समभावपूर्वक सहन किये और हमें सहनशीलता का पाठ पढ़ाया।

आज थोड़े से परीषह से घबराहट हो जाती है। पाली में एक भूत बँगला है। वहाँ ठहरने का काम पड़ा। हमने पूछा-इस बँगले को भूत बँगला क्यों कहा जाता है? हमें बताया गया कि इस बँगले में प्रवेश करने के साथ घर के एक आदमी की मौत हो गई। बस, बँगला अशुभ है किसी ने वहाँ रहना ठीक नहीं समझा। वर्षों से वह बँगला खाली पड़ा रहा। लोग उसे भूत बँगला कहने लगे।

एक गाँव में लोगों ने स्थानक लिया और एक आदमी की मौत हो गई। स्थानक लेते ही मौत, स्थानक शगुनी नहीं है, इसलिए उसे बेच दिया गया। अमुक जगह अच्छी है, अमुक जगह अच्छी नहीं है ऐसे विचार मन में आ सकते हैं, किन्तु कर्म की बात पर कहाँ विचार चलता है? भगवान कैसे परीषहजयी बने, आवश्यक निर्युक्ति में आप पढ़ सकते हैं। आचारांग सूत्र में भी भगवान की धीरता-वीरता-गम्भीरता के साथ परीषहों का वर्णन है।

आज हम तीर्थङ्कर महावीर का भाव-जीवन जानने, देखने और पाने को उपस्थित हुए हैं। भगवान के निर्मल केवलज्ञान, भगवान के अनन्त ज्ञान की कुछ झाँकी भगवती सूत्र में भी देखी जा सकती है। सूयगडांग सूत्र में गणधर भगवन्तों ने उपमाओं के माध्यम से तीर्थङ्कर भगवान महावीर का जीवन वर्णित किया है, तो उत्तराध्ययन सूत्र में जीवन के विकास हेतु प्रथम अध्ययन विनय से लेकर जीवाजीवविभत्ती नामक 36वें अध्ययन तक जीवन विकास के सूत्र मिलते हैं।

आज निर्वाण दिवस है। संतों ने दीपावली पर अपनी बात कही। मैं भगवान महावीर के निर्वाण के प्रसंग को लेकर कहना चाहूँगा, कि आज भगवान महावीर को देखने का साक्षात् दिन है। शरीर से भगवान का आज के दिन निर्वाण हुआ था। सूयगडांग सूत्र के छठे अध्ययन की 21वीं गाथा में कहा है–

हत्थीसु एरावणमाहु णाए, सीहो मियाणं सलिलाण गंगा।
पक्खीसु वा गरुले वेणुदेवे, णिव्वाणवादी णिह णायुपत्ते।।

ज्ञातपुत्र भगवान महावीर निर्वाणवादी थे। हाथियों में जैसे ऐरावत, पशुओं में सिंह, नदियों में गंगा, पक्षियों में वेणुदेव गरुड़ श्रेष्ठ हैं ठीक वैसे ही निर्वाणवादी कई हैं, पर भगवान महावीर उन सब निर्वाणवादियों में श्रेष्ठ हैं। प्रश्न है निर्वाण क्या? अद्वैत वेदान्त एवं बौद्ध भी निर्वाण मानते हैं। अद्वैत वेदान्तवादी विलय होने को निर्वाण मानते हैं। व्यक्ति ब्रह्म का अंश है। जब वह बह्म में विलय को प्राप्त हो गया तो ब्रह्म बन गया। उसका स्वतंत्र अस्तित्व कुछ भी नहीं रहा। बौद्ध भी निर्वाणवादी हैं। वहाँ निर्वाण का अर्थ बुझ जाना किया है। अर्थात् जो ज्ञान संतति चल रही थी, वह समाप्त हो गई। पीछे क्या बचा, बौद्ध दर्शन में उसका कोई वर्णन नहीं है। ईश्वरवादियों का मत है कि व्यक्ति के ईश्वर में विलीन होने के बाद उसका अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रहता। निर्वाण को लेकर अलग-अलग परम्पराएँ अलग-अलग अस्तित्व मानती हैं। जैसे नदियाँ बहती-बहती सागर में मिल जाती हैं, तो फिर नदियों का अस्तित्व नहीं रहता। समुद्र में मिलते ही नदियाँ सागर कहलाती हैं। तीर्थङ्कर भगवान महावीर ने आत्मा का सर्वोत्कृष्ट विकास कर लेने को निर्वाण कहा है। भगवान महावीर के दर्शन में आत्मा से परमात्मा-सिद्धात्मा बन जाना निर्वाण है। भगवान महावीर ने अव्याबाध सुख जिसमें कोई विघ्न नहीं, कोई बाधा नहीं, कोई कर्मबंध नहीं उस अव्याबाध सुख को

निर्वाण कहा है। भगवान महावीर का निर्वाण स्वतंत्र अस्तित्व वाला है। आप उत्तराध्ययन सूत्र के केशी-गौतम संवाद से अव्याबाध सुख क्या है, समझ सकते हैं।

आप प्रतिक्रमण में अरिहन्त भगवान की वन्दना करते हैं, तो अनंत चारित्र बोलते हैं। अकषायी अरिहन्त भगवन्त अनन्त सुख यानी अनंत आनंद का अनुभव करते हैं। दूसरे पद में सिद्ध भगवान की वन्दना में अव्याबाध/निराबाध सुख बोलते हैं। अनन्त सुख यानी आनन्द के अनुभव और अव्याबाध सुख में अंतर है। अनंत आनंद महसूस होते हुए भी शरीर से दुःख हो सकता है। तेहरवें गुणस्थान में अकषायी होने से अनंत आनंद का अनुभव होता है, फिर भी वहाँ खोपड़ी खीचड़ी की तरह सीझ सकती है, खाल उतारी जा सकती है, घाणी में पीला जा सकता है क्योंकि वहाँ असाता वेदनीय का उदय रह सकता है। उत्तराध्ययन सूत्र के तेईसवें अध्ययन की 83वीं गाथा में कहा है-

णिव्वाणं-ति अबाहं-ति, सिद्धी लोगग्गमेव य।
खेमं सिवं अणाबाहं, जं चरंति महेसिणो।।

यहाँ निर्वाण का अर्थ आत्मगुण में किसी तरह की बाधा नहीं होना बताया है। सीधा-सा अर्थ है विघ्न-बाधाओं को अर्थात् आठों कर्मों को जीत लेना अव्याबाध प्राप्त कर लेना है। वही निर्वाण है। भगवान महावीर के सिद्धांत में आठों कर्म क्षय कर निर्वाण प्राप्त होने के बाद भी आत्मा का स्वतंत्र अस्तित्व रहता है। यह भगवान महावीर के दर्शन की मौलिकता है। आत्मा उस समय अपने ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य को बिना बाधा के अनुभव करता है। इसलिये कहा है-

एक माँहि अनेक राजे, अनेक माँहि एककम्।
एक अनेक की नाहि संख्या, नमो सिद्ध निरंजनं।।

ज्योति में ज्योति मिल जाने के बाद भी हर ज्योति का अपना स्वतंत्र अस्तित्व है। इसीलिए निर्वाणवादियों में तीर्थङ्कर भगवान महावीर को सर्वश्रेष्ठ निर्वाणवादी कहा गया है।

जिस दिन आठों कर्मों का नाश होगा, आत्मा निर्वाण को प्राप्त करेगा। आप आठों कर्म नहीं काट सकते, तो एक को तो काटो। वह एक कर्म पहाड़ की तरह खड़ा है। वह कौनसा कर्म है? आप सब चुप हैं। अरे भाई, वह है-मोह कर्म। मोह कर्म को काटने पर महावीर बना जा सकता है। मोह पर विजय मिलाना महावीर बनना है। आचार्य भगवंत (पूज्य गुरुदेव श्री हस्तीमल जी म.सा.) के शब्दों में कहूँ-

हरि करि अरि के कष्ट सहे, वह दुष्कर तप कहलाता है।
मोह जीतने वाला साधक, महावीर कहलाता है।।

शेर, हाथी और शत्रु से मुकाबला करना संभव है, लेकिन मोह को जीतना मुश्किल है। मोह को तप के माध्यम से जीता जा सकता है। मोह को ज्ञान-ज्योति जगा कर भी जीता जा सकता है। आप तप में पुरुषार्थ करें, ज्ञान में पुरुषार्थ करें, चारित्र में पुरुषार्थ करें। पुरुषार्थ करना जरूरी है। यहाँ प्रकाशदेवी बाफना ने तप में पुरुषार्थ किया, आज उपवास का एक सौ पाँचवाँ दिन है। चातुर्मास लगने के साथ ही बहिन ने अन्न का एक कण भी ग्रहण नहीं किया। बहिन से पूछा-क्या विचार है? जवाब मिला-अन्नदाता! पारणा री तो मन में नहीं आवे। एक तरफ पारणे की मन में नहीं, तो दूसरी तरफ कई हैं जो उपवास करते हैं, उस दिन शाम को कैर भिगोने के लिए कहते हैं।

आप पुरुषार्थ कीजिये। आज के दिन राजा-महाराजों ने सारे प्रपंच छोड़ पौषध-व्रत की साधना की। आपको भी पौषध की प्रेरणा की जा रही है। घर-परिवार सदा के लिए नहीं छोड़ सकें तो कम-से-कम घर छोड़कर

धर्मस्थान में पौषध व्रत की साधना का संकल्प करें। आप मोह में फँसे हुए हैं। घर छोड़ना आपको भारी लग रहा है। आपको तो लक्ष्मीजी की पूजा करनी है। आप लक्ष्मी की पूजा छोड़ना नहीं चाहते। शायद आपने यह मान लिया कि पूजा नहीं करेंगे, तो घर में लक्ष्मी कैसे आयेगी? आपका ऐसा सोचना मात्र भ्रमणा है। विदेशों में रहने वाले क्या सारे कंगाल हैं? मुसलमान लक्ष्मी पूजा नहीं करते तो क्या वे सारे दरिद्री हैं?

आप पुरुषार्थ करें, तप करें, पौषध करें। आपको एक पौषध भारी लगता है। कुछ हैं जो घर में मिठाइयों के थाल लेकर बैठे हैं। बाबजी! मैं कोनी खाऊँ, म्हारे शूगर है पर आया-गया री मनुहार करनी पड़े। कोई मिठाई के थाल सजाता है, कोई घर को सजाता है। भगवान ने कर्म काटकर निर्वाण के लिए पुरुषार्थ करने की बात फरमाई है। आप जितना बन सके पुरूषार्थ करें। फूल नहीं तो फूल की पंखुड़ी ही सही, कुछ-न-कुछ अवश्य करें। आप केवल ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकें तो पौषध ही सही, आपको आज निर्वाण के दिन कुछ साधना करनी है। साधना करने वाला एक दिन अव्याबाध सुख प्राप्त कर सकेगा।

वैपेरी, चैन्नई
1 नवम्बर, 2005

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल
के विविध सेवा सोपान

जिनवाणी हिन्दी मासिक पत्रिका का प्रकाशन

जैन इतिहास, आगम एवं अन्य सत्साहित्य का प्रकाशन

अखिल भारतीय श्री जैन विद्वत् परिषद् का संचालन

उक्त प्रवृत्तियों में दानी एवं प्रबुद्ध चिन्तकों के रचनात्मक सक्रिय सहयोग की अपेक्षा है ।

सम्पर्क सूत्र

मंत्री

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

दुकान नं. 182 के ऊपर, बापू बाजार

जयपुर-302003 (राजस्थान)

दूरभाष : 0141-2575997

फैक्स : 0141-4068798 ई-मेल : sgpmandal@yahoo.in